MATS UNIVERSITY

NAAC GRADE A+ ACCREDITED UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

जनजातीय समाज

बैचलर ऑफ़ आर्ट्स (बी.ए.)

तृतीय सेमेस्टर

SELF LEARNING MATERIAL

COURSE DEVELOPMENT EXPERT COMMITTEE

1- Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department, MATS University Raipur Chhattisgarh

2- Dr. Sudhir Sharma, Subject Expert, HOD Hindi Department, Kalyan College, Bhilai

3- Dr. Kamlesh Gogia Associate Professor, MATS University, Raipur, Chhattisgarh

4- Dr. Sunita Shashikant Tiwari Associate Professor, MATS University Raipur Chhattisgarh

5- Dr. Rajesh Kumar Dubey, Subject Expert, Principal, Shahid Rajeev Pandey Government College, Bhatagaon, Raipur, Chhattisgarh

6- Dr. Crislya Baxla, Late Jaidev Sathpathi Government College, Basna

COURSE COORDINATOR

Dr. Kamlesh Gogia Associate Professor, MATS University, Raipur, Chhattisgarh

COURSE /BLOCK PREPARATION

Dr. Kamlesh Gogia Associate Professor, MATS University, Raipur, Chhattisgarh

March, 2025

ISBN-978-93-49916-74-6

@MATS Centre for Distance and Online Education, MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

All rights reserved. No part of this work may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

Printed & Published on behalf of MATS University, Village-Gullu, Aarang, Raipur by Mr. Meghanadhudu Katabathuni, Facilities & Operations, MATS University, Raipur (C.G.)

Disclaimer-Publisher of this printing material is not responsible for any error or dispute from contents of this course material, this is completely depends on AUTHOR’S MANUSCRIPT.
Printed at: The Digital Press, Krishna Complex, Raipur-492001(Chhattisgarh)

विषय सूची

माड्यूल–1 जनजातीय समाजशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई–1 जनजातीय समाजसास्त्र का अर्थ, क्षेत्र, अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध, जनजाति जाति सातत्य, जनजाति की अवधारणा, अर्थ, परिभाषा 5–15

इकाई–2 जनजाति एवं जाति, प्रजातीय वर्गीकरण, सांस्कृतिक वर्गीकरण 16–28

माड्यूल–2 जनजातीय सामाजिक संस्थाएं

इकाई–3 जनजाति और परिवार, विवाह, 28–45

इकाई–4 जनजाति और गोत्र, गोत्र की विशेषताएं, प्रकार 45–51

इकाई–5 टोटम एवं टोटमवाद 51–58

इकाई–6 आदिवासी आर्थिक व्यवस्था 59–90

माड्यूल–3 भारत में जनजातियों की समस्याएं

इकाई–7 जनजातियों की समस्याएं 91–102

इकाई–8 जनजातियों की समस्याओं के समाधान के सुझाव 102–103

इकाई–9 अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक सुरक्षा, जनजातीय नीतियाँ, विकास तथा कल्याण कार्यक्रम 103–125

माड्यूल–4 जनजातीय आंदोलन

इकाई–10 जनजातीय आन्दोलन का अर्थ, विशेषताएं 126–128

इकाई–11 जनजातीय आन्दोलन के कारण एवं सहायक दिशाएं 128–129

इकाई–12 भारतीय जनजातियों में आन्दोलनः कालोनियन तथा स्वतंत्रता पश्चात की अवधि 130–143

माड्यूल–5 वर्षांत समीक्षा 2024ः जनजातीय कार्य मंत्रालय

इकाई–13 जनजातीय सशक्तिकरण और प्रगति के लिए बजट 144–149

Acknowledgement

The Material (Pictures and images) we have used is purely for educational purpose. Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this book. Sould any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future of this book.

जनजातीय समाजशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र (Nature and Scope of Tribal Sociology)

bdkÃ&1 tutkrh; lekt lkL= dk vFk] {k=] vU; lkekftd foKkuk l| lEcU/k] tutkfr tkfr lkrR;] tutkfr

समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र एक दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध है कि ए. एल. क्रोबरं (1948) ने इन्हें जुड़वा बहनें तक कह दिया है, क्योंकि दोनों सामाजिक विज्ञान सामाजिक सम्बन्धों तथा संगठनों का अध्ययन करते हैं। ई०ए० हॉबेल (1949) के अनुसार विस्तृत अर्थो में समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र बिल्कुल एक समान हैं। मानवशास्त्र जहाँ आदिम समाज के सम्पूर्ण जीवन पद्धति तथा भौतिक पक्ष का अध्ययन करता है, वहाँ समाजशास्त्र समकालीन सामाजिक ढाँचे तथा सामाजिक प्रक्रियाओं पर विशेष बल देता है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया ने आज जनजातीय समाज को समकालीन समाज के बहुत करीब ला खड़ा कर दिया है। इसलिए समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र दोनों सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन के क्रम में एक दूसरे के अधिक निकट आ गये है। समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र का अध्ययन पद्धतियों में भी अब ज्यादा अन्तर नहीं रह गया है। (वर्मा 1991:1)

जनजातीय समाजशास्त्र के अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definiton of Tribal Sociology) समाजशास्त्र की जनजातीय समाज का अध्ययन करने वाला एक शाखा को जनजातीय समाजशास्त्र कहा जाता है। अपने व्यापक रूप में जनजातीय समाजशास्त्र जनजातीय समाजिक व्यवस्था का अध्ययन करने बाला विज्ञान हैं। सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक संस्थाएँ तथा इनसे सम्बन्धित प्रभाव एवं परिस्थितियाँ शामिल होती हैं। जनजातीय समाजशास्त्र जनजातीय सामाजिक संरचना तथा संस्थागत सामाजिक व्यवहारों तथा उनमें हुए परिवर्तनों का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र के सैद्धान्तिक ज्ञान का उपयोग जनजातीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

जनजातीय समाजशास्त्र की प्रकृति (Nature of Tribal Socilgy) जनजातीय समाजशास्त्र की प्रकृति के सम्बन्ध में मूल प्रश्न उठता है कि इसे प्राकृतिक विज्ञानों के अन्तर्गत रखा जाय या सामाजिक विज्ञानों की श्रेणी में। चूंकि जनजातीय समाजशास्त्र के अन्तगर्त जनजातीय समाज के उद्भव तथा इसके स्वरूप एवं परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है, इसलिए मूलतः यह एक सामाजिक विज्ञान है।

जनजातीय समाजशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Tribal Socology)-जनजातीय समाजशास्त्र जनजातीय समाज की समग्र रूप में अध्ययन करता है। जनजातीय समाजशास्त्र इस तथ्य में रूचि रखता है कि जनजातीय संस्कृति का विकास कैसे हुआ? जनजातीय सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं के उदभव एवं उदविकास का अध्ययन भी जनजातीय समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। यह विषय यह जानने का प्रयास करता है कि आदिकालीन सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था कैसी थी तथा उस समय मानव को विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विवाह, परिवार, गोत्र, नातेदारी,

धर्म, जादू, ज्ञान-विज्ञान, भाषा, कला, संगीत, साहित्य इत्यादि का उद्विकास कैसे हुआ था तथा इनका वर्तमान स्वरूप क्या है? जनजातीय समाजशस्त्र के अन्तर्गत समग्र रूप में जनजातीय समाज तथा उसके बदलते प्रतिमानों का अध्ययन किया जाता है।

NOTES

जनजातीय समाजशास्त्र के अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ सम्बन्ध-जनजातीय समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। जहाँ अन्य सामाजिक विज्ञानों ने जनजातीय समाजशास्त्र को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। जहाँ अन्य सामाजिक विज्ञानों ने जनजातीय समाजशास्त्र को अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वहाँ जनजातीय समाजशास्त्र पर भी उन्हें विशिष्ट सामग्रियों के लिए निर्भर रहना पड़ा है। इनके बीच काफी पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है। आज संस्कृति तथा उसके एकीकरण की अवधारण का प्रयोग सभी सामाजिक विज्ञानों का केन्द्र बिन्दू है, जिसके विश्लेषण के क्रम में इनकी आपसी सहभागिता अतिआवश्यक है।

जनजातीय समाजशास्त्र एवं इतिहास - इतिहास भूतकाल की सामाजिक घटनाओं का वर्णन करता है, जिसके अभाव में न हम वर्तमान को भली-भाति समझ सकते हैं और न भविष्य को समकालीन जनजातीय समाजों तथा आधुनिक गैर जनजातीय समाजों को समझने में इतिहास काफी मददगार साबित होता है। भूतकालीन मानवीय अन्तः क्रियाए, जिनके फलस्वरूप समाज और संस्कृति का विकास हुआ है, को समझने में इतिहास काफी सहायक रहा है। दूसरी ओर समाजशास्त्री जनजातीय समाजों की उत्पत्ति एवं उनके विकास के सम्बन्ध में अपने अध्ययनों के आधार पर जो कुछ ज्ञान प्राप्त करता है, वह इतिहास को भूतकालीन सामाजिक संरचना को समझने एवं सामाजिक घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्धों की विवेचना करने में विशेष सहायता प्रदान करता है।

इतिहास तथा जनजातीय समाजशास्त्र में जहाँ घनिष्ठतम सम्बन्ध है, वहाँ कुछ अन्तर भी है। इतिहास जहाँ केवल भूतकालीन विशिष्ट घटनों का क्रमवृद्ध वर्णन करता है, वहाँ जनजातीय समाजशास्त्र में भूतकालीन तथा वर्तमान दोनों ही प्रकार के समाजों का अध्ययन कियाज जाता है। इतिहास का सम्बन्ध जहाँ अतीत की घटनाओं से हैं, वहाँ समाजशास्त्र जनजातीय सामाजिक संरचना व्यवस्था तथा संस्था का अध्ययन करता है।

जनजातीय समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान-जनजातीय समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान दोनों ही विषयों का मानव व्यवहार से गहन सम्बन्ध है। मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानव स्वभाव एवं मानसिक प्रक्रियाओं से है, जिनका व्यक्ति के सामाजिक कार्यों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं से है, जिनका व्यक्ति के सामाजिक कार्यों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं को अधिक सही रूप में समझा जा सकता है। जनपदीय समाजशास्त्र जनपदीय सामाजिक सरंचना को ठीक से समझने के लिए आदिवासियों के वैयक्तिक पक्ष को भली-भाँति समझना अनिवार्य है। उनके व्यवहार के सम्बन्ध में प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त करना मनोविज्ञान के माध्यम से ही सम्भव है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त ज्ञान मनोविज्ञान के द्वारा हो प्राप्त हो सकता है, जिसका जनजातीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत विशेष महत्व है। सामाजिक मनोविज्ञान के विकास के साथ ही साथ मनोविज्ञान तथा जनजातीय समाजशास्त्र का सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हुआ है। सामाजिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत जहाँ सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में मानव व्यवहार तथा व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है, वहाँ जनजातिय समाजशास्त्र में इन्हीं मानवीय व्यवहारों एवं व्यक्तित्वों के आधार पर जनजातीय सामाजिक व्यवहारों तथा संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है।

मनोविज्ञान तथा जनजातीय समाजशास्त्र में आधारभूत अन्तर यह है कि जहाँ मनोविज्ञान का अध्ययन विषय मनुष्य का व्यवहार तथा उसकी मानसिक प्रक्रिया है, वहाँ जनजातीय समाजशास्त्र में जनजातीय

सामाजिक संरचना व्यवस्था एवं संस्था इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान का दृष्टिकोण जहाँ वैयक्तिक है, वहाँ जनजातीय समाजशास्त्र का दृष्टिकोण सामाजिक है। .

NOTES

जनजातीय समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र - अर्थशास्त्र के अन्तर्गत उन मानवीय क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, जिनके माध्यम से वह अपनी आवश्यक्ताओं की पूर्ति के लिए भौतिक साधनों या वस्तुओं को प्राप्त करता है। जनजातीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत जनजातीय समाजों की आर्थिक व्यवस्था का सामाजिक व्यवस्था के एक अंग के रूप में अध्ययन किया जाता है। जनजातीय समाजों की अर्थव्यवस्था को समझने में योगदान देता है। अर्थशास्त्री इस आधार पर अर्थव्यवस्था का आदिरूप समय उत्पादन उपभोग विनियम एवं वितरण की क्या व्यवस्था थी, के विषय में जानकारी प्राप्त करते है। दूसरी ओर जनजातीय समाजशास्त्र अर्थशास्त्र से जनजातीय समाजों की आर्थिक गतिविधियों को ठीक से समझने के लिए अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों व ज्ञानों का सहारा लेता है।

जनजातीय समाजशास्त्र में आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन सामाजिक व्यवस्था के एक अंग के रूप में किया जाता है, जबकि अर्थशास्त्र में एक विधि विज्ञान के रूप में जनजातीय समाजशास्त्र का क्षेत्र अर्थशास्त्र की तुलना में ज्यादा व्यापक है।

जनजातीय समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र-राजनीतिशास्त्र के विषय वस्तु राज्य के संगठन से सम्बन्धित हैं। यह उन तरीकों का अध्ययन करता है, जिनसे एक समाज अपने को सुसंगठित करता है तथा एक राज्य के रूप में कार्य करता है। जनजातीय समाजशास्त्र जनजातीय समाज की सामाजिक संरचना सामाजिक व्यवस्था तथा संस्थाओं का अध्ययन करता है। जनजातीय सामाजिक सरंचना के एक निर्मायक हिस्सा के रूप में राजनीतिक व्यवस्था भी आती है, जिसका अध्ययन राजनीतिशास्त्री द्वारा भी किया जाता है तथा जनजातीय समाजशास्त्रविदों द्वारा भी जनजातीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत जनजातीय समाज में कानून का क्या स्वरूप था, सामाजिक नियंत्रण के कौन से साधन थे तथा सरकार का क्या रूप था, का अध्ययन किया जाता है, जिसे समझने में राजनीतिशास्त्र से भी सहायता मिलती है।

जनजातीय समाजशास्त्र जहाँ जनजातीय समाज की संरचना तथा व्यवस्था का अध्ययन करता है, वहाँ राजनीतिशास्त्र केवल राजनीतिक व्यवस्था में रूचि रखता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जनजातीय समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा इन सबों के बीच पारस्परिक अन्तर्निभरता पायी जाती है। जनजातीय समाजशास्त्र ने जहाँ अन्य सामाजिक विज्ञानों से बहुत कुछ ग्रहण किया है, वहाँ उन्हें काफी कुछ प्रदान भी किया है। अन्तर्विषयक उपागम की लोकप्रियता के कारण इनके बीच की दूरी जहाँ कम हुई है, वहाँ इनकी पारस्परिक निर्भरता और अधिक सुदृढ़ हुई है।

जनजातीय तथा जनजाति-जातिं सांतत्यक (Tribe and Tribe-caste Continuum) - विश्व में अफ्रीका के बाद सबसे अधिक जनजातीय आबादी भारत में निवास करती है। साल 2011 की जनगणना के मुताबिक, भारत में अनुसूचित जनजातियों की आबादी देश की कुल आबादी का 8.6% थी. यानी, भारत में 1 करोड़ 42 लाख 81 हज़ार 34 लोग अनुसूचित जनजाति में आते हैं।

अनुसूचित जनजातियों की आबादी ग्रामीण इलाकों में ज़्यादा है. ग्रामीण इलाकों में जनजातीय आबादी 11.3% है, जबकि शहरी इलाकों में यह 2.8% है।

मध्य प्रदेश में सबसे ज़्यादा अनुसूचित जनजाति की आबादी है. यहां अनुसूचित जनजातियों की आबादी 14.7% है।

NOTES

मेघालय में सबसे कम अनुसूचित जनजाति की आबादी है. यहां अनुसूचित जनजातियों की आबादी 2.5% है।

2011 की जनगणना के मुताबिक, भारत में अनुसूचित जनजातियों के बीच लिंगानुपात 1,000 पुरुषों पर 990 महिलाएं है. यह साल 2001 की जनगणना में 978 था।

2011 की जनगणना के मुताबिक, भील भारत का सबसे बड़ा आदिवासी समूह है।

2011 की जनगणना के मुताबिक, मिज़ोरम और लक्षद्वीप में जनजातीय आबादी का प्रतिशत सबसे ज़्यादा है।

ये अनुसूचित जनजातिया सुन्दरवन के कच्छी जंगलों से लेकर हिमांचल के उन्नत शिखरों तक तथा असम के उष्ण कटिबंधीय सघन अरण्यों से लेकर राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों तक सहज भाव से निवास करती हैं। जनजातीय संस्कृति भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का एक अभिन्न हिस्सा है, जो प्रकृति में अत्यधिक वैविध्यपूर्ण है। प्रजाति, भाषा, संस्कृति, निवास तथा अर्थतंत्र की दृष्टि से एक विस्मयजनक विविधता भारतीय जनजाति संस्कृति में झांकती है। जनजाति की उत्पत्ति मानव उद्विकास के प्रारम्भिक चरणों में अन्तर्निहित है। जनजातियों को शताब्दियों से भौगोलिक पृथककता की स्थिति ने राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से दूर रखा है। जनजाति शब्द भारतीय सामाजिक संगठन के विस्तृत वर्णक्रम में एक अहम् स्थान रखता है। यद्यपि मानवशास्त्री, समाजशास्त्री, सामाजिक कार्यकर्ता तथा प्रशासक अभी तक इसकी परिभाषा को लेकर एकमत नहीं हैं।

जनजाति शब्द के लिए विभिन्न समाजविदों द्वारा विभिन्न पदनामों तथा नामावली का प्रयोग किया गया है, जिसके विभिन्न मानदंडों के आधार पर भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं तथा कहीं-कहीं एक दूसरे से परस्पर विरोधात्मक भी प्रतीत होते हैं। रिजले गरिसन, शूवर्ट, लेसी, मार्टिन, टैलेंट, सेडविक सरीखे नृतत्वशास्त्रियों ने जनजाति को एबोरिजनल या आदिवासी कहा है, जबकि हट्टन, एल्बिन, बेन्स जैसे विद्वानों ने उन्हें क्रमश: प्रिमिटिव ट्राइब्स, ऑरिजिनल ऑनर्स तथा जंगल पिपुल या फोरेस्ट ट्राइब्स या फॉक के रूप में वर्णन किया है। जी०एस० धुरिये ने उन्हें तथाकथित एबोरिजिनल या पिछड़ा हिन्दु के रूप में निर्दिष्ट किया है। आजकल जनजातीय समुदायों को इन्डिजिनस पिंपूल या देशी मूल के लोग या देशज कहने का भी प्रचलन है।

अंग्रेजी शब्द ट्राइब लैटिन भाषा के ट्राइबस शब्द से बना है, जिसका अर्थ आदिम रोमन लोगों का विभाजन ट्राई या तीन भागों में करने से था। काल प्रवाह में इसका उपयोग निर्धन या जन-जन के लिए भी किया जाने लगा। अंग्रेजी भाषा में यह शब्द सोलहवीं शताब्दी में आया, जहाँ इसका अर्थ किसी सामान्य पूर्वज से उत्पत्ति से था। जनजाति शब्द का वर्तमान अर्थ उन्नीसवीं में प्रयुक्त होने लगा, जबकि अंग्रेजी औपनिवेशिक द्वारा अफ्रीका के अधिकांश हिस्सों तथा एशिया के कुछ भागों को ट्राइब (जनजाति) कहा-गया। इसके पूर्व इन देशों में जाने वाले यात्रीगण व ईसाई मिशनरियाँ यहाँ के नागरिकों को "पिपुल" या "किंगडम" ही कहा करते थे। ट्राइब तो वे यदा-कदा ही कहा करते थे। यहाँ उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने सामान्य विस्तार के सिलसिले में भारत के विभिन्न समुदायों के लिए नेटिव या ट्राइब के रूप में नये वर्गीकरण का आधार खड़ा किया। पहले इन समुदायों के उनके अपने ही नाम से जाना जाता था। प्राचीन भारतीय ग्रंथों एवं पौराणिक कथाओं में आज की आदिम जातियों को उनके मूल नामों से उल्लेख किया गया है, जैसे असुर किन्नर सवर कोल भील निषाद इत्यादि। भारत की जनजातियों को इस अर्थ में देशज माना जाता है कि वे यहाँ आय से पहले आकर बस गये थे। सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय इन

जनजातियों के निवास करने के प्रमाण मिलते है। किन्तु कालक्रम में विषम परिस्थितियों के कारण पर्वतीय तथा जंगली भू-भागों में उन्हें शरण लेना पड़ा।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार "A Tribe is a race of peopoe now applied esapecially to a primary aggregate of people in a primitive or barbarous condition, under a headmenchief". इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका में जनजाति की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है।"A social group of simple and kind persons, the members &(which speak a common dialect, have a single government and act together (or such common purposesa as welfare" डब्लू० एच० आर० रिवर्स के अनुसार "जनजाति एक सरल समुदाय है, जो एक निश्चित भू-भाग पर निवास करती है, एक ही भाषा बोलती है तथा समान कार्यो जैसे-युद्ध इत्यादि भू-भाग पर निवास करती है, एक हो भाषा बोलती है तथा समान कार्यों जैसे युद्ध इत्यादि में संगठित होने की क्षमता रखती है। ई० ए० हॉबेल के मतानुसार "जनजाति" एक सामाजिक समुदाय है, जो एक विशिष्ट भाषा बोलती है, जिसकी एक विशिष्ट संस्कृति होती हैं, जो अपने समुह को दूसरे समुह से पृथक करती है जो कि सीमपवर्ती क्षेत्रों में निवास करती है, जिसमें एकता की भावना होती है। जॉन गिलिन तथा फिलिप के अनुसार पूर्व साक्षर स्थानीय समूहों के किसी सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो, जनजाति कहा जाता है। डी०एन० मजूमदार के शब्दों में, एक जनजाति परिवारों या परिवार समूहों का एक संकलन होती है, जिसका एक नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग पर रहते हैं, सामान्य भाषा बोलते है, विवाह व्यवसाय उद्योग के विषय में कुछ नियमों का पालन करते हैं तथा एक निश्चित तथा उपयोगी परस्पर आदान-प्रदान की व्यवस्था का विकास करते हैं। बी० एस० बिस्ट के विचार में सरलतम अर्थों में जनजाति लोगों के समूह या परिवारों का समुच्चय है, जो आदिम व्यासायों से अपना जीविकोपार्जन करती हो तथा जिनका एक सामान्य नाम तथा बोली हो तथा सजातीय विवाह के नियमों का अभी तक अनुपाल करती हो।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि जनजाति की कोई सर्वमान्य परिभाषा अभी तक नहीं दी जा सकी है। अब तक विभिन्न समाजविदों द्वारा जनजाति के लिए दी गई परिभाषायें किसी न किसी अपूर्णता से जुड़ी प्रतीत होती है। वे किसी विषय का सामान्य निर्देश करने के लिए ही उपयोगी मानी जा सकती हैं तथा विशेष क्षेत्र की जटिलता तथा अपवादों को पूर्णतया समेट नहीं पाती। सम्पूर्ण विश्व की जनजातीय आबादी को किसी एक परिभाषा के दायरे में सर्वग्राह्य अर्थ दे पाना संभव नहीं है। इस कमी को वस्तु विवेचन के विस्तार में ही पूर्णता प्रदान की जा सकती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366 (26) में अनुसूचित जनजातियों की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है :

ये ऐसी आदिम जातियाँ या ऐसे आदिम समाज के अंग या दल हैं, जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 342 (1) के द्वारा प्राप्त अधिकारों का पालन करते हुए राष्ट्रपति द्वारा जारी किये गये संविधान (अनुसूचित जनजातियाँ) आदेश 1950 के अनुसार देश के 14 राज्यों में 212 आदिम जातियों को अनुसूचित जनजातियों के रूप में अधिसूचित किया गया था। 1991 की जनगणना के समय भारत में अनुसूचित जनजातियों की कुल संख्या बढ़कर 427 हो गयी है। यद्यपि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण ने अपने सर्वेक्षण के चौआलिसवें राउण्ड के दौराना देश में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 582 दर्ज किया था।

भारत में कुछ ऐसी भी जनजातियाँ हैं, जिन्हें एक राज्य में अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्राप्त है, किन्तु दूसरे राज्यों में नहीं है। 1967 तक थारूओं को उत्तर प्रदेश में अनुसूचित का दर्जा प्राप्त है, किन्तु उत्तर प्रदेश में उन्हें यह मान्यता प्राप्त नहीं है। झारखण्ड में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 2002 द्वारा कोल तथा कवर जाति को अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम

NOTES

2002 द्वारा कोल तथा कवर जाति को अनुसूचित जनजाति के रूप में अधिसूचित किया गया है तथा अगेरिया को असुर ढेलकी दुध तथा पहाड़ी खाड़िया पात्तर को मुंडा तथा धांगर को डराव अनुसूचित जनजाति के साथ शामिल किया गया है। झारखण्ड के राउतिया, पुरान इत्यादि समुदायों को अनुसूचित जनजाति की सूचि में लाने हेतु संशोधन विधेयक भारत सरकार के विचारधीन है। अविभाजित बिहार में भूमिज समुदाय पुराने रौंची सिंहभूम हजारीबाग, धनबाद तथा संथाल परगना जिलों में अनुसूचित जनजाति की सूचि में निर्दिष्ट था, जबकि पुराने पटना व तिरहुत प्रमण्डल तथा मुंगेर, भागलपुर, पूर्णिया तथा पलामू जिलों में अनुसूचित जनजाति की सूचि में दर्ज था।

भारत में किसी समुदाय को अनुसूचित जनजाति के रूप में शामिल करने हेतु गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा निर्धारित संकेतक इस प्रकार हैं : (1) आदिम विशेषताओं के लक्षण, (2) विशिष्ट संस्कृति (3) भौगोलिक पृथककता (4) समुदाय के साथ सम्पर्क में व्यापक शर्मिलापन तथा (5) पिछड़ापन। गृह मंत्रालय, भारत सरकार के द्वारा निर्धारित उपयुक्त संकेतक के आधार पर किसी समुदाय को अनुसूचित जनजाति के रूप में सम्मिलित करने के सन्दर्भ में क्षेत्रीय गवेषणा के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष को लेकर प्रायः अन्वेषकों के बीच आम सहमति नहीं बन पाती। आजकल भारत के जनजातीय समुदाय तीव्र संक्रमण के दौर में हैं, इसलिए मानवशास्त्रीय अवधारणा के अनुरूप सर्वांगपूर्ण जनजातियाँ अब बिरले ही अस्तित्व में है। भारत में जनजातियों से संबन्धित कोई भी पूर्ण परिभाषा नहीं गढ़ी जा सकती, क्योंकि यहाँ की जनजातियों की मूलभूत विशेषताएँ आधुनिक सम्पर्को के कारण परिवर्तन के दौर में हैं।

जाति के लिए अंग्रेजी में कास्ट शब्द का प्रयोग होता है जो पुर्तगाली भाषा के कास्टा शब्द से बना है, जिसका अर्थ वंश, नस्ल या वर्ग होता है। जाति शब्द की उत्पत्ति का पता सन् 1665 में ग्रेसिया-डी ओरेटा नामक विद्वान ने लगाया। इसके बाद फ्रांस के अब्बे डुब्बाय ने इसका प्रयोग प्रजाति के सन्दर्भ में किया। हर्बट रिजले के अनुसार-जाति ऐसे परिवारों या समूहों का संग्रह है, जिनके समान नाम हो, जो अपनी जाति की उत्पत्ति किसी पौराणिक या ऐतिहासिक व्यक्ति से मानते हों, तो एक पुश्तैनी व्यवसाय करने का प्रदर्शन करते हों तथा जिन्हें ऐसे सभी दूसरे व्यक्ति जो इस सम्बन्ध में राय देने के अधिकारी हों, एक सामांगी बिरादरी मानते हैं।

एम०एन० श्रीनिवास के शब्दों में जाति एक विवाहपरक, सामान्यतः वह स्थानिक समूह है जिसका किसी व्यवसाय से पारंपरिक सम्बन्ध होता है तथा उसका स्थानिक जातियों के श्रेणीक्रम में एक विशिष्ट स्थान होता है। जातियों के बीच सम्बन्ध पवित्रता अपवित्रता होती है।

जे०एच० हट्टन के मतानुसार, "भारत की जाति व्यवस्था अनेक भौगोलिक सामाजिक राजनीतिक धार्मिक तथा आर्थिक घटकों के घाट-प्रतिघात की उपज हैं, जो भारत के अतिरिक्त अन्यन्त्र एक साथ नहीं मिलती जाति जैसी अद्वितीय व्यवस्था के उदय में अनेक कारकों ने योगदान किया है। इनमें एक भौगोलिक पक्ष प्रबल रहा है।

अनेक मार्गों से प्रवासी भारत आये और यहीं बस गये। इससे यहाँ बहुत बड़ी संख्या में ऐसे समाजों का जमघट हो गया जो सभ्यता के भिन्न भिन्न स्तरों पर थे। उनकी परम्परायें बरकार रहीं। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों ने कुछ ऐसा तरीका ढूंढ निकाला जिससे वे साथ-साथ रह सकी इसी आवश्यकता ने जाति व्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

ई०ए०एच० ब्लण्ट के अनुसार "जाति एक अन्तर्विवाही समूह अथवा अन्तर्विवाही समूहों का संकलन है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसकी सदस्यता अनुवांशिक होती है जो सामाजिक सहवास में क्षेत्र

में अपने सदस्यों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाता है, इसके सदस्य या तो एक सामान्य परम्परागत व्यवसाय को करते हैं अथवा किसी सामान्य आधार पर अपनी उत्पत्ति का दावा करते है और इस प्रकार एक समरूप के रूप में मान्य होते है।"

जी०डी० गाईकल के मत में "जाति व्यवस्था विश्वासों पर आधारित एक ऐसे अनुवाशिक संस्तरण, अन्तर्विवाही तथा व्यावसायिक समूह की ओर संकेत करती है, जिसमें अनेक कर्मकांडों तथा संस्कारों द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का पूर्व निर्धारित करके इनमें किसी प्रकार के भी परिवर्तन पर नियन्त्रण लगा दिया गया है।"

ई०ए० हॉबेल के शब्दों में "अन्तर्विवाह और आनुवंशिक पद के द्वारा सामाजिक वर्गों को एक स्थायी अपरिवर्तनीय रूप दे देना ही जाति है।"

डी०एन० मजुमदार तथा टी0एन0 मदान के अनुसार "जाति एक बन्द वर्ग है।"

सी०एच० कूले की दृष्टि में जब एक वर्ग पूर्णतया वंशानुक्रम पर आधारित होता है तो उसे हम जाति कहते हैं।

मैक्सवेबर का मत हैं कि "जाति हिन्दू धर्म के पारलौकिक सिद्धांतों पर आधारित है।"

इरावती कर्वे जाति को मूलतः एक अन्तर्विवाही समूह मानती हैं। उनकी दृष्टि में "जाति वस्तुतः एक विस्तृत नातेदारी समूह है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जाति एक ऐसा सामाजिक समूह है, जिसकी सदस्यता जन्म से प्राप्त होती है और जो अपने सदस्यों पर खान-पान व्यवसाय और सामाजिक सहवास सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्ध आरोपित करता है।

भारत में आति एक जटिल व्यवस्था है और इसके स्वरूप में इतनी विभिन्नता पायी जाती है कि इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। जे०एच० हट्टन का कथन है कि जाति विषय पर लगभग पाँच हजार प्रकाशन हो चुके है और इसलिए जाति के सम्पूर्ण अध्ययन के लिए विशेषज्ञों की एक सेना की आवश्यक्ता होगी। कई विद्वानों ने जाति की परिभाषा देने के बजाय इसकी विशेषताओं का उल्लेख किया है।

एन०के० दत्ता ने जाति की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया है: (1) एक जाति के सदस्य अपनी जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते, (2) प्रत्येक जाति में दूसरी जातियों के साथ खान-पान सम्बन्धित प्रतिबन्ध होते हैं, (3) अधिकांश जातियों के व्यवसाय निश्चित होते हैं। (4) जातियों में ऊँच-नीच का संस्तरण होता है, जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सर्वमान्य रूप से शिखर पर होती है। (5) व्यक्ति की जाति जन्म के आधार पर ही जीवन भर के लिए निश्चित होती है अन्यथा एक जाति से दूसरी जाति की सदस्यता ग्रहण करना सम्भव नहीं है तथा (6) सम्पूर्ण जाति व्यवस्था ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर आधारित होती है। जी.एस. धुरिये के अनुसार जाति की निम्न विशेषताएँ हैं : (1) समाज का खण्डों में विभाजन, (2) विभिन्न खण्डों का सोपान में बँट जाना, (3) भोजन तथा सामाजिक सहवास पर प्रति प्रतिबन्ध (4) विभिन्न समूहों (जातियों) को धार्मिक तथा अन्य नियोग्यताएँ एवं विशेषधिकार (5) व्यवसाय के स्वतंत्र चयन की अभाव तथा (6) विवाह पर प्रतिबन्ध ऐतिहासिक दृष्टि से भारत में पहला आगमन निग्रो का था जो अब यहाँ लगभग खत्म हो चुके हैं। नीग्रो के बाद यहाँ आग्नेय (आष्ट्रिक) लोगों का आगमन हुआ। इसके बाद यहाँ द्रविण आये, जिसके बाद आर्य आये। आर्य जब भारत में आये तब जातिप्रथा भारत में

थी या नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। स्वयं आर्यों ने जाति प्रथा का आश्रय इसलिए लिया कि उन्हें इस देश के अनेक वर्गों और लोगों को एक ही समाज के अन्दर अपनी अपनी सभ्यता तथा संस्कृति के अनुसार उचित स्थानों पर बैठाना था। असल में जातिवाद के रूप में आर्यों ने समाज के भीतर एक दीर्घा खड़ी कर दी जिसमें नीचे से ऊपर तक सभी श्रेणियों के लोग अपनी अपनी हैसियत के अनुसार आसानी से बैठ सकते थे। जाति की शाखाओं प्रशाखाओं की वृद्धि अनुलोम तथा प्रतिलोम नहीं थ कि वे द्रविण आष्ट्रिक अथवा नीग्रों समाज की छत से बचे बल्कि यह कि इन तमाम जातियों के लोगों को वे आर्य सभ्यता में रंगना चाहते थे और जो भी उनकी सभ्यता सीख लेता था, समाज में उनकी उन्नति आसानी से हो जाती थी। (दिनकर, 1994:79)

जाति प्रथा का उद्देश्य भारत में आने वाले प्रत्येक समुदाय को भारतीय सांस्कृतिक ढांचे में समाहित कर लेना था। मंगोल यूनानी शक आमीर युची और हूण तथा मुस्लिम आक्रमण से पहले आने वाले तुर्क जाति प्रथ के जन्म के बाद जो भी लोग भारत में आये उन्हें समाज के अन्दर पचाने में सबसे अधिक योगदान जाति प्रथा ने दिया क्योंकि भारत में यह समस्या नहीं थी कि नवागन्तुक लोगों को समाज में कहाँ रखा जाय। यहाँ जातियों की श्रेणियाँ अधिक थी और वे दिनों दिन बढ़ती ही जा रही थी। अतएवं नवागन्तुक लोगों में से प्रत्येक को अपनी वैयक्तिक अथवा पारिवारिक संस्कृति के अनुसार जातिगत ढांचे में उपर्युक्त स्थान आसानी से मिल जाता था। अब तो जाति प्रथा बिल्कुल निन्दित हो चली है और टूटने भी लगी है, किन्तु प्राचीन काल में इससे भारतीय संस्कृतिक को एक लाभ अवश्य हुआ कि अब कोई जाति अपने से भिन्न किसी अन्य जाति पर विजय प्राप्त करती थी, तब वह अपने से भिन्न लोगों की हत्या न कर जाति प्रथा की विशाल दीर्घा के किसी न किसी सोपान पर बैठाकर उन्हें अपने समाज में मिला लिया। प्राचीन भारत में द्विज के भीतर अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन तो था ही, द्विज तथा शूद्र के बीच भी विवाह पर रोक नहीं था। हाँ ऐसे विवाहों से उत्पन्न संततियों को समाज में कुछ निम्न पद दिये जाते थे, किन्तु धर्मशास्त्र इन सन्तानों का समाज से बाहर नहीं समझते थे (दिनकर, 1994: 80-81)।

जनजाति तथा जाति में अन्तर वर्तमान समय में जनजातियों तथा जातियाँ आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क में "आने के कारण अपनी मौलिक विशेषताओं का परित्याग करती जा रही हैं, यही कारण है कि जनजाति तथा जाति के बीच विभाजन की स्पष्ट रेखा खींच पाना संभव नहीं है। फिर भी जनजाति तथा जाति के बीच मोटे तौर पर निम्न अन्तर है :

(1) जनजाति एक निश्चित भू-भाग में निवास करती है, जो भौगोलिक रूप से पृथक होती है, जबकि जाति किसी निश्चित भू-भाग में निवास नहीं करती है। जाति अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत भू-भाग में बसी होती है।

(2) जनजाति की एक सामान्य बोली है, जबकि जाति विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में बसे होने के कारण भिन्न-भिन्न बोलियों का प्रयोग करती है।

(3) जनजाति में गोत्रीय वहिर्विवाह की प्रथा पायी जाती है, जबकि जाति में गौत्रीय वहिर्विवाह का प्रचलन होना आवश्यक नहीं है।

(4) जनजाति में आदिम विशेषताओं के लक्षण पाये जाते हैं, जबकि जाति में आदिम विशेषताओं का अभाव देखने को मिलता है।

(5) जनजाति में एक सामान्य विशिष्ट संस्कृति पायी जाती है, जबकि जाति में सामान्य तौर पर विशिष्ट संस्कृति का अभाव होता है।

(6) जनजाति के सदस्यों में अन्य समुदाय के साथ सम्पर्क में व्यापक संकोज के लक्षण पाये जाते हैं, जबकि जाति में इस संकोच का अभाव होता है।

(7) जनजाति सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से जाति की तुलना में पिछड़ी होती है।

(8) जनजाति में जाति की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक संगठित, व्यवस्थित तथा स्पष्ट राजनीतिक संगठन पाया जाता है। हालाँकि आजकल जनजातीय राजनैतिक संगठन के क्षरण की स्थिति उत्पन्न हुई है।

(9) जाति व्यवस्था में ऊँच-नीच का संस्तरण पाया जाता है, जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सर्वमान्य रूप से शिखर पर होती है, जबकि जनजाति में ऊँच-नीच का संस्तरण नहीं पाया जाता है।

(10) जाति व्यवस्था में जातियों के परस्पर भोजन एवं सामाजिक सहवास से सम्बन्धित अनेक निषेक्ष पाये जाते हैं, जबकि जनजाति में आमतौर पर इस प्रकार के सामाजिक व्यवहार पर निषेध लागू नहीं होते।

(11) प्रत्येक जाति का परम्परागत व्यवसाय होता है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है, जबकि. प्रत्येक जनजाति आर्थिक क्षेत्र में एक स्वतंत्र तथा आत्मनिर्भर ईकाई होती है। जनजाति के सभी सदस्य जीवन संबन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृषि एवं शिकार के प्रमुख कार्य के अतिरिक्त घर तथा हथियार बनाने इत्यादि कार्यों का सामान्य ज्ञान अवश्य रखते है।

(12) जाति व्यवस्था में उच्च जातियों को अनेक सामाजिक तथा धार्मिक विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं, raft for तथा अछूत जातियों को उनसे वंचित रहना पड़ता है। जनजाति के सभी सदस्य सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से प्रायः एक समान होते हैं। किसी-किसी जनजाति में पुजारी तथा परम्परागत पंचायत के सदस्यों का चयन भी लोकतांत्रिक ढंग से किये जाते हैं।

जनजाति-जाति तत्यक

भारतीय संदर्भ में जनजाति तथा जाति के बीच एक निरन्तरता पायी जाती है। 5000 वर्ष प्राचीन भारतीय सभ्यता के अन्तर्गत जनजाति तथा जाति के बीच की कड़ियाँ अतीत तथा वर्तमान के बीच की दूरी को दर्शाती हैं।

पेडरिक बेली (1961) ने उड़ीसा के कोंडमाल क्षेत्र की कोंड जनजाति तथा उड़ीसा की हिन्दु जातियों के आर्थिक व राजनैतिक संगठनों (संबंधों) के अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि जाति तथा जनजाति को एक ही पंक्ति के दो विपरीत छोरों की तरह देखना चाहिए न कि भिन्न अस्तित्वों की भांति जिसके अंतर्गत विभिन्न समूहों का स्पष्ट रूप से समावेश होता है। किसी विशिष्ट कसौटी के आधार पर समूहों की पक्ति में इन्हें विभिन्न बिन्दुओं पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है। बैली की प्रस्तावित कसौटी उपलब्ध कृषि भूमि तथा उस पर निर्भर लोगों का अनुपात रहा है। यह अनुपात इसके विपरीत वे लोग जिनका भूमि पर अधिकार एक निर्भर शील सम्बन्ध द्वारा प्राप्त है, जैसे काश्तकारी बटाईदारी इत्यादि का अनुपात जितना अधिक होगा वह समूह जाति छोर के करीब होगा। वेली की समीप के अनुसार कोंड समूह जनजातीय छोर के निकट है और उड़ीया समूह जाति छोर के समीप।

जाति तथा जनजाति को आन्तरिक व्यवस्था (संरचना) तथा इनमें सन्निहित अन्तर्सम्बन्ध की विवेचना से उपर्युक्त विवरण को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। बेली ने "संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक" उपागम का सहारा लेते हुए कोंडमाल की राजनैतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में "अन्तर्निर्भरता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। बेली (1960:250-60) के अनुसार अन्तर्निभरता का आशय है हर व्यक्ति का प्रत्येक दूसरे पर

आश्रित होना अर्थात परस्पर निर्भरता या परस्पर आदान-प्रदान की प्रक्रिया। यह समानता का द्योतक हैं। जब व्यक्ति समान रूपों से एक दूसरे पर आश्रित होते है तो उन्हें अन्य रूपों में भी समान समझ लिया जाता है। जनजातीय व्यवस्था खण्डकीय होती है। इसका प्रत्येक खण्ड (यथा--वंश समूह, गोत्र इत्यादि) स्वायत है। कोड का भूमिधारी गोत्र स्वायत्त होता है। इसके राजनैतिक सम्बन्ध संसाधनों तथा शक्ति के वितरण से आबद्ध होता है। वितरण न केवल वैसी स्थिति है जिसमें सदस्य अपने क्षेत्रीय संसाधन की रक्षा करते हैं, अपितु वे इसका संरक्षण भी करते हैं। संरक्षण में सहयोग भी होता है और प्रतियोगिता भी। कोंड सामाजिक दृष्टि से समान तथा आर्थिक रूप से अन्तर-निर्भर भूमिधारी गोत्रों से निर्मित है, जबकि उड़ीया समूह एक ऐसे "सुव्यवस्थित" समाज में निवास करता है, जो सामाजिक रूप से असमान तथा आर्थिक रूप से अनेक अनतनिर्भर जातियों से बना है। बेली के अनुसार स्वजनों के साथ कौंड लोगों का राजनैतिक सम्बन्ध खण्डकीय स्वरूप (क्षेत्र विशेष के गोत्र) वाला होता है। यह जनजातीय लक्षण है, किन्तु चूँकि उनके पास भूमि की मात्रा अधिक है, अतः वे अपने क्षेत्र के प्रभुजाति बन जाते हैं उन पर कुछ हिन्दु जातियाँ निर्भर करती हैं। इस अर्थ में जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में कोंड प्रभुजाति है। इस प्रकार कोंड एक जनजाति भी है और एक जाति भी। इस प्रकार कोंडमाल के युद्धक जाति अपने ही गोत्र के सदस्यों के साथ खण्डीय स्वरूप वाला राजनैतिक सम्बन्ध रखते हैं (यह जनजातीय संलक्षण हैं) किन्तु दूसरी जातियाँ भी उनपर निर्भर रहती हैं, क्योंकि युद्धक जाति के पास भूमि अधिक है। इस प्रकार युद्धक समूह वाले जाति भी हैं और जनजाति भी। इस दशा में कोड तथा योद्धा (जनजाति तथा जाति) में अन्तर किस प्रकार किया जाये? बेली की दृष्टि में दोनों को एक निरन्तरता के उपागम के संदर्भ में समझना होगा, जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। सार के तौर पर पक्ति के एक छोर पर ऐसा खण्डकीय समाज है जिसकी राजनैतिक व्यवस्था समतावादी है। इसके अन्तर्गत गोत्र अन्तर-निर्भर नहीं है। दूसरी ओर एक समाज है, जिसके बीच गोत्रों के बीच सम्पूर्ण समाज के परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्य समानता वाला सम्बन्ध है। अधिकांश सदस्यों की भूमिका निर्भरता वाली होती है। दोनों छोरों के बीच कौन एक किस बिन्दु पर अलग हो जाता है, कहना कठिन है। बेली के अध्ययनानुसार कोंडमाल क्षेत्र में 80 प्रतिशत जनसंख्या कोंड गाँवों की है, अर्थात भूमिधारी गोत्र धारकों की संख्या ज्यादा है। एक गोत्र दूसरे गोत्र पर निर्भर नहीं होता। इस प्रकार चूँकि 80 प्रतिशत जनसंख्या वाले खण्डकीय राजनैतिक व्यवस्था वाले हैं अतः कोडमाल जनजातीय क्षेत्र है, न कि हिन्दू जातीय क्षेत्र।

बेली (1960: 19) के मतानुसार विगत कुछ दशकों के दरम्यान क्षेत्र में दफ्तरशाही तथा संसदीय प्रजातंत्र के विकास की वजह से जनजाति तथा जाति के बीच भेद में "राजनैतिक रूप से असगंत होने के चिन्ह मिलते है। जनजातीय व्यवस्था में लोग अब राजनैतिक रूप से गोत्र सदस्यों के रूप में कार्य नहीं करते हैं, और नहीं निर्दिष्ट जातियों के सदस्यों के रूप में कार्य करते हैं। बल्कि अब वे भाषा-सम्बन्धी क्षेत्र और कभी-कभी इसके आर-पार के विस्तार तक संगठित समूहों के सदस्यों की भाँति कार्य करते हैं। सुरजीत सिन्हा (1965) ने दो समुदायों पहाड़ी मारिया गोंड तथा भूमिज का अध्ययन जनजाति-जाति तथा जनजाति कृषक के सन्दर्भ में किया है। जनजाति जाति सातत्य में सुरजीत सिन्हा द्वारा अवलोकित किये गये ध्रुव विस्तृत नातेदारी के ढांचे में तथा जनजाति कृषक निरन्तरता में ध्रुव क्षेत्रीय व्यवस्था के ढांचे में निर्दिष्ट किये गये हैं। दोनों प्रकार की निरन्तरता के अन्तर्गत ध्रुवों की विशिष्टतायें पारस्परिक रूप में अंत सम्बन्धित है। पेडरिक बेली के प्रतिकूल सुरजीत सिन्हा जनजाति को सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था तथा सांस्कृतिक परम्परा की स्थिति मानते हैं। इनके मतानुसार एक आदर्श जनजाति एक पृथक (पारिस्थितिकी, जनांकिकी, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से) एकरूप तथा अस्तरित समूह है, जिसमें कुछ विशिष्ट सांस्कृतिक विशिष्टतायें अन्तर्निहित होती हैं, जैसे स्वायत्त दृष्टि, समान मूल्य व्यवस्था, माननीय प्रकृति तथा अलौकिक दुनियाँ की सामीप्यता, विचारों में व्यवस्थीकरण के अभाव, नीतिपरक धर्म तथा

नैतिकक वैराग्य का अभाव, जनजातीय ध्रुव की प्रतिकूल विशेषतायें है। इन्हीं आधारों पर सुरजीत सिन्हा ने पहाड़ी मरिया को एक ध्रुव की ओर तथा भूमिज को जाति या कृषक ध्रुव के सन्निकट प्रतिस्थापित किया है। इन दोनों के मध्य परिणात्मक दृष्टि से निम्न विशेषताओं में विभिन्तायें स्पष्ट होती है। परिस्थितिकी, जनसंख्या, संजाति जटिलता, अर्थव्यवस्था तथा आंतरिक स्तरीकरण।

कुछ समीक्षकों की दृष्टि में सुरजीत सिन्हा ने जनजाति-जाति निरन्तरता में पहाड़ी मारिया गोंड तथा भूमिज की सापेक्षिक स्थितियों को बताने में सफलता प्राप्त की है, जबकि कुछ आलोचकों का मानना है कि सांस्कृतिक परिवर्ती को एक निरन्तर मापक्रम पर पैमाइस करना कठिन है। फिर भी ज्ञान तथा तकनीक की वर्तमाना उपलब्धता के आधार पर सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्ती सांख्यिकी विश्लेषण असंभव नहीं है। समाज वैज्ञानिक परिवर्तियों का तुलनात्मक अध्ययन व्यवस्थित ढंग से करने की क्षमता रखते हैं। (श्रीवास्तव 1992) सच्चिदानन्द ने बिहार राज्य (अविभाजित) के छः जिलों में अधिवासित गोंड समुदाय के अध्ययन के आधार पर यह बताने की कोशिश की है कि आति-जनजाति गतिशीलता सामान्यता परसंस्कृतिग्रहण प्रकिया का एक पक्ष है जो शताब्दियों से भारत में घटित होता रहा है। उन्होंने अपने इस अध्ययन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि गोंड किस प्रकार परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया द्वारा पड़ोसी हिन्दू जातियों के साथ आत्मसात कर लिये गये हैं। उत्तरी बिहार के दो जिलों में गोंडों के बीच स्वांगीकरण की मात्रा इतनी तीव्र है कि उन्हें सवर्ण जाति का दर्जा दे दिया गया है। सच्चिदानन्द द्वारा प्रस्तावित 20 हिन्दू अभिलक्षणों कीएक सूची में ऐसा पाया गया कि 13 अभिलक्षणों में उत्तरी बिहार के सवर्ण हिन्दुओं से काफी निकट हैं। इन अभिलक्षणों में प्रमुख हैं-दहेज, हिन्दू विवाह विधि, गौमांस, निषेध, अस्पृश्यता का अनुपालन, हिन्दू देवी-देवताओं की आराधना, सामाजिक स्तरीकरण, हिन्दुओं की स्वीकृत इत्यादि। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह इंगित करता है कि गोंड समुदाय अर्थिकी व व्यावसायिक दृष्टि से हिन्दू जातियों के समान है, अर्थात् जनजाति जाति निरन्तरता के पैमाने पर बिहार (अविभाजित) की गोंड जाति के छोर पर प्रतिस्थापित है। जनजाति जैसा एकाकी समाज की अपेक्षा वे जाति (अंग-समाज) बन गये हैं। इस प्रकार की जनजाति-जाति गतिशीलता की प्रघटना को एन. के. बोस ने हिन्दू विधि द्वारा जनजातियों का समावेश (Hindu method of tribal absorbtion) की संज्ञा दी है।

अभ्यास-प्रश्न

1. जनजातीय समाजशास्त्र का अर्थ एवं उसकी परिभाषा दें।
2. जनजातीय समाजशास्त्र का अन्य विज्ञानों के साथ संबंध की विवेचना करें।
3. जनजाति जाति सांतव्यक पर विवेचना प्रस्तुत करे।
4. जनजाति तथा जाति में अंतर स्पष्ट करें।

NOTES

bdkÃ&2 tutkfr ,oa tkfr] çtkfr; oxhZdj.k]lkL—frd oxhZdj.k

lekt'kkL= e] tkfr lkekftd Lrjhdj.k dh ,d ç.kkyh dk lnfHkr djrh g] tk fo'k"k :i l Hkkjr e çe[k g] tgk 0;fä ,d inkuØfer lkekftd leg ¼tkfr½ e inک gkr g tk mud 0;olk;] lkekftd fLFkfrvkj vr%fØ;kvk dk fu/kkfjr djrk gA

भारत एक विशाल देश है जिसमें अनेक विविधताएं हैं। आदिकाल से ही यह विभिन्न धर्मो, मतो, सम्प्रदायों, संस्कृतियों, प्रजातियों, जातियों और जनजातियों की कर्मभूमि रहा है। इन सभी ने यहां की सामाजिक व्यवस्था और संगठन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है और उन्हें एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया है। जाति प्रथा, जनजाति, ग्राम व्यवस्था वर्ण व्यवस्था आश्रम व्यवस्था कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त और संस्कार व्यवस्था भारतीय समाज के प्रमुख आधार है। अब हम यहां जनजाति और अनुसूचित जनजाति की अवधारणा को समझने का प्रयास करेंगे।

भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत भाग आदिम भाग आदिम जातियों या जनजातियों द्वारा निर्मित है। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में 5.16 करोड़ जनसंख्या जनजातियों की थी जो बढ़कर

1991 में 6.78 करोड़ तथा 2001 में 8.35 करोड़ हो गई। साल 2011 की जनगणना के मुताबिक, भारत में अनुसूचित जनजातियों की आबादी 10,42,81,034 थी. यह देश की कुल आबादी का 8.6% थी. प्रायः अधिकतर जनजातियां ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करती हैं, जहां सभ्यता का प्रकाश बहुत कम पहुंच पाया है। आज भी अनेक जनजातियां आदिम स्तर पर ही अपना जीवन व्यतीत कर रही है, जबकि दुनिया के अधिकांश देश प्रगति के पथ पर काफी आगे बढ़ चुके है।

पाश्चात्य विद्वानों ने जाने-अनजाने में भारतीय जनजातियों के इतिहास पर कोई सामग्री उपलब्ध नहीं कराई है, प्रायः मौन ही रखा है। उन्हें इतिहास-विहीन समाज बताकर छोटा आंकने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त विदेशी लेखकों ने ऐतिहासिक प्रमाणों के उपलब्ध नहीं होने पर भी जनजातियों को मूढ तथा असभ्य करहने की भूल की और उन्हे ‘‘जड’’ समाज के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया। अनेक विदेशी लेखकों ने जनजातियों को भूत-प्रेतं पूजक या (एनीमिस्ट) प्रमाणित करने का प्रयत्न किया जबकि ये लोग हिन्दू धर्म के मूल रूप के ही अनुयायी रहे है। यहां हमारा लक्ष्य जनजातियों के सम्बन्ध में प्रमाणित जानकारी उपलब्ध करा कर भ्रातियों को दूर करना है।

अनेक दुर्गम क्षेत्रों में आज भी अनेक ऐसे मानव समूह पाये जाते है जो पिछले सैकड़ों वर्षों से शेष संसार की सभ्यता से दूर रहकर अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पहचान बनाए हुए है। ये मानव-समूह घने जंगलों, ऊंचे पर्वतों, मरुस्थलों एवं पठारी क्षेत्रों में निवास करते है। उन क्षेत्रों को सामान्यतः अनुत्पादक माना जाता है। इन मानव--समूहों का लिखित इतिहास सामान्यतः उपलब्ध नहीं है। ऐसे मानव समूहों को आदिवासी, कबीली आबादी, आदिवासी तथा जनजाति जैसे नामों से पुकारा गया है। ये शब्द अंग्रेजी भाषा के ‘‘नेटिव’’ एबोरिजनल’’ तथा ट्राइव शब्दों के ही अनुवाद है। इन लोगों को ‘‘वन्य जाति’’ वनवासी, गिरिजन, आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। इन्हें आदिम या आदिवासी इसलिए कहा जाता है

कि ये भारत के प्राचीनतम निवासी माने जाते हैं और सम्भवतः भारत में द्रविड़ों के आगमन से पूर्व यहां ये ही लोग निवास करते थे। वेरियर एल्विन भी इन्हें आदिम जाति के नाम से सम्बोधित करते है। आपने लिखा है, "आदिवासी भारतवत्र की वास्तविक स्वदेशी उपज है जिनकी उपस्थिति और दावे हजारों वर्ष पुराने है। वे सबसे पहले यहाँ आए।" आदिवासियों के मसीहा ठक्कर बापा और भारतीय संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य जयपाल सिंह ने इन्हें आदिवासी के नाम से संबोधित किया है।

जनजातियों के नामों के सम्बन्ध में श्रीकांत ने लिखा है कि जनजातियां भारतवर्ष में विभिन्न समयों में अलग नामों से जानी गई है, यथ-आरण्यक, रानीपरज तथा आदिवासी। इन सभी शब्दों की अपनी-अपनी कमियाँ हैं और प्रत्येक शब्द से जनजाति का एक ही पक्ष उजागर हो पाता है, जैसे किसी क्षेत्र के मूल निवासियों के लिए "आदिवासी" शब्द का हिन्दी अनुवाद है, "ट्राइब" शब्द लैटिन भाषा के "ट्राइब्स" शब्द से बना है। पहले रोम में इस शब्द का प्रयोग समाज के विभिन्न भागों के लिए होने लगा। जनजातीय लोग अपेक्षाकृत पृथक् एवं अन्तर्मुखी समूह हैं जो उत्पादन एवं उपभोग की दृष्टि से समान हैं। अन्य लोगों की तुलना में आर्थिक दृष्टि से पिछड़े होने के कारण इनका शोषण होता रहा भारत के प्राचीन साहित्य में जनजाति शब्द का उल्लेख तो नहीं मिलता, परन्तु इन समूहों को अपने विशिष्ट नामों से ही जाना जाता था, जैसे गोंड, संथाल, भील, आदि। भारत के प्राचीन प्रामाणिक साहित्य में दखिण भारत में कुरुम्बा, इरूला एवं पनिया, मध्य भारत में असुर सावरा, उरांव गोड संथाल तथा भल एवं उत्तर-पूर्वी भाग में बोडो, अहोम, आदि जनजातियों का उल्लेख मिलता है। आधुनिक भारतीयों भाषाओं में इन लोगों को वनवासी पहाड़ी जनजाति, वन्य जाति या अनुसूचित जनजाति, आदि नामों से जाना जाता रहा हैं डॉ. घुरिये इन्हें भारत के आदिवासी नहीं मानते, वरन् इन्हें पिछड़े हिन्दू कहते है। उन्होंने ऐतिहासिक प्रमाण देकर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि अधिकांश जनजातियां हिन्दू धर्म को मानती है। अतः वे हिन्दू समाज की ही अंग हैं कुछ विद्वान इन्हें भाषा के आधार पर जनजातियां कहते हैं, क्योंकि इनके द्वारा बोली जाने वाली भाषाएं जनजाति भाषा की श्रेणी में आती हैं।

अंग्रेजी के समय में जनजाति सम्बन्धी सामाजिक श्रेणी की अवधारणा विकसित हुई इसका उद्देश्य इन लोगों की हिन्दू मुस्लिम एवं अन्य धार्मिक समूहों से पृथक रखना था। इनको शेष लोगों से अलग बनाए रखने का आधार जनजातियों का धर्म (जीववाद) था जो शेष लोगों के धर्मों से भिन्न था। 1919 के अधिनियम द्वारा जनजातियों के स्थानीय जनसंख्या के आधार पर पूर्णतः पृथक् एवं आंशिक रूप से पृथक क्षेत्र बनाए गए। अंग्रेज इन लोगों की पृथक् श्रेणी को स्पष्ट नाम नहीं दे सके, यही कारण है कि विभिन्न जनगणनाओं में इनके लिए जिन नामों का प्रयोग हुआ है, वे है जीववादी, पहाड़ी बन्यजाति, आदिमजातियाँ तथा जनजातियाँ।

जनजाति का अर्थ एवं परिभाषा
(MEANING AND DEFINITION OF TRIBE)

गोत्र का एक विस्तृत स्वरूप जनजाति है। यह खानबदोशी जत्थे, झुण्ड गोत्र भ्रातृदल एवं अर्द्धार्थ से अधिक विस्तृत एवं संगठित होती है। जनजाति को परिभाषित करते हुए गिलिन एवं गिलिन लिखते है। स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी संग्रह को जोकि एक सामान्य क्षेत्र में रहता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो, एक जनजाति कहते है। डॉ. रिवर्स के मतानुसार, "जनजाति एक एकसा सरल प्रकार का सामाजिक समूह है जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध आदि सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।"

डॉ. मजूमदार लिखते हैं, एक जनजाति परिवारों के समूह का संकलन होता है जिसका एक सामान्य नाम

होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग में रहते है, समान भाषा बोलते है और विवाह, व्यवसाय या उद्योग के विषय में निश्चित निषेधात्मक नियमों का पालन करते हैं और पारस्परिक कर्तव्यों की एक सुविकसित व्यवस्था को मानते हैं।

NOTES

इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (Imperial Gazetteer of India) के अनुसार, एक जनजाति परिवारों का एक संकलन है, जिसका एक नाम होता है, जो एक बोली बोलती है, एक सामान्य भू-भाग पर अधिकार रखती है या अधिकार जताती है और जो प्रायः अन्तर्विवाह नहीं करती रही हैं

हॉबल का कथन है कि "एक जनजाति एक सामाजिक समूह है जो एक विशेष भाषा बोलता है तथा एक विशेष संस्कृति रखता है जो दूसरे जनजाति समूहों से पृथक करती है। यह अनिवार्य रूप से राजनीतिक संगठन नहीं है।"

चार्ल्स विनिक ने जनजाति की परिभाषा करते हुए लिखा है, "एक जनजाति में क्षेत्र भाषा, सांस्कृतिक समरूपता तथा एक सूत्र में बंधने वाला सामाजिक संगठन आता है। यह सामाजिक उपसमूहों जैसे गोत्रों. या गांवों को सम्मिलित कर सकता है।"

रॉल्फ पिडिंगटन ने जनजाति का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है, हम एक जनजाति की व्यक्तियों के एक समूह के रूप में व्याख्या कर सकते है, जो कि समान भाषा बोलता हो, समान भू-भाग में निवास करता हों तथा जिसकी संस्कृति में समरूपता पायी जाती हो।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि एक जनजाति एक ऐसा क्षेत्रीय मानव समूह है जिसकी एक सामान्य संस्कृति, भाषा, राजनीतिक संगठन एवं व्यवसाय होता है तथा जो सामान्यतः अन्तर्विवाह के नियमों का पालन करता है।

अनुसूचित जनजातियां (Scheduled tribesaa)

समाजशास्त्रियों का मानना है कि भारतीय आदिवासियों के लिए उचित सम्बोधन "पिछडे हुए हिन्दू" ही है, इन्हीं को जनजाति नाम दिया गया है। उनके अनुसार इन्हे तकनीकी दृष्टि से अनुसूचित जनजाति" (Scheduled Tribe) कहा जाना चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात अनुसूचित जनजातियों का संरक्षण तथा विकास संविधान का दायित्व समझा गया। इस कार्य हेतु जनजातियों की एक सूची बनाई गई। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के खण्ड 1 में बताया गया गया है कि राष्ट्रपति सार्वजनिक सूचना द्वारा जनजातियों, जनजातीय समुदायों तथा जनजातीय समुदाय के भीतरी समूहों की घोषणा करेगे। इस सूचना में जिन जनजातियों, जनजातीय समुदायों तथा जनजातियों की सूची में समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा नाम बढ़ाए जा सकते है। स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजाति की संख्या अधिसूचनाओं के आधार पर घटती या बढ़ती रही है। भारत में 700 से ज़्यादा जनजातियां हैं। इन्हें भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत अधिसूचित किया गया है। ये जनजातियां देश के अलग-अलग राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में फैली हुई हैं। संविधान में जनजाति की कोई परिभाषा नहीं दी गई प्रशासनिक दृष्टि से जिन जनजा तियों के नामों का संविधान में उल्लेख है, वे अनुसूचित जनजातियां कहलाती है। अनुसूचित जनजाति की सूची में अनुसूचित जनजातियों की संख्या में समय-समय पर होने वाली वृद्धि के दो प्रमुख कारण है।

(i) कई नयी जनजातियों को जनजातियों के रूप में मान्यता प्राप्त हो जाना,

(ii) जनजातियों के भेदों को या उप-भागों (खण्डों) को जनजाति का दर्जा मिल जाना। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि भारतीय संविधान में उन वर्गों जो कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीकि दृष्टि

से पिछड़े हुए है, के उत्थान और कल्याण के लिए विशेष प्रावधान किये गए है। इसी आशय से जिन जनजातियों के नाम संविधान की अनुसूची में सम्मिलत किए गए हैं, उन सभी को अनुसूचित जनजाति के नाम से पुकारा जाता है।

स्पष्ट है कि जनजाति और अनुसूचित जनजाति में मुख्य अन्तर यही है कि जनजाति के अन्तर्गत देश में पायी जाने वाले सभी जनजातियां आ जाती हैं, जबकि अनुसूचित जनजाति के अन्तर्गत केवल वे ही जनजातियां आती है, जिनको संविधान में सम्मिलित किया गया है, या जिनको सम्मिलित किए जाने की राष्ट्रपति ने समय-समय पर स्वीकृति दी है।"

जनजातीय समाज की विशेषताएं (लक्षण)
(Characteristics of Tribal Society)

जनजातीय समाज सरल समाजों की श्रेणी में आते है, अतः इनमें वे सभी विशेषताएं पायी जाती है जो एक सरल समाज में पायी जाती है। जनजातीय समाज कम विभेदीकृत होते है, इनमें परम्परा एवं रूढिवादिता का बोलबाला होता है तथा धर्म की प्रधानता होती है। आकार की दृष्टि में ये छोटे होते है जिनमें वैयक्तिक सम्बन्धों की प्रधानता होती हैं, ये समष्टिवादी होते है, इनमें गतिशीलता का अभाव पाया जाता है तथा भिन्नता के स्थान पर समानताएं अधिक पायी जाती है, इनमें प्राथमिक समूह की प्रधानता होती है और सामाजिक नियन्त्रण के लिए अनौपचारिक साधनों, जैसे प्रथा, परम्परा, जनरीति, नैतिकता तथा धर्म का प्रयोग अधिक प्रचलित है। इन विशेषताओं के अतिरिक्त जनजातीय समाज की विशिष्ट विशेषताओं को हम विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत इस प्रकार से दर्शा सकते हैं:

(1) सामान्य भू-भाग (Common Territory)-एक जनजाति एक निश्चित भू-भाग में ही निवास करती है। इसके परिणामस्वरूप उसका उस भू-भाग से लगाव एवं उसके सदस्यों में दृढ सामुदायिक भावना का विकास हो जाता है। सामान्य भू-भाग में रहने के कारण ही उनमें सामान्य जीवन की अन्य विशेषताएं विकसित हो जाती है, किन्तु डॉ. रिवर्स जनजाति के लिए एक निश्चित भू-भाग को आवश्यक नहीं मानते।

(2) सामान्य भाषा (Common Language) एक जनजाति के लोग अपने विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते है। भाषा के माध्यम से ही वह अपनी संस्कृति का हस्तान्तरण पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को करती है, किन्तु सभ्यता के सम्पर्क के कारण कई जनजातियां द्विभाषी ही गयी है।

(3) विस्तृत आकार (Big Size)-एक जनजाति में कई परिवारों का संकलन होता है। इसमें कई देश, समूह एवं गोत्र तथा भ्रातृदल होते है। यही कारण है कि इसकी सदस्य संख्या अन्य क्षेत्रीय समुदायों से अधिक होती है।

(4) अन्तर्विवाह (Endogamy)-एक जनजाति के सदस्य अपनी ही जनजाति में विवाह करते है।

(5) एक नाम (A Name)-प्रत्येक जनजाति का कोई नाम अवश्य होता है जिसके द्वारा वह पहचानी जाती है। उसके सदस्य अपना परिचय जनजाति के नाम के आधार पर ही देते है।

(6) सामान्य संस्कृति (Common Culture)-एक जनजाति के सभी सदस्यों की सामान्य संस्कृति होती है, उनके रीति-रिवाजों, प्रथाओं लोकाचारों, नियमों, कला, धर्म, जादू-संगीत, नृत्य, खान-पान भाषा, रहन-सहन, विचारों, विश्वासों, मूल्यों, आदि में समानता पायी जाती है।

(7) आर्थिक आत्मनिर्भरता (Economic Self-Sufficiency)-एक जनजाति अपनी सभी आर्थिक आवश्यकताओं को स्वयं ही पूरा कर लेने में सक्षम होती है। शिकार, फल-फूल एकत्रित करने, पशुचारण, कृषि एवं गृह उद्योग, आदि के द्वारा अपनी आवश्यकता की वस्तुएं जनजाति के सदस्य स्वयं ही जुटा लेते है। यद्यपि कभी-कभी वह अपने पड़ोसी समाजों से भी विनिमय करते है।

(8) राजनीतिक संगठन (Political Organization) एक जनजाति का अपना निजी राजनीतिक संगठन होता है। इसमें अधिकांशत: एक वंशानुगत मुखिया होता है जो परम्पराओं का पालन कराने, नियंत्रण बनाये रखने एवं नियमों का उल्लंघन करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था करता हैं कही-कही मुखिया की सहायता के लिए वयोवृद्ध लोगों की एक परिषद् (Council of the elders) भी पायी जाती है। कुछ विद्वानों ने राजनीतिक संगठन को जनजाति के लिए आवश्यक नहीं माना

(9) सामान्य निषेध (Common Taboo)-एक जनजाति खान-पान, विवाह, परिवार, व्यवसाय, धर्म, आदि से सम्बन्धित समान निषेधों का पालन करती 1

(10) हम की भावना-एक भू-भाग में निवास करने के कारण एक जनजाति के सदस्यों में ''सामुदायिक ''भावना'' या हम की भावना'' पायी जाती है। इसी भावना के कारण वे परस्पर सहयोग एवं सहायता प्रदान करते है और संकट के समय एकता का प्रदर्शन करते है।

(11) नातेदारी का महत्व-जनजाति में नातेदारी को महत्व दिया जाता है। जनजातीय लोग अपने राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सम्बन्ध अपने नातेदारों तक ही सीमित रखते है। उनके कानूनों एवं प्रथाओं का पालन भी नातेदारी तक ही सीमित होता है। कई बार तो नातेदारी का विस्तार सम्पूर्ण जनजाति तक होता है।

(12) धर्म-प्रत्येक जनजाति का अपना एक विशिष्ट धर्म भी होता हैं इनके धर्म में प्रकृति पूजा, आत्मावाद, जीवसत्तावाद और मानावाद की प्रधानता होती है। ये लोग अनेक अवसरों पर कई जादुई क्रियाएं भी करते है।

(13) सामान्य पूर्वज-कई जनजातियां अपनी उत्पत्ति किसी एक ही सामान्य पूर्वज से मानती है। यह पूर्वज काल्पनिक या वास्तविक भी हो सकते है।

इवान्स प्रिचार्ड ने आदिम समाज या जनजाति समाज की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ऐसे समाज जनसंख्या क्षेत्र और सामाजिक सम्पको की परिधि की दृष्टि से छोटे होते है, इनकी प्रौद्योगिकी (Technology) प्रगतिशील समाजों की तुलना में सरल प्रकार की होती है तथा अर्थव्यवस्था भी सरल प्रकार की होती है। जिनमें सामाजिक कार्यों का विशेषीकरण कम मात्रा में पाया जाता है। रॉबर्ट रैडफील्ड ने आदिम समाज की इन विशेषताओं में कुछ विशेषताएं और जोड़ दी है जैसे इनमें साहित्य, व्यवस्थित कला, विज्ञान एवं आत्मविद्या (Theology) का अभाव पाया जाता है।

पिडिंगटन ने आदिम या जनजातीय समाज की निम्नांकित विशेषताएं बतायी है:

(1) आदिम या जनजातीय समाज निरक्षर समाज है, इनमें लेखन या लिपि नहीं पायी जाती। (2) जनजातीय समाजों का संगठन सरल प्रकार का होता है तथा इसका निर्माण छोटे-छोटे सामाजिक समूहो जैसे परिवार, गोत्र, अर्द्धांश, आदि के आधार पर होता है। (3) जनजातीय समाज में प्रौद्योगिक विकास का निम्न स्तर पाया जाता है। (4) इनमें नातेदारी एवं स्थान के आधार पर निर्मित सामाजिक सम्बन्ध अधिक महत्वपूर्ण होते है। (5) इनमें आर्थिक विशेषीकरण एवं सामाजिक समूह की बहुलता का अभाव पाया जाता है।

वर्तमान समय में जनजातीय समाज आधुनिकता के सम्पर्क के कारण अपनी अनेक आदिम विशेषताएं खोते जा रहे है और सभ्य समाज की कई विशेषताएं ग्रहण करते जा रहे है।

भारतीय जनजातियों के सन्दर्भ में हमें स्पष्टतः समझ लेना चाहिए कि इनसे सम्बन्धित लोग शेष भारतीयों से किसी भी रूप में अलग नहीं है। ये भारत के अन्य लोगों से पृथक नहीं माने जा सकते। ये भारतीय समाज के ही अभिन्न अंग है। अन्तर केवल इतना है कि भौगोलिक पृथक्करण और सामाजिक पिछड़ेपन .के कारण ये लोग शेष भारतीयों की तुलना में कम विकसित रह गए। भारतीय जनजातीय लोग अन्य भारतीयों के साथ हजारों वर्षो से भारत में एक साथ रह रहे है। यहां हमें इस बात को भी भली-भांति समझ लेना चाहिए कि भारतीय जनजातियों में यहां के मुख्य धर्म (हिन्दू धर्म) का प्रारम्भिक रूप ही प्रचलित रहा है। इसके अतिरिक्त भारत की उत्तर, दक्षिण अथवा पूर्वोत्तर क्षेत्र की हिन्दू तथा जनजातीय प्रजातियां एक ही है। उनमें किसी प्रकार का कोई प्रजातीय अन्तर नहीं है। अंग्रेजों के शासनकाल में जनजातीय लोगों को हिन्दू और मुसलमान जनसंख्या से अलग दर्शाने की कोशिश की गई। इसके पीछे मूल रखते थे। महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और जवाहरलाल नेहरू ने तो स्पष्ट शब्दों में कई बार कहा है कि अंग्रेज अपनी सोची-समझी नीति के तहत भारतीय जनजातियों को अलग-थलग रखने का पूरा प्रयास करते रहे है, ताकि स्वतन्त्रता की चेतना यां ज्योति उन तक नहीं पहुंच पाए।

पुराने समय की राजनीतिक इकाई जनजाति की अवधारणा में अब बदलाव आया है। उसकी अब व्यक्तियों के ऐसे समूह के रूप में पहचान बनी है जो निर्धनता एवं पिछड़ेपन से त्रस्त है। सदियों से चल रहे जनजातियों के शोषण तथा उत्पीड़न ने उनके धैर्य एवं साहस को पूरी तरह समाप्त कर दिया है। आज जिन अभावों एवं कष्टों से जनजातीय लोग परेशान है। उससे इन्हे सहसा उनके गौरवमयी अतीत की याद आ जाती है, लेकिन अब ये सदियों पुरानी नींद से धीरे-धीरे जाग रहे। युवा पीढ़ी के लोगों विशेषतः शिक्षित अब अपनी क्षमताओं को पहचान रहे हैं और नयी चुनौतियों का मुकाबला करने हेतु उत्सुक हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में जनजातीय समुदायों को संविधान के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों (Scheduled Tribesaa) की श्रेणी में सम्मिलित किया गया। इससे जनजातियों को विशिष्ट जनजातीय भाषाई तथा सांस्कृतिक इकाई के रूपमें अपनी स्थिति को मजबूत करने का मौका मिला है। अनुसूचित जनजातियों को दिये गये आरक्षण से उन्हें अपनी सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति को सुदृढ करने का अवसर मिला है। आवश्यकता इस बात की है कि आरक्षण की बैसाखी का सहारा छूट जाने पर भी जनजातियं सुदृढतापूर्वक अपनी स्थिति को उत्तरोतर उन्नत बनाने की क्षमता अपने में विकसित कर सके। इसी दिशा में सरकारी और गैर-सरकारी प्रयत्न होने चाहिए।

जनजाति एवं जाति
(TRIBE AND CASTE)

कई बार जाति एवं जनजाति शब्दों का प्रयोग समान अर्थो में किया जाता है जबकि ये दोनों भिन्न अवधारणाएं है। यद्यपि इन दोनों में कुछ समानताएं भी हैं, जैसे कुछ जातियां ऐसी है जो जनजातियों की भांति ही एक निश्चित क्षेत्र में निवास करती हैं और एक निश्चित भाषा का ही प्रयोग करती है फिर भी इन दोनों में निम्नांकित अन्तर है।

(1) जनजाति एक ऐसा सामाजिक समूह है जो एक निश्चित भू-भाग पर बसा होता है, जबकि जाति का कोई निश्चित भू-भाग नहीं होता।

(2) जाति मुख्यता जन्म के आधार पर विकसित होती है, जबकि जनजाति एक निश्चित भू-क्षेत्र में निवास करने के कारण।

(3) प्रत्येक जाति का एक निश्चित परम्परागत व्यवसाय रहा है, किन्तु किसी जनजाति का कोई एक निश्चित व्यवसाय नहीं होता और न ही उसके सदस्यों पर व्यवसाय सम्बन्धी कोई नियन्त्रण ही होते हैं

(4) जनजातियां अपनी उत्पत्ति किसी काल्पनिक पूर्वज से मानती है, जबकि जातियां ऐसी नहीं मानती।

(5) प्रत्येक जनजाति का एक राजनीतिक संगठन होता है, जबकि जाति में जाति पंचायते होते हुए भी जनजातियों की भांति उनका कोई राजनीतिक संगठन नहीं होता।

(6) एक जनजाति में कोई उपजनजाति नहीं होती जबकि एक जाति में कई उपजातियां होती

(7) जाति में अन्तर्विवाह के कठोर नियम पाए जाते हैं, जबकि जनजाति में ये नियम लीचले होते हैं

(8) एक जनजाति में ऊंच-नीच की भावना एवं अस्पृश्यता नहीं पाई जाती जबकि जाति व्यवस्था में संस्तरण व अस्पृश्यता की भावना पाई जाती हैं

(9) जनजातियों में गोत्र के नाम टोटम, पशु, पेड़-पौधों आदि के आधार पर होते है, जबकि जाति के गोत्र के नाम ऋषियों के आधार पर होते है।

(10) जनजातियों के अपने-अपने टोटम होते है जिसको ये पवित्र मानते है, और जिसकी आध्यात्मिक शक्ति में ये विश्वास करते हैं। जातियों में टोटम जैसी किसी शक्ति में विश्वास नहीं किया जाता।

(11) जनजातियां आत्मनिर्भर होती है, किन्तु जाति नहीं। कई जातियां मिलकर ही सम्पूर्ण समाज-व्यवस्था का निर्माण करती है जबकि एक जनजाति अपने आप में ही पूर्ण इकाई एवं व्यवस्था होती है।

"बेली" को यह मान्यता है कि जनजातियों को एक एक से सतत सेतु की तरह माना जाना चाहिए। जिसके एक और जनजातियां और दूसरी ओर जातियां है। जनजातियों की संरचना पृथक्कृत तथा समतावादी है जबकि जातियों की जैविक एकात्मवादी वाली संरचना की तरह अन्योन्याश्रिता सिन्हा ने भी जाति और जनजाति को सतत सेतु के रूप में ही देखा है।

भारतीय जनजातीय संस्कृति अत्यधिक वविध्यपूर्ण है। अधिवास, प्रजाति, भाषा तथा अर्थतंत्र की दृष्टि से एक विस्मयजनक विविधता भारतीय जनजातीय संस्कृति में दृष्टिगोचर होती हैं।

क्षेत्रीय विभिन्नताएँ (Regional Variations)-भारत की जनजातियां देश के लगभग 15 प्रतिशत भू-भाग पर अधिवासित हैं। वे न केवल विभिन्न बोलियां बोलती हैं, बल्कि प्रजातीय, भाषाई, सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी एक-दूसरे से भिन्न हैं। ऐतिहासिक, नृजातीय तथा सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से वैविध्यपूर्ण भारतीय जनजातियाँ, जो विभिन्न क्षेत्रों में निवास करती हैं, निम्नलिखित 6 आंचलिक समूहों में विभाजित हैं (सच्चिदानन्द तथा प्रसाद, 1996)

1. दक्षिणी क्षेत्र (Southern Region)-यह क्षेत्र कष्णा नदी के दक्षिण में अवस्थित है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश राज्य आते हैं। इस क्षेत्र की जनजातियों में केरल की अदियन, इरूलर, कानीक्कर, कुरिचिचन, मलाय पनियान, तमिलनाडु की कट्टनयाकन, कोंडोरेडिज, कुरूमन्स, मलायाली, कर्नाटक की हसालारू, कडू कुरबा, कोलचा, कोया गेंदा, मराठी, नायका तथा आंध्र प्रदेश की बगता चेंचू, गदबा हिल रेडिज, लम्बाडीज बाल्मिकी, पेंडीज इत्यादि प्रमुख हैं।

2. मध्यवर्ती क्षेत्र (Middle Region) इस क्षेत्र का विस्तार उत्तर में गंगा में मैदान से दक्षिण में कृष्णा. नदी तक है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत विध्यांचल तथा सतपुडा को पर्वतीय पट्टियाँ भी शामिल है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत झारखण्ड बिहार, उड़ीसा मध्य प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल राज्य आते हैं। इस क्षेत्र की जनजातियों में झारखंड राज्य के संथाल, मुंडा, हो खड़िया, भूमिज, खरवार, चेरो, उड़ीसा की बथुडी भुईया, बिन्झल गोंड, जुआंग, किसान, कोल्हा, कोल लोधा, मध्य प्रदेश की अगरिया, बैगा, बिंझवार, गोंडन हल्बा, कमार, पनिका तथा परिचत बंबाल के बेदिया चकमा, कोरा महली नगेसिया, सवर इत्यादि जनजातियाँ प्रमुख हैं।

3. पश्चिमी क्षेत्र (Wesaatern Region) इस क्षेत्र के अन्तर्गत राजस्थान गुजरात, महाराष्ट्र तथा गोवा राज्य वं दमन व दीव तथा दादरा व नगर हवेली केन्द्रशासित प्रदेश आते है। इस क्षेत्र की जनजातियों में राजस्थान की भील, मीणा, दमोर, गरासिया, सहरिया गुजरात की भील चौधरी धोदिया हलपती, गमीत, कोकना कोली पटेलिया वल महाराष्ट्र की अंधबाद बिंझवार, धनवार, गोन्द, कमार, कोकना, कोली मल्हार, पथारी, पाद्य गोवा के तालाबिया, नायका, दमन व दीव की धोदिया, कोकना, वर्लि इत्यादि प्रमुख हैं।

4. केन्द्रीय तथा पश्चिमी उप-हिमालय क्षेत्र (Central and Wesaatem Sub-Himalayan Region) इस क्षेत्र के अन्तर्गत सिक्कीम, उत्तर प्रदेश हिमाचल प्रदेश, पंजाब हरियाणा तथा जम्मू व कश्मीर राज्य आते हैं। इस क्षेत्र की जनजातियों में सिकक्कम की भुटिया तथा लेपचा उत्तर प्रदेश की थारू जौनसारी भोटिया, बुक्सा तथा राजी, हिमांचल प्रदेश की भोट गद्दी गुज्जर किन्नर पंगवाला तथा जम्मू व कश्मीर की बेदा, चंगपा, गर्रा तथा सिप्पी जनजातियाँ प्रमुख हैं।

5. पूर्वी उप-हिमालय क्षेत्र (Easter Sub-Himalayan Region) इस क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तर-पूर्व भारत की पर्वतीय घाटियाँ तथा अन्य क्षेत्र आते है। अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड तथा त्रिपुरा राज्य इस क्षेत्र के अन्तर्गत शामिल है। इस क्षेत्र की जनजातियों में अरूणाचल प्रदेश की आदि, डफला, गलोंग, खोवा, मिशमी, मोनवा, असम की चकमा, डीमसा, गारो, खासी, जयन्तिया कुकी, मिकिर, मणिपुर की एनल कबुई मरम, सेमा, मेघालय की गारो, खासी जयन्तिया, कुकी, लाखेर, मिकिर, मिजोरम की चकमा, कुकी, मिजो नागालैंड की गारो, कुकी, नागा तथा त्रिपुरा की चैमंमल, चकमा, गारू, खासिया कुकी लुशाई रियांग त्रिपुरी प्रमुख हैं।

6. द्वीप समूह क्षेत्र (Island Region) अंडमान व निकोबार तथा लक्ष द्वीपसमूह इस क्षेत्र के अन्तर्गत आते है। इस क्षेत्र की जनजातियों में अंडमान व निकोबार की अंडमानिज जारवा? निकोबारिज ओंगे सोम्पेनस तथा लक्षद्वीप के मूल निवासी प्रमुख है।

प्रजातीय वर्गीकरण
(Racial Classification)

भारतीय जनजातियों को प्रजातीय आधार पर वर्गीकृत करना एक दुष्कर कार्य है, चूँकि भारत में प्रजातीय मिश्रण की घटनायें इतनी व्यापक रूप में घटी है कि यहाँ कोई भी प्रजाति अब अपने शुद्ध रूप में नहीं रह गयी है। प्रजातीय आधार पर भारत की जनजातियों को विभिनन समाजविदों ने विभिन्न वर्गों में विभाजित करने का प्रयास किया है। एच. एच रिजले ने भारतीय जनजातियों के बीच द्रविड़ तथा मंगोल प्रजातीय तत्वों के आधार पर तीन प्रमुख वर्गों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है।

(1) नीग्रिटो (Negrito) इसे नीग्रो प्रजाति की एक उप-शाखा माना जाता है। इस प्रजाति के शारीरिक

NOTES

लक्षण छोटा कद, चौड़ा सिर, काला से लेकर गहरे बादामी रंग काले ऊनी बाल मोटे होठ तथा चौड़ी नाक इत्यादि हैं। बी. एस. गुहा के अनुसार नीग्रिटो भारत की सबसे प्राचीन प्रजाति है। यह प्रजाति भारत में अरब-ईरान के किनारे-किनारे चलकर पश्चिम से संभवत: अफ्रीका से आयी थी। लेकिन अब भारत में नीग्रो लगभव खत्म हो चुके है। अब इसप्रजाति के थोडे से निशान अंडमान व निकोबोर की अंदमान जारवा ओंगे तथा दक्षिण भारत के कादर व असम के अंगामी नागाओं में पाये जाते हैं। (दिनकर, 1994 32)

(2) आदि-आग्नेय (Proto-Austrolid) इस प्रजाति की मुख्य शारीरिक विशेषतायें नाटा कद, रंग काला, लम्बा एवं ऊँचा सिर चौड़ा और छोटा चेहरा, मुँह आगे की ओर बढ़ा हुआ तथा नाक छोटी व चपटी इत्यादि है। दक्षिण एवं मध्य भारत की प्रायः सभी जनजातियाँ जैसे-केरल की कानीक्कर, मधुवन व पनियान, नीलगिरी के इरूल्ला तथा शोलागर आन्ध्र प्रदेश की चंचु मध्य भारत की मुंडा, उराँव-हो, खड़िया बिरहोर गोंड बैगा भील कोल खरवार, भूमिज इत्यादि के बीच प्रोटो-आस्ट्रोलॉयड प्रजातीय विशेषतायें पायी जाती है।

(3) मंगोल (Mongol) इस प्रजाति के सदस्यों का मस्तक चौड़ा, नाक चौड़ी व पसरी हुई, मध्यम होठ, if व पलते बाल, अधखुली आँख पीलापन लिये हुए बादामी रंग की त्वचा, मध्यम कद इत्यादि प्रमुख शारीरिक विशेषतायें है। मंगोल प्रजाति की भारत में दो शाखायें है। (1) चौड़े सिर वाली, तथा (2). लम्बे सिर वाली। चौड़े सिर वाले मगोल चटगाँव तथा उत्तरी-पूर्वी भारत में पाये जाते है। लम्बे सिर वाले मंगोल असम तथा सीमान्त प्रांतों में निवास करते है। भोटिया, थारू लेपचा, बोडों मिरी, नागा, गारो, खासी डफला भीजों इत्यादि जनजातियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं।

भाषायी वर्गीकरण (Linguistic Classification)

भाषा के आधार पर भारत की जनजातियों को प्रमुख रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया गया है।

(1) द्रविड़ भाषा परिवार (Dravidian Linguistic Family)-यह भाषा दक्षिण भारत की जनजातियों द्वारा बोली जाती है। द्रविड़ भाषा परिवार के अन्तर्गत तेलगू, कन्नड तमिल रोडा मलयालम इत्यादि भाषायें शामिल हैं। मध्यप्रदेश की गोंड तथा झारखंड की उराँव सौरिया तथा माल पहाड़िया द्रविड़ भाषा परिवार की बोलियाँ बोलती है। द्रविड़ भाषा बोलने वाली प्रमुख जनजातियों में टोडा, उराँव सौरिया पहाड़िया, पोलिया, सवर खोद कोया पनियन चेंचू इल्ला इत्यादि है।

(2) आस्ट्रिक भाषा परिवार (Austric Linguistic Family)-यह भाषा मध्य-पूर्वी भारत की कोल तथा मुडा जनजातियों द्वारा बोली जाती है तथा असम की खासी एवं निकोबार द्वीप की निकोबारी बोलियाँ भी इसमें शामिल हैं। संथाली मुंडारी, भूमिज गारों इत्यादि भाषायें, जो झारखंड, उड़ीसा पश्चिम बंगाल तथा असम में बोली जाती है, इसके अन्तर्गत आती हैं। मध्य प्रदेश की कार्क साथरा एवं गदबा भाषाएँ भी इसके अन्तर्गत शामिल हैं। मध्य भारत को अधिकांश जनजातियों द्वारा इस भाषा परिवार की बोलियाँ बोली जाती है। उत्तर-पूर्व भारत की कतिपय क्षेत्रों में मोनखामेर भाषा बोली जाती है, जो आस्ट्रिया भाषा परिवार से सम्बन्धित है, उदाहरणार्थ-खासी जनजाति मोनखामेर भाषा का प्रयोग करती है।

(3) तिब्बति-चीनी भाषा परिवार (Tibeto-Chinesaae Linguistic Family) इस भाषा परिवार की भाषायें दार्जिलिंग त्रिपुरा, मणिपुर, पूर्वी कश्मीर हिमाचल प्रदेश भूटान उत्तर-पूर्वी बंगाल, असम तथा

सिक्किम इत्यादि क्षेत्रों में बोली जाती है। कुकी भोटिया लेपचा नागा, गारों डफला मिजों, मिकिर इत्यादि जनजातियाँ तिब्बति चीनी भाषा परिवार से सम्बन्धित है।

आर्थिक वर्गीकरण (Economic Classification)

आर्थिक आधार पर भारत की जनजातियाँ मुख्य रूप से चार भागों में वर्गीकृत हैं।

(1) शिकारी तथा खाद्य संचयन अर्थ-व्यवस्था वाली जनजातियाँ: भारत की जो जनजातियाँ जंगलों में निवास करती है, वे अपना जीवन-थापन शिकार तथा/ या लघु वन्य उत्पादों के संचय के आधार पर करती है। कोचीन को कादर, झारखंड की बिरहोर तथा सवर, उत्तर प्रदेश की राजी, मध्य प्रदेश की हिल मारिया, उड़ीसा की जुआंग, तमिलनाडु तथा आंध्र प्रदेश की कोया, कोटा रेड्डी, कादर, पलियान तथा उत्तर-पूर्व भारत की कुकी, कोनियाक, नागा इत्यादि शिकार तथा जंगलों से कंद मुल फल, फल फूल एवं शहद एकत्रित करके जीवन यापन करती रही है। ये जनजातियाँ प्रायः कृषि “कार्य नहीं करतीं या बहुत ही कम कृषि कार्य करती है, वह भी स्थानांतरित प्रकार की। इन दिनों वनों के उजड़ने के कारण इनका परम्परागत व्यवसाय प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ है। आजकल व्यवस्थित कृषि (Settled Agriculture) तथा अन्य आधुनिक व्यवसायों की ओर भी ये जनजातियाँ उन्मुख होने लगी है।

(2) पशु-पालक जनजातियाँ: भारत की अनेक जनजातियाँ पशुपालन कर अपना जीवन यापन करती है। इन जनजातियों में जम्मू व कश्मीर की गद्दी हिमाचल प्रदेश की गद्दी व गुज्जर तथा नीलगिरी की टोडा जनजाति प्रमुख है। टोडा जनजाति भैंस पालन करती है। टोडा संस्कृति के नाम से विख्यात है। पशुपालक जनजातियों का आर्थिक जीवन दूध तथा दुग्ध उत्पादित सामग्रियों पर निर्भर करती है। गद्दी जनजाति परम्परागततौर पर भेड़पालक रही है।

(3) व्यवस्थित कृषि करने वाली जनजातियाँ : भारतीय जनजातियों द्वारा समयानुसार कृषि की अनुक विधियाँ प्रयोग में लायी जाती रही है। कुछ जनजातियाँ कुल्हाड़ी की सहायता से कृषि करती है, तो कई जनजातियाँ आधुनिक कृषि यंत्रों (ट्रेक्टर डिजल पम्प इत्यादि) से भी कृषि कार्य करने लगी है। उत्तरी-पूर्वी तथा मध्य भारत की जनजातियाँ सीढ़ीनुमा तथा स्थानांतरित कृषि करती रही है। झारखंड की असुर, मलेर (सौरिया पहाड़िया), माल पहाड़िया, बिरजिया, कोरबा, उत्तरी-पूर्व भारत की नागा, गारों, लाखुस, मध्य प्रदेश की मरिया, गोंड तमिलनाडु तथा आंध्र प्रदेश की खोंद, कुरुम्बा, गोंड, सांवरा, मादवन तथा उड़ीसा की सांवरा इत्यादि जनजातियाँ स्थानांतरित कृषि से जुड़ी रही है।

(4) उद्योगों में संलग्न जनजातियाँ : भारत में औद्योगिकरण की तीव्र प्रगति के कारण भारतीय जनजातियों के इस वर्ग का उद्भव हुआ है। पश्चिम बंगाल, झारखण्ड एवं असम की जनजातियाँ चाय बंगानों, खदानों एवं कल-कारखानों में काम किया करती है। कृषि पर जनजातीय जनसंख्या के बढ़ते दबावों तथा उद्यसेगरों में जम की बढ़ती मांग के कारण भारतीय जनजातियों का एक वर्ग इस रूप में अपनी व्यावसायिक पहचान बनाया है। भारत की कुछ जनजातियाँ दस्तकारी कार्यो में भी संलग्न है। झारखंड की महली, चिक बड़ाईक, लोहरा, करमाली इत्यादि जनजातियाँ विभिन्न प्रकार के दस्तकारी कार्यो से जुड़ी रही है। किन्तु इन दिनों इनके परम्परागत दस्तकारी व्यवसायों में व्यापक रूप से ह्रास परिलक्षित होने लगे है। उत्तर-पूर्व की कतिपय जनजातियों ने परम्परागत कला तथा हस्तशिल्पं (Traditional Art and Handicraft) पर आधारित कुटीर तथा लघु उद्योगों को विकसित कर अपने अर्थतंत्र के नये आयाम को अंजाम दिया है।

सांस्कृतिक वर्गीकरण (Cultural Classification)

भारत की जनजातियों को विभिन्न समाजविदों ने संस्कृति की दृष्टि से विभिन्न वर्गों में विभक्त किया है। वैश्यर एल्विन (1943:8 "11) ने सांस्कृतिक आधार पर भारत की जनजातियों को चार प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया है।

(1) प्रथम श्रेणी में उन जनजातीय समुदायों को रखा गया है, जो सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक आदिम है तथा दुर्गम व घने अरण्यक क्षेत्रों में संयुक्त सामाजिक जीवन यापन किया करते है। ये लोग प्रायः स्थानांतरित कृषि किया करते है। इनका सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन अत्यंत ही सरल होता है। राष्ट्र की मुख्य धारा से कटे होने के कारण ये जनजातियाँ सभ्य समाज के सदस्यों को देखकर भाग जाती है। इस श्रेणी के अन्तर्गत मध्य भारत के बस्तर क्षेत्र की पहाड़ी मारिया, उड़ीसा की जुआंग व गदबा तथा झारखंड की बिरहोर, बिरजिया इत्यादि जनजातियाँ आती है।

(2) द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत शामिल जनजातियाँ प्रथम श्रेणी की तरह की एकाकी एवं परम्परावादी है। किन्तु अब इनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में कुछ परिवर्तन घर करने लगे हैं। वे जनजातियाँ अब सामूहिक जीवन का परित्याग कर व्यक्तिवादी होने लगी हैं तथा इनके बीच गरीब-अमीर का भेदभाव पनपने लगा है। ये लोग कृषि कार्य हेतु कुल्हाड़ी का प्रयोग किया करती है। अब इस श्रेणी की जनजातियाँ स्थानांतरित कृषि से उबरकर व्यवस्थित कृषि (Settled Agriculture) की ओर उन्मुख हो चली है।

(3) तीसरी श्रेणी में वे जनजातियाँ आती है, जो आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति के सम्पर्क में आ जाने के कारण अपनी मूल संस्कृति से विलग होने लगी है। इनकी मौलिक संस्कृति में हास के लक्षण, उभरने लगे है। इनके परम्परागत धर्म, कला, विश्वास सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठन इत्यादि छिन्न-भिन्न होने लगे हैं, जिसके फलस्वरूप ये जनजातियाँ सांस्कृतिक सम्पर्क की समस्याओं से ग्रसित है।

(4) चौथी श्रेणी के अन्तर्गत वे जनजातियाँ शामिल है, जो प्राचीन कुलीन वर्ग की है। इनमें भील तथा नागा जनजातियों का प्रमुख स्थान है। इस श्रेणी की जनजातियों ने वाह्य संस्कृतियों के सम्पर्क के बावजूद अपनी मौलिक सांस्कृतिक तत्वों को बरकरार रखा है। ये जनजातियाँ उच्च जातियों से अपना रिश्ता जोड़ती है, जैसे-भील जनजाति अपने को प्रशासक वर्ग एवं क्षत्रियों से सम्बद्ध बताती है।

डी. एन. मजुमदार तथा टी. एन. मदान ने सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की जनजातियों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया है।

(क) वे जनजातियाँ जो समुन्नत समुदायों के सम्पर्क में नहीं आ पायी है तथा ग्रामीण-नगरीय समुदायों की संस्कृति से दूर है।

(ख) वे जनजातीय समुदाय जो ग्रामीण-नगरीय समुदायों की संस्कृति से प्रभावित होने के कारण अनेक प्रकार की सामाजिक सांस्कृतिक कठिनाइयों से पीड़ित हैं।

(ग) वे जनजातियाँ जो ग्रामीण-नगरीय समुदायों की संस्कृति के सम्पर्क में आने पर भी किसी प्रकार की असुविधा एवं कठिनाई का सामना नहीं कर रही हैं।

1952 ई में इंडियन कॉन्फ्रेन्स ऑफ सोशल वर्क (Indian Conference of Social Work) द्वारा एक "जनजाति कल्याण समिति" की स्थापना की गयी थी, जिसके द्वारा भारतीय जनजातियों का वर्गीकरण

चार वर्गों में किया गया है। (1) जनजातीय समुदाय (2) अर्द्ध-जनजाति समुदाय, (3) पर संस्कृति ग्रहण किय" हुए जनजाति समुदाय, तथा (4) पूर्णतः आत्मसात् जनजातियाँ।

धार्मिक वर्गीकरण (Religious Classification)

भारत की जनजातियाँ 59 प्रकार के धर्मों में विश्वास करती हैं। भारत की 89.39 प्रतिशत जनजातियाँ हिन्दू हैं, जबकि इसकी 5.53 प्रतिशत जनजातीय आबादी ईसाई धर्म मानती हैं। भारत की 4.19 प्रतिशत जनजातियाँ (52 प्रकार की जनजातियाँ) अपने विशिष्ट जनजातीय धर्मों में विश्वास रखती है। भारत की 1 प्रतिशत से कम जनजातीय आबादी बौद्ध, जैन, सिक्ख, इस्लाम तथा जोरोस्ट्रेनसीम (Zorostrainsir) धर्मो में विश्वास करती है।

हिन्दू धर्मावलम्बी जनजातियाँ अंडमान व निकोबार द्विपसमूह तथा लक्ष्यद्वीप को छोड़कर भारत के सभी हिस्सों में पायी जाती है। पश्चिमी भारत, दक्षिणी भारत तथा मध्य भारत की लगभग 99 प्रतिशत जनजातियाँ हिन्दू है। उत्तर-पूर्वी भारत के असम, मेघालय, नागालैंड मणिपुर तथा मिजोरम की जनजातियों के बीच ईसाई धर्मावलम्बी जनजातियों की बहुलता (46.88/) है। इसके अलावे दक्षिण भारत विशेषकर केरल तथा अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह की कुछ जनजातियाँ भी ईसाई धर्म मानती है। देश के अन्य हिस्सों में भी ईसाई धर्म अनुसरण करने वाली जनजातियाँ भी ईसाई धर्म मानती है। देश के अन्य हिस्सों में भी ईसाई धर्म अनुसरण करने वाली जनजातियाँ है। असम, अरूणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, पश्चिमी बंगाल तथा हिमाचल प्रदेश की कुछ जनजातियों के बीच बौद्ध धर्म के मानने वाले लोग है। इस्लाम धर्म को मानने वाली जनजातियाँ मुख्य रूप से लक्षद्वीप हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा महाराष्ट्र में निवास करती है।

भारत के जनजातीय विश्वासों के अन्तर्गत जीववाद (Animism) तथा बहुदेववाद (Polytheism) का "समावेश देखने का मिलता है। भारत की जनजातियाँ सभी प्रकार के परोपकारी तथा अहितेच्छु प्रेतों को अराधना करती है। उनके घरो, गाँवों खेतों तथा जंगलों में धार्मिक केन्द्र अवस्थित होते है। इनके बीच पूर्वज-पूजा का विशेष महत्व होता है। इनके पर्व-त्योहारों में धार्मिकता को पुट देखते को मिलते है। कालक्रम में भारत की जनजातियों का दूसरे धर्मो जैसे-हिन्दू ईसाई इस्लाम बौद्ध जैन सिक्ख इत्यादि में भी धर्मान्तरण हुआ है।

अभ्यास-प्रश्न

1. जनजाति और अनुसूचित जनजाति की अवधारणा को स्पष्ट करें
2. जनजाति का अर्थ बताएं और इसकी परिभाषा दें।
3. जनजाति एवं जाति में अन्तर स्पष्ट करे।
4. जनजातीय साक्षरता पर टिप्पणी लिखें।
5. जनजातियों के बीच क्षेत्रीय विभिन्नताओं की विवेचना करें।
6. विभिन्न आधारों पर जनजातियों का वर्गीकरण प्रस्तुत करें।

जनजातीय सामाजिक संस्थाएं
(Tribal Social Organisations)

bdkÃ&3
tutkfr vkj ifjokj] foookg

मानव सभ्यता के इतिहास में भारतीय समाज की एक विशिष्ट पहचान है। लगभग पाँच हजार वर्ष प्राचीन भारतीय सभ्यता में आज भी अतीत तथा वर्तमान के बीच की अविरल कड़ियाँ सशक्त है। भारतीय सभ्यता अपने अन्तर्निहित अनेक विसंगतियाँ तथा विरोधाभास के बावजूद अनेक दृष्टि से आदर्श मानी जाती रही है। अत्यंत प्राचीन काल में आर्य, द्रविड़, आदिवासी और मंगोल लोगों से भारतीय जनता की रचना हुई थी। हम जिन्हें आदिवासी कहते हैं, उनके बीच नीग्रो तथा औष्ट्रिक आप्रवासियों के लोग शामिल है, जो द्रविड़ों से पूर्व इस देश में आर्य थे (दिनकर, 199:30) 1 कालक्रम में प्रजातीय मिश्रण की घटनाओं के कारण आदिवासी की यह अवधारणा इस रूप में कायम नहीं रह सकी। कुछ सशक्त आदिवादी समूहों को छोड़कर शेष को वर्ण व्यवस्था में निम्न स्थान मिला और जो इस व्यवस्था के अंग नहीं बने उन्हें विद्यावान जंगलों तथा दुर्गम पर्वतमालाओं की ओर ढकेल दिया गया। भारतीय सभ्यता में बाह्य तत्वों को आत्मसात करने की अपूर्व क्षमता रही है। ऐसे तत्वों का भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में अनुकूल भी हुआ। यद्यपि पश्चिम की संस्कृति के अंधानुकरण से भारतीय परम्परागत संस्कृति कुछ कमजोर हुई है, किन्तु भारतीय समाज के जनजातीय समुदाय अपनी परम्परागत जीवन शैली को बहुत हद तक अक्षुण्ण बनाये रखने में सफल रहे है तथा वे आज भी संस्कृति के आदिम स्तर से पूर्णता विलग नहीं हो पाये हैं।

भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का करीब 60 फ़ीसदी हिस्सा जनजातीय क्षेत्रों में आता है. साल 2011 के वन सर्वेक्षण के मुताबिक, देश का कुल वन क्षेत्र 6,92,027 वर्ग किलोमीटर था. यह कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 21.05 फ़ीसदी था. भारत की जनजातियाँ अनेक अंतर्विवाही समूहों में विभाजित है, जिसमें से कतिपय समूह जैसे-गोंडद्व भील, संथाल मुंडा इत्यादि बहुसंख्यक है तथा अनेक अनेक (जैसे-असुर, बिरहोर, विरजिया, परहिया, बोरवा, ओंगे, जारवा, कोटा, टोडा, सहरिया इत्यादि) की जनसंख्या बहुत ही कम ह। विश्व के अन्य समाजों की भांति भारत को पूर्वग संस्कृतियों में भी ''परिवार'' सामाजिक संगठन की मूलभूतइकाई रही है। मानव जहाँ एक ओर ''सम्बन्धीवर्ग'' जैसे बृहत् परिवार का सदस्य होता है, वहाँ दूस री ओरवह किसी विशिष्ट ''गोत्र'' का भी सदस्य होता है। सम्बन्धी वर्ग तथा गोत्र की सदस्यता के अतिरिक्त परिवारको संस्कृति की स्थानीय इकाई ''ग्राम'' तथा उसके विशालतर रूप ''ग्रामीण समुदाय'' स्वीकार करना भीआवश्यक होता है (दुबे, 1989:234)।

परिवार (FAMLY)

मानव विकास के सभी अवस्थाओं में पाये जाने वाला परिवार समाज की आधारभूत इकाई रही है। बर्गेस तथा लॉक के मत में परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो विवाह अथवा गोद लेने के सम्बन्ध के बंधे

होते है, एक छोटी सी गृहस्थी का निर्माण करते है तथा जिसके सदस्य पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन के रूप में एक-दूसरे से अन्तः क्रियायें करते है तथा एक सामान्य संस्कृति का निर्माण कर उसकी देख-भाल करते है। हर्बोहनन के अनुसार हपरिवार लगभग सभी स्थानों पर यौन क्रियाओं के नियमन और समाज के नये सदस्यों की भर्ती के लिए उत्तरदायी है।ह स्त्री-पुरुष का यौन आकर्षण जब विवाह के रूप में समाज द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह स्वतः ही परिवार में परिवर्तित हो जाता है। विवाह ही परिवार तथा नातेदारी का आधार है। श्याम चरण दुबे के शब्दों में परिवार में स्त्री और पुरुष दोनों को सदस्यता प्राप्त रहती है। उनमें से कम से कम दो विपरीत यौन व्यक्तियों को यौन सम्बन्धों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त रहती है और उनके संसर्ग में उत्पन्न संताने मिलकर परिवार का निर्माण करती है। इस प्रकार प्राथमिक या मूल परिवार के लिए माता-पिता और उनकी संतति का होना आवश्यक है।ह मेंकाइवर एवं पेज के मतानुसार "परिवार पर्याप्त निश्चित यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है, जो बच्चों के जन्म तथा पालन-पोषण की व्यवस्था करता है।" लुसी मेंयर की दृष्टि में "परिवार गार्हस्थ समूह है, जिसके अन्तर्गत माता-पिता तथा संतान एक साथ रहते है। इसके मूल रूप में सम्पत्ति तथा उसकी संतान रहती है।"

इस प्रकार परिवार जैविकीय सम्बन्धों पर आधारित एक मानव समूह है, जिसके अन्तर्गत दम्पति तथा उसकी संतानें व अन्य सम्बन्धी एक साथ रहतें है तथा जीवन यापन के लिए आर्थिक सहयोग, समाजीकरण, शिक्षण इत्यादि के लिए एक-दूसरे को सहयोग करते है।

भारत की अधिकांश जनजातियों के परिवार का स्वरूप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, पितृमार्गी तथा पितृवंशीय है। इनके बीच नाभिक परिवार की बहुलता पायी जाती है, किन्तु संयुक्त तथा विस्तृत परिवार का भी इनके बीच अस्तित्व पाया जाता है।

संथाल जनजाति का परिवार पितृसत्तात्मक होता है। इस जनजाति के परिवार में प्राय: पति-पत्नी, बेटे-बेटियाँ तथा पति के बूढ़े माँ-बाप रहते है। माता-पिता की सम्पति पर सबसे पहला अधिकार पुत्रों कर फिर अविवाहित पुत्रियों का, तब उसके पट्टीदारों का होता है।

मुंडा जनजाति में व्यष्टि परिवार की बहुलता होती है। कुछ सम्पन्न मुंडा परिवारों में सपिण्ड तथा आत्मीय सम्बन्धी एक ही साथ रहते है। मुंडा परिवार का स्वरूप पितृपिण्डक तथा पितृस्थानीय होता है। पिता का अधिकारी सर्वोपरि होता है। महिलायें सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं हीं, यद्यपि उन्हें पोषण तथा वैवाहिक खर्च पिता के उत्तराधिकारी से पाने का अधिकार होता है।

हो परिवार का आधार कीली होता है। कीली का स्वरूप "शिव" या गोत्र से बहुत कुछ साम्य होता है। कीली के सभी सदस्य एक-दूसरे से सम्बन्ध के सूत्र में बंधे होते है। हो समाज में कीली एक सामाजिक एवं राजनैतिक इकाई होती है।

सौरिया पहाड़िया जन जाति में नाभिक परिवार पाये जाते है। पति पत्नी तथा उनके अविवाहित बच्चे ही परिवार के सदस्य होते हैं। संयुक्त परिवार का अस्तित्व प्रायः इनके बीच नहीं पाया जाता। पैतरक सम्पति का अधिकारी पुत्र होते हैं।

बिरहोर जनजाति के परिवार का स्वरूप पितृवंशीय होता है। पिताकी मृत्यु के बाद पैतश्क सम्पत्ति पुत्रों के बीच बाँट दी जाती है। पुत्र नहीं रहने पर साथ रहने वाला घरजमाई सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है। घरजमाई के नहीं रहने तथा पिता की दाह क्रिया में खर्च करने पर सम्पति का अधिकारिणी पुत्री होती है, अन्यथा सम्पति टंडा में रहने वाले मृतक के निकटतम सम्बन्धियों को दे दी जाती है।

भारत में मालाबार की नायक तथा उत्तर-पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र की खासी व गारो जनजातियों के बीच

मातृस्थानिक, मातृसत्तात्मक तथा मातृवंशीय परिवार पाये जाते है। गारो जनजाति अपनी उत्पत्ति स्त्री पूर्वज से मानती है। इस जनजाति का वंशक्रम भी मातृ पक्ष से निर्धारित होता है। विवाह के बाद पति पत्नी के घर जाकर रहता है। उत्तराधिकार पुत्रों के बजाय पुत्रियों को प्राप्त होता है। माता अपनी किसी भी पुत्री को उत्तराधिकारणी बना सकती है, किन्तु प्रायः सबसे छोटी पुत्री को ही उत्तराधिकारिणी चुना जाता है। कन्या न होने की स्थिति में वह अपनी बहन की पुत्री को गोद ले सकती है।

खासी जनजाति के बीच भी अन्य मातृसत्तात्मक परिवारों की तरह स्त्रियों की संताने ही परिवार का सदस्य होती है। और संपत्ति भी कन्याओं को ही हस्तांतरित की जाती है पुरुष द्वारा अर्जित की गयी संपत्ति परिवार की संपत्ति होती है, जो उसकी माँ बहन तथा अन्य स्त्री वंशजों को प्राप्त होती है। परिवार के पुरुष या पुत्रों की संतानें उनकी पत्नियों परिवारों का सदस्य होती है। परिवार की सबसे छोटी पुत्री ही परिवार के. धर्म को संरक्षित होती है तथा माँ का दाह संस्कार करती है। वह परिवार की पुरोहित भी होती है। जब उसकी कोई संतान नहीं होती तो वह संपप्ति अपनी दूसरी बहन को सौंप देती है, जिसकी पुत्री उसकी उत्तराधिकारिणी होती है। परिवार की अन्य स्त्रियों विवाह के बाद गाँव में अपना पृथक घर बसा लेती है तथा स्वयं तथा पति द्वारा अर्जित धन से अपना परिवार चलाती है।

विवाह (MARRIAGE)

मानव में यौन इच्छाओं की पूर्ति का आधार मात्र दैहिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक भी है। यौन इच्छाओं की पूर्ति की सामाजिक स्वीकृति ही विवाह जैसी संस्था को जन्म देती हैं। विवाह परिवार की आधारशिला है तथा परिवार में ही बच्चों का समाजीकरण एवं लालन-पोषण होता है। समाज की निरन्तरता विवाह एवं परिवार से ही कायम रहती है। मुरडॉक ने लगभग 250 समाजों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि सभी समाजों में विवाह के तीन उद्देश्य समान रूप से पाये जाते है: (1) यौन संतुष्टि (2) आर्थिक सहयोग, तथा (3) सन्तानों का समाजीकर एवं पालन-पोषण। यद्यपि विवाह के ये सभी उद्देश्य सभी समाजों में पाये जाते है, किन्तु सभी समाजों में इन उद्देश्यों पर समान रूप से बल नहीं दिया जाता। विवाह के अन्तर्गत धार्मिक, कानूनी एवं सामाजिक स्वीकृति का समावेश हो है, जो विषमलिंगियों का यौन क्रियायें करने एवं उनसे सम्बन्धित सामाजिक एवं आर्थिक दायित्वों का निर्वाह करने का अधिकार प्रदान करता है।

विवाह का शाब्दिक अर्थ है, "उद्वह" अर्थात् वधू को वर के घर ले जाना। डब्ल्यू. एच. आर. रिवर्स के शब्दों में "जिन साधनों द्वारा मानव समाज यौन सम्बन्धों का नियमन करता है, उन्हें विवाह की संज्ञा दी जा सकती है।" लुसी मेयर की दृष्टि में " विवाह स्त्री-पुरुष का ऐसा योग है, जिससे स्त्री से उत्पन्न बच्चा माता-पिता की वैध संतान माना जाय।" बेस्टरमार्क के अनुसार, "विवाह एक या अधिक पुरूषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है, जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करना है और जिसमें विवाह करने वाले व्यक्तियों के और उससे पैदा हुए सम्भावित बच्चों के एक-दूसरे के प्रति होने वालें अधिकारों एवं कर्तव्यों का समावेश होता है।" हॉवेल की दृष्टि में हविवाह सामाजिक प्रतिमानों की एक समष्टि है, जो विवाहित व्यक्तियों के आपसी संबंधों को, उनके रक्त संबंधियों, संतानों तथा समाज के साथ सम्बन्धों को परिभाषित और नियंत्रित करता है।

मजूमदार एवं मदान के मतानुसार, "इसमें (विवाह में) " कानून / और धार्मिक आयोजन के रूप में उन सामाजिक स्वीकृतियों का समावेश होता है, जो दो भिन्न लिंगियों को यौन क्रिया तथा उसमें सम्मिलित होने का अधिकार प्रदान करती है।ह विवाह से वैयक्तिक स्तर पर शारीरिक (यौन) और मनोविज्ञानिक

(संतान प्राप्ति) संतोष प्राप्त होता है। तो व्यापक स्तर पर इससे समूह और संस्कृति के अस्तित्व निर्वाह में सहयोग मिलता है। बोगार्डस के अनुसार "विवाह स्त्री तथा पुरुष के पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की एक संस्था है।"

अतः विवाह केवल वैयक्तिक संतुष्टि का मात्र साधन ही नहीं है, बल्कि एक सामाजिक क्रिया-विधि भी है जिससे समाज की संरचना तथा निरंतरता को आधार मिलता है। यह दो विषम लिंगियों को पारिवारिक जीवन यापन करने की सामाजिक स्वीकृति है, जिसके फलस्वरूप माता-पिता तथा संतानों के बीच पारस्परिक अधिकारों एवं दायित्वों का सूत्रपात होता है।

विवाह सम्बन्धी निषेध (Prohibitions regarding marriage)

यौन व्यवहारों को नियमित तथा नियंत्रित करने के क्रम में विवाह की सर्वप्रमुख भूमिका होती है। भारत के जनजातीय समाज में विवाह सम्बन्धी प्रमुखतः तीन प्रकार के निषेध पाये जाते है: (1) निकटाभिगमन निषेध, (2) बहिर्विवाह, एवं (3) अन्तर्विवाह।

(1) निकटयभिगमन निषेध (Incesaat taboo) निकटाभिगमन यौन सम्बन्धी पाप या अपराध है, जो परिवार के निकट के सम्बन्धियों जैसे-पिता-पुत्री, माँ-पुत्र, भाई-बहन के बीच यौन सम्बन्धों के कारण पनपता है। मुरडॉक उन सभी सम्बन्धियों से यौन व्यवहार करने को भी निकटाभिगमन की संज्ञा देते है, जिनके साथ उस समाज की संस्कृति यौन व्यवहार की स्वीकृति नहीं देती, जैसे एक गोत्र या वंश के लोगों के साथ यौन संबंध स्थापित करना यदि उस समाज की संस्कृति द्वारा निषेधिक है तो वह निकटयभिगमन निषेध की श्रेणी के अन्तर्गत आयेगा, जैसा कि झारखण्ड की जनजातियों में देखने को मिलता है। इस प्रकार के निषेधों की उत्पति दो प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुई होगी। इसका प्रथम उद्देश्य सुदृढ तथा सामंजस्यमय परिवार को विकसित करना होगा, जिसमें बच्चों का समाजीकरण समुचित ढंग से हो सके तथा आर्थिक सहयोग के आधार पर परिवार की नींव मजबूत बनी रहे। इसका दूसरा उद्देश्य स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों को इस ढंग से नियमित करना रहा होगा ताकि विभिन्न परिवारों के बीच के पारस्परिक सम्बन्धों का एक निश्चित रूप विकसित हो तथा आपसी संघर्ष के कारण परिवार विघटित न हो पाये। समाजशास्त्रियों का मत रहा है कि यदि निकटाभिगमन की स्वीकृति दे दी जाय तो परिवार के सदस्यों के बीच के सम्बन्धों एवं भूमिकाओं में भ्रम उत्पन्न हो जायेगा एवं परिवार में सत्ता के सम्बन्धों में भी अस्त-व्यस्तता आ जायेगी। मेंलिनोवस्की का मत है कि परिवार ही वह संस्था है जिसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक परम्परायें पीढी दर पीढी हस्तान्तरिक की जाती है। समाजीकरण का यह कार्य उस समय तक पूरा नहीं होगा जब तक माता-पिता एवं सन्तान के बीच अधिकार तथा प्रतिष्ठा का पारस्परिक सम्बन्ध नहीं होगा तथा यह सम्बन्ध यौन भावनाओं को छूट देने पर कायम नहीं रह सकता। निकाभिगमन निषेध मानव के प्रकृति युग से संस्कृति युग में पर्दापण का परिचायक है। सुसंगठित, एकताब) तथा प्रगतिशील समाज के लिए निकटाभिगमन निषेष अति आवश्यक है। लेवी स्ट्रॉक भी इसे सामाजिक संरचना का आधार मानते है। फायड कामत है कि निकटाभिगमन का कार्य कष्टप्रद, खूनी तथा आघातपूर्ण रहा है। अतः समाज निकटाभिगमन का प्रयोग उसके घातक परिणामों के कारण नहीं करता, बल्कि समाज अपने को विनष्टता से बचाने के लिए निकटाभिगमन निषेध लागू करता सुजनन वैज्ञानिकों की दृष्टि में निकट के सम्बन्धियों के साथ प्रजनन के परिणाम घातक होते है। भारत में टोडा जनजाति की जनसंख्या समूह अन्तःविवाह के कारण ही घटती जा रही है। फोर्टेन का मत है कि भाई-बहनों में विवाह इसलिए

नहीं किये जाते ताकि अन्य समूहों से वैवाहिक मंत्री सथापित करने का अवसर प्राप्त होता है, जिससे सुरक्षा व आर्थिक सहकारिता पनपती है। मलिनोवस्की भी निकटाभिगमन तथा बहिर्विवाह को एक-दूसरे का पूरक मानते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि निकटाभिगमन निषेध के संदर्भ में मनौवैज्ञानिक, प्राणीशास्त्रीय तथा सामाजिक प्रतिकारक उत्तरदायी रहे हैं।

(2) बहिर्विवाह (Exogamy) निकटाभिगमन सम्बन्धी निषेध के परिणामस्वरूप बहिर्विवाह जैसी नियमावली का प्रादुर्भाव हुआ। बहिर्विवाह के अन्तर्गत एक व्यक्ति को अपने समूह के बाहर विवाह करने की आज्ञा दी जाती है। यह बाहरी समूह कौन-सा होगा, इस विषय में जनजातियों में भिन्न-भिन्न मान्यतायें प्रचलित है। झारखण्ड के जनजातीय समुदाय में परिवार, गोत्र, टोटम समूह, गाँव, भ्रातृदल इत्यादि से बाहर विवाह करने की प्रथा देखने को मिलती है तथा इसका उल्लंघन अक्षम्य अपराध माना जाता है।

बहिर्विवाह की उत्पत्ति को स्पष्ट करने की दृष्टि से विभिन्न समाजविदों ने भिन्न-भिन्न रूप में अपना विचार दिया है। वेस्टरमार्क के अनुसार बहिर्विवाह का कारण नजदीकी रिश्तेदारों के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित होने को अधिक से अधिक टालना है। मैक्लैनन का मत है कि जनजातियों में लड़कियों को जनमते ही मार देने की प्रथा के कारण बहिर्विवाह का जन्म हुआ, क्योंकि ऐसी स्थिति में एक जनजातीय समूह अपने पुत्रों के लिए वधुयें बाह्य समूहों में ढूँढा करते थे। स्पेन्सर का मत है कि बहिर्विवाह लड़ाकू जनजातियों की देन है, जो युद्ध के बाद अपने पड़ोसी समूह से स्त्रियों का अपहरण करके ले जाते थे। आज भी कई जनजातियों में औपचारिक अपहरण के आधार पर विवाह रचाने की प्रथा कायम है। कुछ समाजविद बहिर्विवाह को पारस्परिकता के सिद्धांत पर आधारित होने के कारण से इसे सामाजिक जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक मानते है। परिवार से बाहर विवाह करने की परम्परा को लागू करने की दृष्टि से ही बहिर्विवाह अस्तित्व में आया।

जनजातीय समाजशास्त्र क्योंकि इससे अनेक सामाजिक लाभ थे। दो सूहों में स्त्री विनियम के द्वारा सामाजिक सम्बन्धों को सुदृढ बनाया जाता है। यदि बहिर्विवाह के नियम कंठोरता से अनुपालित नहीं किया गया होता तो अर्द्धांश, गोत्र या कुल की सम्पूर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी होती।

इस प्रकार बहिर्विवाह की उत्पत्ति को निकटाभिगमन, पारस्परिकता के सिद्धांत, नवीनता की इच्छा एवं सामाजिक सम्बन्धों के विस्तार के परिप्रेक्ष्य में आकलित किया जा सकता है। बहिर्विवाह की उत्पति के कारण चाहे जो भी हो, किन्तु इसका प्रचलन प्रायः सभी जनजातियों में देखने को मिलता है। बहिर्विवाह से सम्बन्धित विभिन्न विश्वासों के कारण ही जनजातीय समाज में परिवार, गोत्र, वंश, टोटम समूह भ्रातृदल, युग्म संगठन, गाँव इत्यादि से बाहर विवाह करने की प्रथा पायी जाती है, जो सामाजिक तथा जैविकीय दृष्टिकोण से वैज्ञानिक है।

(3) अन्तर्विवाह (Endogamy) रिवर्स के अनुसार "अन्तर्विवाह से अभिप्राय है उस विनिमय का, जिससे अपने समूह में से विवाह साथी चुनना अनिवार्य होता है।" अन्तर्विवाही समूह के रूप कोई भी वंश, गोत्र युग्म संगठन, उपजाति, जनजाति या कोई भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले लोग हो सकते है। झारखण्ड की जनजातियाँ अपनी ही जनजाति के सदस्यों के साथ विवाह करती है, किन्तु प्रायः इनके बीच गोत्र-अतर्विवाह के विपरीत नहीं माना जा सकता, क्योंकि ये दोनों एक ही समाज में एक साथ प्रचलित हो सकते है, चूँकि ये सामाजिक समूह के दो अलग रूपों को प्रकट करते

है। झारखण्ड की जनजातियाँ जहाँ जनजातीय आधार पर अन्तर्विवाही है, वहीं यहाँ को अधिकांश जनजातियों गोत्रीय आधार पर बहिर्विवाही है।

अपरिचित लोगों के प्रति भय जनजातीय समाज में पाये जाने वाले अन्तर्विवाह के नियमों का सर्वप्रमुख कारण है। पड़ोसी जनजातियों के जादू-टोने इत्यादि से हानि पहुँचने का डर भी इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण कारक है। झारखण्ड की कोरवा जनजाति में अन्तर्विवाह इसी कारण होता है। प्रत्येक जनजातीय समुदाय की अपनी संस्कृति, प्रथायें तथा रीति-रिवाज पाये जाते है, जो दूसरे जनजातीय समुदाय से भिन्न होते है। इस विभिन्नता की वजह से सामाजिक तथा सांस्कृतिक धरातल पर सामंजस्य नहीं पनपने की संभावनायें भी अन्तर्विवाह के लिए उत्तरदायी प्रतिकारकों में एक प्रमुख प्रतिकारक रहा है। भौगोलिक पार्थक्य, यातायात सम्बन्धी कठिनाइयाँ तथा जनजातीय आत्मनिर्भरता इत्यादि कुछ ऐसे कारक रहे है, जिसने अन्तर्विवाह प्रथा को प्रोत्साहित किया।

झारखंड के जनजातीय समाज में वैवाहिक व्यवस्था (Marriage system in Tribal Society of Jharkhand)

भारत के अधिकांश जनजातीय समाज में निकटाभिगमन या अगम्यगमन को निषिद्ध माना जाता है। भारत के अधिकांश जनजातियों के बीच परिवार, गोत्र, टोटम समूह तथा गाँव से बाहर विवाह करने की प्रथा रही है, किन्तु वे अपनी ही जनजाति में विवाह करते है। इस प्रकार भारत की अधिकांश जनजातियाँ वैवाहिक सम्बन्ध में वहिगोत्रीय नियम का पालन करती है, परन्तु शादी अपनी ही जनजाति में किया करती है। भारत की अधिकांश जनजातियों में देवर विवाह (Lrbitsyr) तथा साली विवाह (Sororate) का प्रचलन रहा है। प्रायः मृत बड़े भाई की पत्नी अपने पति के छोटे भाई से विवाह कर लिया करती है। इसी प्रकार प्रथम पत्नी की मृत्यु के पश्चात्, ही या कभी-कभी उसके सन्तान होने या न होने पर भी उसकी मौजूदगी में उसकी छोटी बहन से शादी कर लिया जाता है। झारखंड की जनजातियाँ विधुर तथा विधवा होने पर दूसरी शादी कर लेती है। विधवा बहुधा विधुर के साथ विवाह करती है। विधवा विवाह (Widow marriage) तथा वैवाहिक विच्छेद किये हुए व्यक्ति के विवाह में वधू मूल्य का लेन-देन प्रायः नहीं होता है।

झारखंड की जनजातियों में प्राय: एक विवाह (Monogamy) की प्रथा प्रचलित है, किन्तु कुछ लोग एक साथ दो या तीन पत्नी भी रखते है। कोल्हान क्षेत्र में दो पत्नियाँ पति के घर में प्रेम पूर्वक रहा करती है। इसके बीच बाल विवाह भी प्रायः नहीं होता, किन्तु हिन्दू धर्म से प्रभावित जनजातियों के बीच बाल विवाह के प्रचलन देखने को मिलते हैं। ईसाई धर्म के प्रसार, औद्योगिकरण तथा शहरीकरण के फलस्वरूप इनके बीच अन्तर्जनजातीय तथा गैर-जनजातीय विवाह के भी छिटपुट उदाहरण मिलते हैं। हो जनजाति के पुरुष अपने से बड़ी उम्र वाली स्त्री के साथ शादी करना बुरा नहीं मानते है। हो जनजाति के बच्चे प्रायः ससुर के परिवार या कीली में व्याहे जाते हैं। हो जनजाति के बीच अपनी माता के भाई की लड़की तथा पिता की बहन की लड़की से विवाह करने की प्रथा रही है।

झारखंड की खड़िया जनजाति में फुफेरे अथवा चचेरे भाई-बहन से शादी करने की प्रथा प्रचलित रही है। कोई खड़िया अपनी पत्नी की बड़ी बहन से शादी नहीं कर सकता है। और न कोई विधवा अपने पति के बड़े भाई से शादी कर सकती है। आमतौर पर कोई खड़िया अपने गाँव में वैवाहिक सम्बन्ध नहीं स्थापित नहीं कर सकता, परन्तु आजकल यह नियम ढीला पड़ता जा रहा है। खड़िया जनजाति में विवाह काउम्र प्राय: लड़के के लिए 20-21 वर्ष तथा लड़कियों के लिए 15-18 वर्ष होता है, किन्तु अब हिन्दू पड़ोसियों के प्रभाव से युवावस्था के पूर्व भी इनमें शादी होना प्रारंभ हो गया है।

झारखण्ड की सौरिया पहाड़िया जनजाति में गोत्र नहीं होता, किन्तु विवाह संबंध स्थापित करने में गातिया या निकट रिश्ते का विचार अवश्य किया जाता है। इस जनजाति में चचेरे, फुफेरे, अथवा ममेरे भाई-बहनों के बीच विवाह सम्बन्ध नहीं होता है। इस जनजाति में देवर-भाभी में पुनर्विवाह का प्रचलन है। छोटी सालियों से विवाह किया जा सकता है, किन्तु पत्नी की बड़ी बहन तथा छोटे भाई की पत्नी से विवाह नहीं किया जाता। विधवा विवाह, बहुपत्नी विवाह (Polygyny) तथा तलाक के रिवाज भी इनमें प्रचलित है। सौरिया पहाड़िया अपने ही गाँव में शादी करना बुरा नहीं मानते।

जनजातीय समाज में विवाह का प्रकार (Forms of Marriage in Tribal Society)

पति-पत्नी की संख्या के आधार पर भारत के जनजातीय समाज में तीन प्रकार के विवाह का उल्लेख मिलता है-(1) एक विवाह (Monogamy), (2) बहुपत्नी विवाह (Polygyny) तथा बहुपतिविवाह (Polyandry)

एक विवाह (Monogamy) की प्रथा विश्व के प्रायः सभी समाजों का एक नैतिक मापदंड रहा है। जनजातीय समाज में विवाह के इन दोनों प्रकारों के अतिरिक्त बहुपतिविवाह (Polyandry) का प्रचलन रहा है।

एक विवाह (Monogamy) एकविवाह पारिवारिक जीवन का सर्वोत्कृष्ट बुनियाद है। वेस्टरमार्क के अनुसार परिवार का उद्भव एकविवाह की प्रथा से ही प्रारंभ हुआ था तथा कालक्रम में विकसित विवाह के अन्य स्वरूप सामाजिक नियमों के अस्थायी उल्लंघन का हो परिणाम है। एक विवाह वैवाहिक स्वरूप के अन्तर्गत एक जीवन साथी के जीवित रहते हुए कोई स्त्री अथवा पुरुष दूसरा विवाह नहीं कर सकता है। भारत के अधिकतर जनजातीय समाज में विवाह का यही स्वरूप प्रचलित रहा है, क्योंकि इस प्रकारके विवाह के अंतर्गत स्त्री-पुरुष के पारस्परिक अधिकार सबसे अधिक सुरक्षित रहते हैं तथा इससे निर्मित परिवार अधिक स्थायी होते हैं जिनमें संघर्ष की संभावना सीमित होती है तथा बच्चों का लालन-पालन समाजीकरण, शिक्षा तथा अनुशासन का बेहतर प्रबंध हो पाता है। इस प्रकार के विवाह के द्वारा समाज में स्त्रियों को उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, चूँकि विवाह से संबंधित दोनों पक्षों की पारस्परिक रूप को समझने तथा ताल-मेल स्थापित करने का पर्याप्त अवसर मिल पाता है। इस प्रकार विवाह से मानसिक स्थिरता को बढ़ावा मिलता है।

जिसमें जीवन स्तर को बेहतर बनाने में मदद मिलती है, किन्तु कुछ समाजवैज्ञानिकों की दृष्टि में एक विवाह के कारण समाज में अनैतिकता संबंधी दोष उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि इस प्रकार के विवाह के अंतर्गत व्यक्ति को कठोर संयम में व्यतीत करना दुष्कर होताहै, जिसके परिणाम स्वरूप समाज में यौन अपराधों में वृद्धि होती है। कुछ समाजविदों की दृष्टि में एक विवाह एकाधिकारी व्यवस्था के समान है, जिससे स्त्रियों को शोषित होने की संभावना प्रबल हो जाती है। परन्तु यह सहजस्वीकार्य है कि विवाह के सभी स्वरूपों में केवल एकविवाह ही ऐसो पद्धति है जिससे सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन अपेक्षाकृत अधिक सुसंगठित होता है।

बहुविवाह एक विवाह (Monogamy) जब एक से अधिक पुरुष तथा स्त्रियाँ आपस में वैवाहिक संबंध स्थापित करते है तो ऐसे विवाह बहु-विवाह (Polygamy) कहलाते है बहुविवाह के दो स्वरूप होते है-बहुपति विवाह (Polyandry) तथा बहुपत्नी विवाह (Polygyny)

(1) बहुपति विवाह (Polyandry Marriage)

एक समय पर एक स्त्री का एकाधिक पतियों के साथ विवाह बहुपति विवाह कहलाता है!

दक्षिण भारत के कुछ प्राग द्रविड़ सांस्कृतिक समूहों में बहुपति विवाह का प्रचलन था इस प्रकार के विवाह देहरादून के जौनसार, नीलगिरी के टोडा तथा कोटा, केरल की टियान, कोट तथा कुसुम्ब लद्दारवी बोटा, मालाबार के नायर इत्यादि जनजातियों में प्रचलित रहे है, किन्तु अब धीरे-धीरे इस प्रकार के विवाह की प्रथा खत्म होती जा रही हैं।

बहुपति विवाह दो प्रकार के होते है-(1) भ्रातृक बहुपति विवाह (Fraternal Polysnfty) तथा (2) अभ्रातृक बहुपति विवाह (Non-Fratemal polyandry) भ्रातृक बहुपति विवाह के अन्तर्गत दो या अधिक भाई मिलकर एक ही स्त्री से विवाह करते है या सबसे बड़ा भाई किसी एक स्त्री से विवाह करता है तथा अन्य भाई स्वत: ही उस स्त्री के पति स्वीकार किये जाते है। इस प्रकार के विवाह का प्रचलन रुम, कोटा तथा टोडा जनजातियों के बीच रहा है। रुम जनजाति में सबसे बड़ा भाई विवाह कए स्त्री लाता है और शेष स्वतः ही उस स्त्री के पति बन जाते है। टोडा जनजाति में भी भ्रातृक बहुपति विवाह कर प्रचलन रहा है।

अभ्रातृक बहुपति विवाह में पति आपस में भाई नहीं होते। स्त्री बारी-बारी से समान अवधि के लिए प्रत्यक पति के पास रहती है। इस प्रकार की प्रथा टोडा तथा नायर जनजातियों के बीच पायी जाती रही है।

मातृ-पक्षीय बहुपति विवाही परिवार के अन्तर्गत स्त्री अपनी माँ के परिवार में या मूल निवास स्थान में ही निवास करती है और पति ही बारी-बारी से वहाँ रहने के अलए आते रहते है। यह प्रथा मातृवंशीय नायर जनजाति के बीच रही है।

द्विपत्नी विवाह (Biogamy) तथा समूह विवाह का प्रचलन अब भारत की जनजातियों के बीच कानूनी प्रतिबन्ध तथा अन्य प्रतिकारकों के कारण खत्म हो चुके है।

जनजातियों के बीच जीवनसाथी चुनने के तरीके
(Ways of accuiring life matesaa among the tribals)

भारत की जनजातियों के बीच विवाह साथी चुनने के कई तरीके प्रचलित है, जिनमें प्रमुख तरीके निम्नलिखित है:

1. **क्रय विवाह (Marrige by purchase)** इस प्रकार के विवाह में वधू प्राप्त करनके लिए बधू के माता-पिता या उसके रिश्तेदारों को कुछ धन राशि कन्या मूल्य के रूप में देनी पड़ती है। कन्या मूल्य इस बात का परिचायक है कि विवाह दो व्यक्तियों का ही नहीं, बल्कि दो परिवारों का सम्मिलन है तथा वधू उन दो परिवारों के मध्य मंत्री सम्बन्ध कायम करती है। अनेक जनजातीय समाज में तो यह मूल्य सिर्फ औपचारिकता मात्र होता है। भारत की नागा, भोल, कूकी, उराँव, खड़िया, गोंड, गारो, बुक्सा इत्यादि जनजातियों के बीच क्रय विवाह का प्रचलन पाया जाता है। संथाल जनजाति में इस प्रकार के विवाह को सादाई बापला कहा जाता है। इस प्रकार के विवाह के पहले घर देखी, तिलक चढ़ी तथा टाका चाल को रश्में अदा की जाती है। विवाह वहुधा वर-वधू की पसन्द पर ही होता है। टाका चाल में वधू के लिए उसके पिता को पोन" शुल्क दिया जाता है।

   मुंडा जनजाति में इस प्रकार की शादी प्रायः माता-पिता द्वारा ही तय की जाती है मुंडारी भाषा में वधू-मूल्य को कुरी गोनोंगह कहा जाता है। पहले कुरु गोनोंग में मुद्रा नहीं मागें जाते थे, सिर्फ मवेशी लिये जाते थे। परन्तु आजकल कुरी गोनोंग में तीन चार गायों के अलावे कपड़े तथा कुछ नगद धनराशि दी जाती हैं। हो जनजाति में इस प्रकार के विवाह को अंदी कहा जाता है। विवाह का निर्णय वर-वधू के माता-पिता द्वारा किया जाता है। एक घटक तथा "दुतम" विवाह सम्बन्ध को सुनिश्चित करने के लिए

चुने जाते हैं फिर कन्या मूल्य का निर्धारण होता है। हो जनजाति में कन्या मूल्य की राशि अधिक होने के कारण कुछ लड़कियाँ चिरकुंवरी भी रह जाती है।"

सौरिया पहाड़िया जनजाति में वधू शुल्क (बिते) के रूप में 10-20 रू.से सौ-दो सौ रूपये दिये जाते है। बिते पर वधू के अभिभावक का अधिकार होता है। बिरहोर जनजाति में इस प्रकार के विवाह को सदर बापला कहा जाता है। सदर वापला में वर-वधू के माता-पिता का विशेष हाथ होता है तथा वधू-मूल्य के रूप में प्रायः 5:50 रू. दिये जाते है।

2. **सेवा विवाह (Marriage by Service)**-वधू मूल्य की अदायगी न कर पाने की स्थिति में वर अपने होने वाले सास-ससुर की सेवा करता है तथा बदले में उसकी पुत्री को पत्नी के रूप में प्राप्त करता है। भारत की गोंड, बैगा, खस इत्यादि जनजातियों के बीच इस प्रकार के विवाह के प्रचलन रहे है।

संथाल जनजाति द्वारा इस प्रकार के विवाह को घर दी जावांय बापला कहा जाता है। इस प्रकार के विवाह में वधू के लिए "पोन" तो नहीं देना पड़ता है, किन्तु वर को पाँच वर्ष तक अपने ससुराल में रहकर काम करना पड़ता है। बाद में वर अपनी वधू के साथ अपने घर लौट आता है।

मुंडा जनजाति में कही-कही "सेवा विवाह" के भी उदाहरण मिलते है। वधू-मूल्य को ससुर के घर में जाकर सेवा के रूप में चुकाया जाता है। गोंड तथा बैगा जनजाति के बीच जो पुरुष वधू-मूल्य नहीं दे पाता वह अपने ससुर के घर में सेवक के रूप में कार्य करता है तथा कुछ वर्षो तक सेवा करने के बाद ससुर की पुत्री से विवाह कर अपना घर लौट जाता है।

बिरहोर जनजात में यह शादी उस दशा में होती है जब लड़का बहुत निर्धन होता है और शादी का खर्च जुटाने में असमर्थ होता है। इस अवसर पर लड़की का पिता लड़का को इस शर्त पर कर्ज देता है कि वह थोड़ा-थोड़ा करके कर्ज लौटा देगा। इसे "कीरींग "जमाई बापला" कहा जाता है।

3. **हरण-विवाह (Marriage by capture)** इस प्रकार के विवाह में कन्या का अपहरण कर विवाह किया जाता है। मेंक्लैनन के अनुसार उद्विकासीय क्रम में विवाह का सर्वप्रथम तरीका हरण विवाह ही था। विवाह की यह पद्धति भारत की भूमिज, भील, गोंड, संथाल, बिरहोर तथा नागा जनजातियों के बीच प्रचलित रही है। धीरे-धीरे सामाजिक विकास एवं कानूनी प्रतिबंधों के कारण इस प्रकार के विवाह का प्रचलन खत्म होता जा रहा है।

मुंडा जनजाति में कुछ समय पहले हरण विवाह की प्रथा काफी प्रचलित थी। लड़का अपने पसन्द की किसी लड़की को हाट या मेलों से अपने मित्रों की मदद से हरण करके ले जाता था। इस तरह का प्रबन्ध वधू-मूल्य से छुटकारा पाने के लिए किया जाता है। खड़िया जनजाति में इन दिनों हरण कर या भगाकर विवाह करने की प्रथा धीरे-धीरे समाप्त हो रही है।

सौरिया पहाड़िया में अधिकांश शादियाँ कन्या हरण के द्वारा ही होती है। जब कभी किसी गाँव में कोई उत्सव समारोह होता है तब प्रेमी-प्रेमिका आपस में मिलते है और वहीं से सीधे वर के घर पहुँच जाते है। जब कन्या पक्ष से कन्या की खोज होती है तो थोड़ा बहुत बीते (कन्या मूल्य) दे दिया जाता है।

4. **हठ विवाह (Marriage by instrusion):** इस प्रकार के विवाह में लड़की जिस लड़का से शादी करना चाहती है, उसके घर पर जबर्दस्ती जाकर रहने लगती है तथा लड़के के माता-पिता द्वारा अपमान करने पर भी वह उनके परिवार में तब-तक बनी रहती है जब तक लड़के के माता-पिता उसे

बहू के रूप में स्वीकार न कर लें। भारत की संथाल, उराँव, कमार, थारू इत्यादि जनजातियों के बीच हठ विवाह की प्रथा रही है।

मुंडा जनजाति में हठ विवाह के कुछ उदाहरण मिलते है, जिसमें लड़की अपने प्रेमी के घर जाकर जबर्दस्ती रहने लगती है जो कि कारणवश उससे विवाह करना नहीं चाहता है। हो जनजाति में इस प्रकार के विवाह को अनादर विवाह कहा जाता है। अनादर विवाह में लड़की जबरन अपने प्रिय के घर जाकर रहने लगती है, जहाँ उसे तिरस्कार एवं भर्त्सना भी सहना पड़ता है।

खड़िया जनजाति में भी लड़की जबरन प्रियतम के घर में प्रवेश कर हठ विवाह करती है।

बिरहोर जनजाति में इस प्रकार के विवाह को "बोलो बापला" कहा जाता है। "बोलो बापला" में कोई युवती किसी युवक से प्रेम करती है तथा शादी का कोई उपाय न देखकर वह अपने प्रेमी के घर में चली जाती है, तरह-तरह की डाट-फटकार सुनती है, घर का काम करती है और अन्त में वर के परिवार वाले उसे "बोलों" या दुखनी पत्नी के नाम से स्वीकार कर लेते है। इसके विपरीत यदि युवक प्रेम करता है तो उस विवाह को "सीमन्दर बाला" कहा जाता है।

5. **सह पलायन विवाह (Marriage by elopment) :** जब युवक-युवती आपसी सहमति से विवाह करना चाहते है तथा उसके माता-पिता उन्हें विवाह करने की स्वीकृति नहीं देते तो वे सह-पलायन कर जाते है और पलायन किये हुए युवक-युवती को या तो दोनों पक्ष के लोग गाँव लौटा लाते है या सन्तान हाने पर वे स्वयं लौट आते है तो उन्हें सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है। भारत की कुरनई, भील, हो, मुंडा, खड़िया, बिरहोर इत्यादि जनजातियों के बीच सह-पलायन विवाह की परम्परा रही हैं।

हो जनजाति में इस प्रकार के विवाह को "राजी खुशी" विवाह कहा जाता है। जब युवक तथा युवती एक-दूसरे से प्रगाढ़ प्रेम में बंध जाते है तथा एक-दूसरे से विवाह करने को राजी हो जाते है, परन्तु यदि उनके माता-पिता इस पर अनिच्छा प्रकट करते है तो वे दोनों चुपके से निकल भागते है और जब तक नहीं लौटते जब तक उनके माता-पिता अपने विचार में परिवर्तन नहीं लाते है।

मुंडा जनजाति में राजी खुशी विवाह में लड़के और लड़की स्वयं हाथ बँटाते है। इस विवाह में माता-पिता द्वारा आयोजित विवाह की तरह अधिक विधियों सम्पन्न नहीं होती है। वधूमूल्य के लिये कोई खास आग्रह नहीं किया जाता और जो कुछ भी वर की तरफ से मिलता है उसे वधू के माता-पिता स्वीकार कर लेते है। कुरनई जनजाति में पलायन करने वाला युवक अपनी प्रेमिका के साथ तब-तक गाँव के बाहर हरता है, जब तक उनके माता-पिता इस विवाह के लिए तैयार न हो जाये अथवा उनकी एक संतान जन्म न ले लें।

खड़िया जनजाति में भी सहपलायन विवाह का प्रचलन देखने को मिलता है, किन्तु इन दिनों-सहपलायन विवाह की प्रथा धीरे-धीरे खत्म हो रही है।

बिरहोर जनजाति में युवक-युवती जब एक दूसरे से प्रेम करते है और आपस में शादी करना चाहते है तो वे भागकर पति-पत्नी का जीवन व्यतीत करते है। जब उनका पता लगता है तो वधू-मूल्य देकर सिंदूर दान कर दिया जाता है। नाम नापम बापला भी इसी प्रकार के सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर होता है। केवल अन्तर यह है कि इसमें समाज के लोग ही ऐसे युवक-युवतियों की शादी करा देते है, उन्हें भागने का अवसर नहीं दिया जाता है।

6. **विनिमय विवाह (Marriage by exchange)** : इस प्रकार के विवाह में एक भाई की शादी के लिए दूसरे परिवार में बहन दे दी जाती है। तथा बदले में बहन के पति की बहन से विवाह कर लिया जाता है। ऐसे विवाह में बिना वधू-मूल्य दिये पत्नी प्राप्त कर लिया जाता है। भारत की अधिकांश जनजातियों के बीच इस प्रकार की वैवाहिक प्रथा का अस्तित्व रहा है, किन्तु खासी जनजाति में इस प्रकार का विवाह निषेधित है।

संथाल जनजाति में इस प्रकार के विवाह को गोलाइटी बापला कहा जाता है। इस विवाह में जिस परिवार को बेटी दी जाती है उसी परिवार से पतोहू लायी जाती है। इस विवाह में भी पोन (वधू मूल्य) नहीं दिया जाता है।

बिरहोर जनजाति में इस प्रकार के विवाह को "गोलहर बापला" कहा जाता है। इस प्रकार के विवाह में वधू-मूल्य नहीं देना पड़ता है तथा शादी की सभी विध "सुंदर बापला" जैसी ही होती है।

उपर्युक्त जीवन साथी चुनने के तरीकों के अतिरिक्त भारत की जनजातियों में विवाह के अन्य तरीके भी प्रचलित है।

संथाल जनजाति में टुडकी दिपिल बापला का प्रचलन है, जिसमें कन्या को वर के घर लाकर शादी की जाती है। इसी तरह बिरहोर जनजाति में लड़की के माता-पिता के निर्धन होने पर वर पक्ष लड़की को अपने यहाँ लाकर विधिपूर्वक शादी कर लेता है। इसी प्रकार संथाल जनजाति में घर जावाय बापला के अन्तर्गत वर की शादी के बाद ससुराल में रहना पड़ता है तथा विवाह के लिए वर को पोन नहीं देना पड़ता है।

हो जनजाति में "दिकू अंदी" के अन्तर्गत विधिवत् व्यवहार का अनुकरण किया जाता है, जिसमें देवरी का स्थान प्रधान होता है। इसमें एक ब्राह्मण बुलाया जाता है, जो अपने साथ शालिग्राम शिला लाता है। उस शालिग्राम शिला के समक्ष दम्पत्ति अखंड प्रेम एवं विश्वास को निभाने की प्रतिज्ञा करते है। वर लोहे का चाकू लेकर वधू के चारों तरफ सात बार घूमता है और उसके माथे में सिन्दूर लेप देता है। फिर दुल्हन भी दुल्हे के माथे पर सिन्दूरलगा देती है।

गुजरात की भी जनजाति के बीच परीक्षा विवाह (Marriage by trial) का प्रचलन रहा है, जिसके अन्तर्गत वर के साहस और शौर्य की परीक्षा ली जाती है, जिसमें खरा उतरने पर ही उसका कन्या से विवाह कराया जाता है। कुछ समय पूर्व तक नागा जनजाति के बीच युद्ध में अधिक सिर काटने वाले पुरुष के विवाह के अवसर अधिक होते थे। इस प्रकार भारत की जनजातियों के बीच जीवन साथी चयन करने के विभिन्न तरीके प्रचलित है, जो वहाँ की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों तथा पर्यावरण पर निर्भर करता है। विवाह विच्छेद (Divorce): सामाजिक एवं कानूनी रूप से पति-पत्नी के वैवाहिक सम्बन्धों की समाप्ति ही विवाह विच्छेद कहलाता है। भारत की जनजातियों में वैवाहिक सम्बन्ध विच्छेद का प्रचलन है। प्रायः अनुचित यौन सम्बन्ध, बांझपन, चोर की आदत, आलस तथा गृह कार्यों में ढिलाई, पति के घर में रहने से असहमति, डायन होने का आरोप इत्यादि तलाक का कारण होते हैं। तलाक देने का अधिकार पति-पत्नी दोनों को होता है। पूर्व में तलाक का प्रस्ताव परम्परागत ग्राम पंचायत के समक्ष रखा जाता था, जो कारण को भली-भाँति समझने पर स्वीकार या अस्वीकार करता था। अब बदलते परिवेश में जनजातीय लोग तलाक के लिए सरकारी न्यायालय का भी सहारा लेने लगे है। तलाक वैधानिक, पारिवारिक तथा सामाजिक समस्या के रूप में भारतीय जनजातीय जीवन को प्रभावित करता रहा है।

मुंडा जनजाति में वैवाहिक सम्बन्ध विच्छेद के समारोह को "सकनचारी" कहा जाता है। सम्बन्ध विच्छेद के बाद पुरुष और स्त्री पुनः विवाह कर सकते है इस प्रकार के विवाह को सगाई कहा जाता है। विधवा

विवाह तथा वैवाहिक विच्छेद किये हुए व्यक्ति के विवाह में वधूमूल्य का का लेन-देन प्रायः नहीं होता है। खड़िया जनजाति में यदि तलाक कारण पत्नी का पर-पुरुष से अनुचित संग है तो लड़की के पिता को वधूमूल्य वापस कर देना पड़ता है। सौरिया पहाड़िया जनजाति में भी तलाक का रिवाज प्रचलित है। यदि लड़की की ओर से सौरिया पहाड़िया में तलाक होता है तो लड़के को उसे बिते (वधू-मूल्य) के कुल रूपये वापस करने होते है, परन्तु यदि लड़के की ओर से तलाक दिया गया हो तो वधूमूल्य की राशि वापिस नहीं मिलती हैं।

नातेदारी व्यवस्था (KINSHIP-SYSTEM) नातेदारी जनजातीय सामाजिक नीवन की आधारभूत कड़ी है। यौन इच्छा विवाह को जन्म देती है तथा विवाह परिवार एवं नातेदारी को जन्म देता है। मानव का जन्म के बाद समाज में एकाधिक लोगों से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इन सम्बन्धों में रक्त एवं विवाह के आधार पर स्थापित सम्बन्ध अपेक्षाकृत अधिक स्थायी एवं घनिष्ठ होते है। समाज द्वारा स्वीकृत जिन विशिष्ट सामाजिक सम्बन्धों द्वारा मनुष्यं बंधा होता है, नातेदारी कहलाता है। चार्ल्स विनिक के अनुसार "नातेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत समाज द्वारा मान्यता प्राप्त अनुमानित एवं वास्तविक सम्बन्ध आते है।"रिवर्स की दृष्टि में नातेदारी वंशावलियों के माध्यम से निर्धारित तथा वर्गिक की जा सकती है। राबिन फॉक्स के अनुसार "नातेदारी केवल मात्र स्वजन अर्थात् वास्तविक, ख्यात अथवा कल्पित समरकश्तता वाले व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध है" लुसी मेयर के अनुसार "नातेदारी सामाजिक सम्बन्धों को जैविक शब्दों में अभिव्यक्त किया जाता है।"

नातेदारी के अन्तर्गत सम्बन्धों की सामाजिक स्वीकृति से सम्बन्धित नियम भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न रूप में पाये जाते है। नातेदारों में रक्त सम्बन्धियों एवं विवाह सम्बन्धियों दोनों को शामिल किया जाता है। कभी-कभी वैसे सम्बन्ध को भी समज द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाती है, जो प्राणीशास्त्रीय नहीं होते, जैसे-गोद लिया गया पुत्र या पुत्री भी नातेदारी माने जाते हैं।

नातेदारी के प्रकार (TYPESAA OF KINSHIP): मजुमदार तथा मदान (1956:98) के अनुसार सभी समाजों में मानव समूह विभिन्न प्रकार के बन्धनों द्वारा आपस में बंधे होते है। इन बन्धनों में सबसे अधिक सार्वभौमिक तथा आधारभूत बन्धन सन्तानोपत्ति पर आधारित होता है। संतानोत्पत्ति मानव की नैसर्गिक इच्छा है और यही नातेदारी को जन्म देती है। मानव समाज में प्रजनन की कामना मुख्य रूप से दो प्रकार के सम्बन्धों को जन्म देती है:

(क) माता-पिता एवं सन्तानों के बीच भाई बहनों के मध्य बनने वाले समरक्त सम्बन्ध तथा (ख) पति-पत्नी के मध्य तथा इन दोनों पक्षों के बीच बनने वाले विवाह सम्बन्धा

क) समरक्त सम्बन्ध (Consanguneous relations): प्रजनन के आधार पर विकसित होने वाले नातेदारी का यह स्वरूप रक्त समरक्तता के आधार पर गठित होता है, जैसे-माता-पिता एवं संतानों के बीच का सम्बन्ध। इसके अंतर्गत माता-पिता एवं बच्चों के बीच स्थापित सम्बन्धों तथा भाई-बहन के बीच स्थापित सम्बन्धों पर आधारित नातेदारी शामिल होते है। इसके समान रक्त सम्बन्धी नातेदारी के आधार के लिये सदैव प्राणीशास्त्रीय सम्बन्ध का होना आवश्यक नहीं होता, यदि समाज स्वीकृति दे देता है तो काल्पनिक सम्बन्ध भी वास्तविक सम्बन्धों की तरह ही माने जाते है। गोद लेने की प्रथा इसका सार्वभौमिक उदाहरण है। जिस व्यक्ति को गोद लिया जाता है, उसके प्रति जैविक रूप से उत्पन्न संतान की भाँति व्यवहार किया जाता है। झारखंड के जनजातीय समाज में निःसंतान दम्पत्ति द्वारा गोद लिये संतानों का लालन-पालन करने का प्रचलन देखने को मिलता है। एक व्यक्ति के माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी, मामा, नाना-नानी, चाचा, बुआ इत्यादि समरक्त सम्बन्धी के

उदाहरण है, किन्तु पितृत्व तथा मातृत्व सृजन एवं प्रसवन की जैविक प्रक्रियाओं पर आधारित नहीं होता, बल्कि नातेदारी के अन्तर्गत सामाजिक मान्यतायें प्राणीशास्त्रीय तथ्य पर आधारित होती है।

(ख) विवाह सम्बन्ध (Marriage relation): वैवाहिक सम्बन्ध के द्वारा न केवल पति-पत्नी एकसूत्र बँधते है, अपितु उन दोनों को सभी सक्त सम्बन्धी भी एक सूत्र में बंध जाते है, जिसके परिणामस्वरूप दोनों पक्ष की एक सम्मिलित नातेदारी स्थापित हो जाती है। इन सम्बन्धों को दो व्यक्तियों के संदर्भ में ही प्रकट किये जाते हैं, जैसे सास-बहू, ससुर-बहू, पति-पत्नी, जीजा-साली, देवर-भाभी, ननद-भौजाई, साला-बहनोई, मामी भांजा, भतीजा-फूफा इत्यादि। इन सभी सम्बन्धियों के बीच सम्बन्ध का आधार रक्त न होकर विवाह होता है।

नातेदारी के संवर्ग (CATEGORIESAA OF KINSHIP)नातेदारों के बीच सम्बन्धों के परिमाणों के आधार पर नातेदारी विभिन्न संवर्ग में विभाजित होता है, जैसे-प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक, चतुर्थ, पंचम इत्यादि।

1. प्राथमिक सम्बन्धी (Primary Relativesaa) : प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखने वाले सभी सम्बन्धी इस संवर्ग के अन्तर्गत शामिल होते है। एक परिवार में आठ प्रकार के प्राथमिक सम्बन्धी हो सकते हैं, जिसमें सात रक्त से सम्बन्धित एवं एक विवाह से सम्बन्धित होता है।

   पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, माता-पुत्री, भाई-भाई, भाई-बहिन, बहिन-बहिन ये सभी रक्त सम्बन्धी है, जबकि पति-पत्नी का प्राथमिक सम्बन्ध विवाह पर आधारित होता है।

2. द्वितीयक सम्बन्धी (Secondary Relativesaa): प्राथमिक सम्बन्धियों के प्राथमिक सम्बन्धी इस संवर्ग के अन्तर्गत शामिल होते है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति की नानी उसकी द्वितीयक सम्बन्धी है, क्योंकि नानी से नाती का सम्बन्ध माता के द्वारा स्थापित होता है तथा माता तथा माता की माता (नानी) आपस में प्राथमिक सम्बन्धी होती है। चाचा-भतीजा, मामा, नाना, दादा इत्यादि रक्त सम्बन्धी द्वितीयक रिश्तेदारों के उदाहरण है, जबकि सास-ससुर, साला-बहनोई, साली, देवर-भाभी इत्यादि विवाह द्वारा बने द्वितीयक सम्बन्धियों के अन्तर्गत आते हैं। मुरडॉक ने 33 प्रकार के द्वितीयक सम्बन्धों का उल्लेख किया है।

3. तृतीयक सम्बन्धी (Tertiary Relativesaa): द्वितीयक सम्बन्धियों के प्राथमिक सम्बन्धी इस संवर्ग के अन्तर्गत आते है। पितामह इस संवर्ग के उदाहरण है क्योकि पिता प्राथमिक सम्बन्ध के अन्तर्गत आते है तथा पिता के पिता द्वितीयक सम्बन्धी होते है, इसलिए दादा के पिता तृतीयक सम्बन्धी के उदाहरण है। मुरडॉक द्वारा कुल 151 प्रकार के तृतीयक सम्बन्धियों की चर्चा की गयी है।

इस तरह समरक्त तथा विवाह सम्बन्धी नातेदारी को अनेक संवर्गों तथा श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। सम्बन्धों की यह श्रश्खला, चतुर्थ, पंचम, षष्टम इत्यादि और आगे भी ले जाया जा सकता है। इस प्रकार नातेदारी के विस्तार के साथ-साथ इसे अनेक श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। आदिवासिक समाज में सम्बन्धियों की सीमा अत्यंत विस्तृत होती है। इस समाज में नातेदारों की सीमा खोजते खोजते अन्त में लोग एक कल्पित पूर्वज तक पहुंच जाते हैं तथा इस पूर्वज की सन्तानों की बीच विवाह नहीं किये जाते है।

नातेदारी संज्ञाये (KINSHIP TERMS) विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों के सम्बोधन के लिए प्रयोग कियो जाने वाले सम्बन्ध सूचक शब्द ही नातेदारी संज्ञाये कहलाते है। नातेदारों को सम्बोधित करने वाले संज्ञा शब्द नातेदारों को विभिन्न श्रेणियों तथा उप-श्रेणियों में विभाजित करते हैं। कभी-कभी यह विभाजन सामाजिक यथार्थता के साथ सामंजस्य स्थापित करता है और कभी कभी नहीं भी। मजुमदार तथा मदान

(1956) के अनुसार नातेदारी संज्ञाओं की दो प्रमुख प्रणालियाँ होती है-पहला जिसमें सम्बन्ध-सूचक शब्द किसी व्यक्ति विशेष के लिये प्रयेग नहीं किये जाते, बल्कि सम्बन्धियों के वर्गों पर जो बहुत बड़े हो सकते है, लागू किये जाते है और दूसरा, जिसमें सम्बन्ध-सूचक शब्द एक अकेला व्यक्ति को बोध कराते है। मॉर्गन ने विश्व में प्रचलित नातेदारी शब्दों का अध्ययन कर उन्हें मुख्य रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया है– ''वर्गात्मक सम्बन्ध सूचक संज्ञाये'' तथा '' वर्णनात्मक सम्बन्ध सूचक संज्ञायें।

1. वर्गात्मक सम्बन्ध सूचक संज्ञायें (Classificatory terminology): ये वे सम्बोधन शब्द होते है, जिन्हें सम्बन्धियों के एक वर्ग को सम्बोधित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है, अर्थात् इन सम्बन्ध-सूचक शब्दों के द्वारा विभिन्न सम्बन्धियों को एक ही सम्बोधन शब्दो द्वारा पुकारा जाता है। जिसके कारण रिश्तेदारी का ठीक-ठाक ज्ञान नहीं हो पाता है। उदाहरणार्थ-उराँव जनजाति में टाची शब्द पिता की बहन, मामी, मौसी और सास के लिए प्रयुक्त होता है। क्रोबर का मत है कि ये वर्गात्मक संज्ञायें विशेष स्वजनों के बीच समानता बोध पर आधारित होते है, अर्थात ये नातेदारों का परिचय देने के उपकरण है। अतः इनसे कोई गंभीर अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए। एण्डरु लंग का मत है कि वर्णात्मक सम्बन्ध संज्ञाएँ प्रतिष्ठा, सम्मान और कर्तव्य के परिचायक है ''न कि रक्त सम्बन्ध तथा विवाह सम्बन्ध के। रिवर्स ने भी ऐण्डरु लेंग के इस मत की पुष्टि की है। अतः वर्गात्मक संज्ञाएँ सम्मान के अंशों को दर्शाने वाली ''शिष्टाचार की संहिता मात्र'' है। मॉर्गन ने परिवार एवं विवाह की उत्पति तथा उद्विकास को जानने के लिए नातेदारी शब्दावली को आधार माना है। विभिन्न प्रकार के सम्बन्धियों को एक ही वर्ग में रखकर एक हो संज्ञा से संबोधित करना इस बात है कि आदिम समाज में यौन साम्यवाद की स्थिति रही होगी तथा उसी में विभिनन स्तरों में गुजरते हुए आज एक-विवाह और एक विवाही परिवारों का उद्विकास हुआ। वर्गात्मक सम्बन्ध सूचक संज्ञाएँ संसार के सभी समजों में देखने को मिलती है जो इस बातकी संभावना व्यक्त करती है कि इनकी उत्पत्ति किसी सर्वव्यापी सामाजिक विकास की अवस्था में हुई होगी और यह सर्वव्यापी व्यवस्था समूह विवाह की ओर स्पष्ट संकेत करती है। रैडक्लिफ ब्राउन ने नातेदारी सूचक संज्ञाओं की प्रकार्यवादी व्याख्या करते हुए कहा है कि संज्ञा शब्द ने अहम् के अधिकारों एवं कर्तव्यों को वास्तव में समानान्तर किया है। एक ही संज्ञा शब्द से पुकारे जाने वाले व्यक्तियों के प्रति समान कर्तव्य होते हैं।

2. वर्णनात्मक सम्बन्ध सूचक संज्ञाएँ (Desaacriptive terminology): ये सम्बोधन शब्द होते है, जिनसे एक ही सम्बन्धी विशेष का बोध होता है। उदाहरणार्थ पिता शब्द से एक विशिष्ट सम्बन्धी का बोध होता है, जो समाज में पिता के सम्बन्ध से जाना जाता है। इस प्रकार के सम्बन्ध सूचक संज्ञाओं से वास्तविक सम्बन्धी का पता चल जाता है। पुत्र, पुत्री, पति, पत्नी, माँ इत्यादि अनेक ऐसे ही विशिष्ट शब्द हैं। मॉर्गन की धारणा है कि आदिम समाजों में नातेदारी को व्यक्त करने के लिए पहले वर्गात्मक सम्बनध सूचक संज्ञाएँ प्रयोग में लायी जाती होगी तथा बाद में चलकर मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ वर्णनात्मक सम्बन्यसूचक संज्ञाओं का विकास हुआ होगा। यौन साम्यवाद के काल में सन्तानों को अपने माता-पिता का वास्तविक ज्ञान नहीं होने के कारण वे सभी को एक ही सम्बोधन से सम्बोधित किया करते थे। इसी प्रकार की स्थिति समूह विवाह, बहुपति विवाह तथा बहुपत्नी विवाह के समय रही, किन्तु जब एक विवाह संस्था का विकास हुआ तो वर्गात्मक सम्बन्ध सूचक संज्ञाओं से वर्णनात्मक सम्बन्ध सूचक संज्ञाओं का भी विकास हुआ। रिवर्स ने वर्गात्मक सम्बन्ध सूचक संज्ञाओं के सामाजिक महत्व की चर्चा करते हुए लिखा है कि नातेदारी की विभिन्न संज्ञाएं उन सामाजिक प्रकार्यो की द्योतक है, जो इन शब्दों में आने से पूर्व भी

NOTES

प्रचलित थी। उदाहरणार्थ भारतीय जनजातियों में विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियों के लिए "मामा" शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो इन व्यक्तियों के विशिष्ट सामाजिक कार्यों को निर्दिष्ट करता है। यदि किसी जनजाति में चाचा के लिए भी पिता शब्द तथा मौसी के लिए भी माता शब्द का प्रयोग किया जाता है तो स्पष्ट है कि इस जनजातीय समाज में कभी चाचा भी पिता का कार्य करते होगें और साली विवाह का प्रचलन इन जनजातीय समाज में रहा होगा।

नातेदारी की भूमिका एवं महत्व (ROLR AND IMPORTANCE OF KINSHIP) नातेदारी व्यवस्था जनजातीय सामाजिक जीवन तथा संगठन की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। फर्म को यह मान्यता रही है कि नातेदारी एक ऐसी छड़ है, जिस पर एक व्यक्ति जीवन भर निर्भर करता है। नातेदारी व्यवस्था अनेक स्थितियों में मानव व्यवहार को नियंत्रित करती है। नातेदारी की भूमिका एवं महत्व को निम्न रूप में दर्शाया जा सकता है:

1. विवाह एवं परिवार का आधार (Base pf Marriage and family) जनजातीय समाज में विवाह सम्बंधी मान्यता, अधिमान्यता, निषेध इत्यादि का निर्धारण नातेदारी के आधार पर ही होता है। जनजातीय परिवार में रक्त एवं विवाह सम्बन्ध पर आधारित सदस्य पाये जाते है, जिन्हें नातेदार माना जाता है। परिवार का विस्तार नातेदारी का ही विस्तार होता है। रैडक्लिफ-ब्राउन नातेदारी व्यवस्था की प्राकार्यात्मक विवेचना करते हुए ऐसा मानते है कि विवाह एवं नातेदारी एक-दूसरे के बीच व्यवस्था उत्पन्न करते है।

2. वंश, उत्तराधिकार तथा पदाधिकार का सुनिश्चयीकरण (Determination of Desaacent, Desaacent, inheritance and succesaasion): वंशावली के निर्धारण में नातेदारी की प्रमुख. भूमिका होती है। परिवार, वंश, गोत्र इत्यादि नातेदारी के ही विस्तृत रूप होते है। नातेदारी के आधार पर ही यह तय किया जाता है कि एक व्यक्ति की सम्पत्ति एवं पद का हस्तांतरण किन लोगों में होगा तथा कौन-कौन उसके दावेदार होगे। सभी समाजों में नातेदारी के बन्धनों (Kinship tiesaa) का उपयोग सम्पदा के स्वामी, उत्तराधिकारियों पदाधिकारियों तथा उत्तरावर्ती अधिकारियों इत्यादि के बीच सम्बन्धों को परिभाषित करने के लिए किया जाता है।

3. सामाजिक एवं आर्थिक उत्तरदायित्वों का अनुपालन (Performance of Social and ecomic resaaponsibility):जनजातीय समुदाय में सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के क्रम में अन्य सदस्यों की अपेक्षा नातेदारों की सहायता करने का दायित्व अधिक महत्वपूर्ण होता है। इस समुदाय में एक सम्बन्धी दूसरे सम्बन्धी को बिना लाभ की आशा किये अपनी निःशुल्क सेवा प्रदान करता है। नातेदार विषम सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में सहायक सिद्ध होते है। मुरडॉक के अनुसार नातेदारी समूह एक व्यक्ति नहीं, वरन् द्वितीय रक्षा पंक्ति का प्रतिनिधित्व करते है। जब कोई व्यक्ति संकट या कठिनाई में होता है अथवा उसे किसी आर्थिक या सांस्कृतिक दायित्वों को करना होता है, तब वह अपने विस्तृत नातेदारी समूह की ओर सहायता के लिए निहार सकता है। लुसी मेंबर का मत है कि विभिन्न समाजों में स्वीकृत बन्धुत्व के बन्धन लोगों की खेती पर तथा दूसरी जायदाद पर अधिकार, समान हितों की पूर्ति में परस्पर सहायता तथा दूसरों पर आधिपत्य प्रदान करते हैं। प्रभुता प्राप्त लोगों पर यह दायित्व होता है कि वह आश्रितों का कल्याण करें। आश्रितों का पूरा धर्म आज्ञापालन है। सभी लोगों का कर्तव्य है कि ऐसे अवसरों पर जहाँ बन्धुत्व की मान्यता का प्रश्न है, परस्पर सहयोग करें। इस प्रकार सामाजिक एवं आर्थिक संकटों के समय नातेदार ही व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करते हैं।

4. मानसिक सुरक्षा (Mental Security) मानव स्वभावत: एक अपरिचित से भयभीत व वआशंकित होता है, जबकि परिचितों पर वह विश्वास करता है तथा नातेदारों के बीच अपरिमित मानवीय आनन्द प्रसन्नता तथा संतोष अनुभव करता है। इतिहास इस तथ्य का गवाह रहा है कि एक लम्बे अर्से तक मानव जाति नातेदारी पर आधारित समूह में रही है। मानव का जीवन, उसकी सुरक्षा सभी कुछ नातेदारों के हाथ में परम्परा से सुरक्षित रहा है। नातेदारी से जुड़ी मानवीय संवेदनायें एक व्यक्ति को आधुनिक वैयक्तिक समाज में भी अपने से मुक्त नहीं कर पायी है। नातेदारी व्यवस्था आज भी व्यक्ति को मानसिक संतुष्टि व सुरक्षा प्रदान करने में उतना ही सक्षम है, जितना अतीत में रहा है।

5. सामाजिक संरचना का आधार (Base of Social Structure) : सभी स्तर के मानव समाजों की संरचना में नातेदारी व्यवस्था एक महत्वपूर्णघटक के रूप में विद्यमान रही है। यही कारण है कि नातेदारी ने मानव विकास तथा सामाजिक संरचना को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रारंभिक मानवशास्त्रियों में से अधिकांश ने अपना अध्ययन नातेदारी से ही प्रारंम्भ किया है। मॉर्गन, मेलिनोवस्की, रैडक्लिफ ब्राउन, रिवर्स, ईवान्स प्रिचार्ड, सैलिगमेंन, लोवी, मेंक्लीनन, फेंज बोआस इत्यादि प्रमुख मानवशास्त्रियों के अध्ययन जनजातियों की नातेदारी व्यवस्था, परिवार एवं विवाह से ही सम्बन्धित थे। इन लोगों ने नातेदारी के अध्ययन पर सामाजिक संरचना को समझने की दिशा में पहल किया। अनेक अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि आदिमकालीन समाजों में वंशानुक्रम समूह की मूलभूत राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा क्षेत्रीय इकाइयाँ रही है। रिवर्स तथा अन्य अनेक भारतीय मानवशास्त्रियों ने नातेदारी के विभिन्न पक्षों का अध्ययन कर मानवशास्त्रीय ज्ञान को व्यापक व समद्ध बनाया हैं।

नातेदारी के नियामक व्यवहार या रीतियाँ (KINSHIP USAGESAA) :

रैडक्लिफ ब्राउन के अनुसार "नातेदारी सामाजिक उद्देश्यों के लिए स्वीकृत वंश सम्बन्ध है, जो सामाजिक सम्बन्धों के परम्परात्मक सम्बधों का आधार है"। नातेदारी में रक्त एवं विवाह सम्बन्धियों दोनों को शामिल किया जाता है। कभी-कभी वैसे सम्बन्ध को भी समाज द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाती है, जो प्राणीशास्त्रीय नहीं होते। उदाहरणार्थ-गोद लिया गया पुत्र भी नातेदार माना जाता है।

झारखंड की जनजातियों में रक्त तथा विवाह सम्बन्धों पर आधारित नातेदारी व्यवस्था पायी जाती है। झारखंड की जनजातियों की नातेदारी की प्रमुख रीतियाँ निम्न प्रकार है:

परिहार सम्बन्ध (Avoidance) परिहार अथवा विमुखता की रीति के द्वारा कुछ विशिष्ट नातेदारों को पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने से रोका जाता है। इस रीति के अनुसार कई सम्बन्धियों का नाम लेना या उनसे बात-चीत करना भी वर्जित होता है। कभी-कभी तो ये सम्बन्धी एक दूसरे को देख भी नहीं सकते, न आमने-सामने आ सकते है। लोवी के अनुसार श्वसुर तथा पुत्र-वधू तथा सास और दामाद के पारस्परिक सम्बन्ध परिहार के प्रमुख उदाहरण हैं:

संथाल जनजाति में भैसुर (पति का बड़ा भाई) तथा जेठ सास (पत्नी की बड़ी बहन) को देवता समझा जाता है, उनसे छुआने की बात तो दूर रही, उनकी परछाई तक से अलग रहा जाता है, उनकी चारपाई या बिछावन पर बैठा तक नहीं जाता है। यदि कभी भूल से छू जाये तो 'आरूप जांगा' की रस्म पूरी करनी पड़ती है। सास-ससुर को माता-पिता की तरह पूज्य माना जाता है। पति की बहन को भी आदरसूचक शब्दों से संबोधित कियाजाता है। उन्हें ब्राह्मण के समान माना जाता हैं संथाल महिलाओं में सिर पर घूंघट डालने का रिवाज नहीं है, परन्तु गुरुजनों के सामने वे अपने बालों को खुला नहीं छोड़ती। भील जनजाति के बीच

बहू तथा श्वसुर के बीच परिहार सम्बन्धी रीतियाँ भी कठोर है।

मुंडा जनजाति में पुरुष तथा सास-ससुर एवं बड़े साले तथा साली के बीच तथा स्त्री और सास-ससुर तथा भैसुर तथा जेठ ननद के बीच परिहार सम्बन्ध होता है। इनमें सास-ससुर के प्रति श्रद्धा परिहार तक जा पहुँचती है।

खड़िया जनजाति में पत्नी की बड़ी बहन, बड़े भाई तथा माता-पिता के साथ परिहार सम्बन्ध माना जाता है। स्त्री अपने पति के बड़े भाई, बहन तथा माता-पिता से परिहार का सम्बन्ध रखती है। खड़िया पुरुष अपने ससुर के साथ परिहार का सम्बन्ध रखता है, जो उसके प्रति श्रद्धा तथा मान का परिचायक समझा जाता है, किन्तु सास के साथ उसका दूरत्व कुछ उन्मुक्त व्यवहार की ओर झुका रहता है, क्योंकि ससुराल में सास ही उसके आराम की देखभाल करती है।

परिहास सम्बन्ध (Joking Relation) : रैडक्लिफ ब्राउन के मतानुसार परिहास सम्बन्ध दो व्यक्तियों के बीच वैसे सम्बन्ध को दर्शाता है, जिसके अन्तर्गत एक पक्ष को प्रथा द्वारा यह छूट रहती है और कभी-कभी उससे यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह दूसरे पक्ष को तंग करे या उससे हंसी-मजाक करे, किन्तु दूसरा पक्ष उसका कुछ भी बुरा न मानें। परिहास सम्बन्ध के अन्तर्गत दो सम्बन्धियों में परस्पर हँसी-मजाक, गाली-गलौज, यौन-सम्बन्धी अश्लील कथन, एक-दूसरे की सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना इत्यादि घनिष्ठतम सम्बन्धों का समावेश होता है। इस प्रकार की रीतियाँ प्रमुखतया विवाह सम्बन्धियों के बीच पाये जाते हैं। जीजा-साली, देवर-भाभी, मामा-भांजा इत्यादि अनेक ऐसे सम्बन्ध होते है, जिसमें परिहास सम्बन्धों की प्रधानता होती है।

संथाल जनजाति में परिहास सम्बन्ध भाभी देवर, ननद-भाभी, जीजा-साली, जीजा-साला, दादा-पोती, दादी पोता, नाना-नानी, नानी-नाती, समधी-समधिन, रिश्तेदारों के बीच पाया जाता है।

मुंडा जन जाति में भाभी-देवर भाभी-ननद, जीजी-साली, जीजा-साला, पितामह-पौत्री सम्बन्धियों के बीच परिहास सम्बन्ध होता है। मुंडा जनजाति में उम्र की असमानता के कारण दादा पोती में विवाह तो नहीं होता, किन्तु इनके बीच उपहास सम्बन्धों में बहुधा ह्काम हका अंश होता है। उराँव तथा बैगा जनजातियों में दादी पोते के बीच परिहास सम्बन्धों की मान्यता रही है।

खड़िया जनजाति में परिहास पत्नी के छोटे भाई-बहन तथा दादा-दादी तथा पोता-पोती के बीच छिड़ा करता है। जनजातीय समाज में कुछ विशेष पर्व-त्योहारों तथा समारोहों के अवसर पर परिहास सम्बन्धी व्यवहारों की छूट और अधिक बढ़ जाती है।

पितृश्वश्रेय (Amoyayr) पितृसत्तात्मक परिवार के अन्तर्गत पितृश्वश्रेय प्रथा के अन्तर्गत पिता की बहन "पितृश्वसो" का विशेष महत्व होता है। झारखण्ड की जनजातियों के बीच पितृश्वश्रेय प्रथा आंशिक रूप में प्रचलित है। संथाल जनजाति में पति की बहन को आदरसूचक शब्दों से ही सम्बोधित किया जाता है, उन्हें ब्राह्मण तुल्य माना जाता है।

मातुलेय (Avunculate) यह रीति मातृसत्तात्मक परिवारों में पायी जाती है, जहाँ मामा का भान्जे-भानजियों के जीवन में प्रमुख स्थान होता है। इस रीति के अन्तर्गत पारिवारिक विषयों में मामा के अधिकार को प्रधानता दी जाती है तथा बच्चों से उम्मीद की जाती है कि वे पिता अथवा किसी भी दूसरे नातेदार की तुलना में अपने मामा का सबसे अधिक आदर करे। मामा से भी यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने भांजे को ही अपनी सम्पत्ति का वारिस बनाये।

झारखंड की जनजातियों में पितृसत्तात्मक परिवार का प्रचलन है, फिर भी इनमें मातुलेय प्रथा के कुछ अंश देखने को मिलते है। मुंडा जनजाति में मामा को अपने भगिना-भगिनी के विवाह के अवसर पर कुछ निश्चित कर्तव्य निभाना पड़ता है।

सहकष्टी (Couvade) सहकष्टी या सह-प्रसविता प्रसव से सम्बन्धित रीति है, जिसके अन्तर्गत जब पत्नी की सन्तान होने वाली हो तो पति को उन सभी निषेधों अनुसंरन करना पड़ता है, जिनका अनुपालन उसकी पत्नी करती है। पति को भी उसी प्रकार से कष्टों को झेलने का प्रदर्शन करना पड़ता है, जो कष्ट उसकी पत्नी प्रसव के समय झेलती है। पति को अपनी प्रसवा पत्नी के समान ही भोजन करना पड़ता है उन सभी निषेधों का पालन करना पड़ता है, जो उसकी प्रसवा पत्नी पर लागू होता है। सहकष्टिता रीति की सीमा कभी-कभी इस हद तक होती है कि जब प्रसव के समय पत्नी पीड़ा के कारण रोने-चिल्लाने लगती है, तब पति को भी इसी प्रकार चीखना-चिल्लाना पड़ता है। शिशु के जन्म के बाद भी कुछ निश्चित दिनों तक पति को प्रसूता पत्नी के साथ ही कमरे में रहना पड़ता है तथा उस पर भोजन तथा स्पर्श से सम्बन्धित वे सभी निषेध लागू होते है, जो प्रसूता पत्नी के लिए सुनिश्चित होते है। अनेक मानववैज्ञानिकों का मत है कि नातेदारी की इस रीति का प्रारंभ पत्नी के प्रति संवेदना प्रकट करने के लिए हुआ होगा। मेलिनोवस्की के अनुसार इस रीति के द्वारा एक पुरुष अपनी पत्नी तथा बच्चों के प्रति अपने प्रेम तथा त्याग को अभिव्यक्त करता है, जिसके कारण पारिवारिक सम्बन्ध अधिक सुदृढ हो जाते हैं।

भारत में खासी तथा टोडा जनजातियों के बीच इस रीति का प्रचलन रहा है। खासी जनजाति में शिशु के जन्म होने तक जिस प्रकार एक गर्भवती स्त्री कपड़े धोने तथा नदी पार करने काम नहीं करती, उसी तरह उसका पति भी ऐसे कार्यों का सम्पादन नहीं कर सकता।

माध्यमिक सम्बोधन (Teknonymy) यह रीति परिहास का ही एक विशेष स्वरूप है। माध्यमिक सम्बोधन रीति के अन्तर्गत निकट के सम्बन्धियों को उनके नाम से पुकारना मना होता है। उन्हें पुकारने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को माध्यम बनाया जाता है। झारखण्ड की मुंडा तथा उराँव महिलायें तथा अपने पति को नाम से सम्बोधितं न करके अपना “आदमी” शब्द का प्रयोग किया करती है। थारू महिलायें अपने पति, सास, श्वसुर जेठ तथा अधिक आयु के अन्य रिश्तेदारों के नाम उच्चारित नहीं करती, बल्कि अन्य शब्दों जैसे फलों के बापू या दादा इत्यादि द्वारा उन्हें सम्बोधित करती ह।

bdkÃ&4
tutkfr vkj xk=] xk= dh fo'k"krk,¡ çdkj

गोत्र (CLAN) गोत्र जनजातीय सामाजिक संगठन का एक महत्वपूर्ण आधार है। गोत्र को कई वंशों का समूह कहा जा सकता है जो माता या पिता किसी एक पक्ष के समरक्त सम्बन्धियों (चाहे यह सम्बन्ध काल्पनिक ही क्यों न हो) से मिलकर बनता है। गोत्र वंश का ही एक विस्तृत रूप होता है। गोत्र का प्रारंभ परिवार के किसी प्रमुख पूर्वज (वास्तविक, कल्पित या पौराणिक) से होता है। यह पूर्वज प्रमुख और प्रतिष्ठत होने के कारण उसे उस परिवार का प्रवर्तक या संस्थापक मान लिया जाता है। इसी कारण उसके नाम से परिवार के सब वंशजों का परिचय दिया जाता है और सब मिलकर एक गोत्र कहलाते है। ये वंशज या तो मातृवंशीय वंश-समूह के होते है या पितृवंशीय वंश समूह को माता तथा पिता दोनों पक्ष के वंश-समूहों को मिलाकर गोत्र का निर्माण कभी नहीं होता। गोत्र सदैव एकपक्षीय होता हैपिडिंगटन के अनुसार, एक गोत्र जिसे कभी-कभी कुल (sib) या सेप्ट (sept) भी कहा जाता है, एकबहिर्विवाहीसामाजिक समूह है, जिसके सदस्य अपने आपको एक-दूसरे से सम्बन्धित समझते है, जोसाधारणतयाअपनी उत्पत्ति एक काल्पनिक वंशानुक्रम द्वारा किसी सामान्य पूर्वज से मानते है।”हेरीएम.जॉनसन केमतानुसार “गोत्र उन परिवारों से गठित होता है, जो तथ्यों से एक दूसरे से बंधे होते है-(1) एकस्थानीय निवास का नियम, पितृस्थानीय, या मातुलस्थानीय, (2) एकवाही वंशक्रम का नियम या तो

पितृवाही या मातृवाही, और (3) कुछ समान गतिविधियाँ। मजुमदार एवं मदार की दृष्टि में कुल (sid) या गोत्र (clan) अधिकाशं रूप से कुछ वंशों का एक संगठन होता है, जो अपनी उत्पति एक कल्पित पूर्वज से मानते है, जो मानव के समान, पशु, पौधा या निर्जीव वस्तु तक हो सकता है।

आर. एन. मुखर्जी के मत में "गोत्र एक पक्षीय परिवारों का वह संकलन है, जिनके सदस्य अपने को एक वास्तविक या काल्पनिक सामान्य पूर्वज के वंशज मानते है।"

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि गोत्र एकाधिक परिवारों या वंशों का एक ऐसा एकवंशीय (पितृवंशीय या मातृवंशीय) समूह है, जो अपनी उत्पति किसी एक पूर्वज से मानता है। यह पूर्वज वास्तविक भी हो सकता है या काल्पनिक भी। जनजातीय समाज में एक गोत्र के सदस्य बहिर्विवाह के नियम का पालन करते है।

गोत्र की विशेषतायें (Characteristics of clan)

उपर्युक्त परिभाषाओं से गोत्र की निम्नलिखित विशेषतायें स्पष्ट होती है:

1. गोत्र का संगठन का सामान्य पूर्वज को कल्पना पर आधारित होता है। गोत्र के सदस्य ऐसा मानते है कि उनकी उत्पत्ति किसी एक ही पर्वज से हुई है। यह पूर्वज वास्तविक भी हो सकता है और काल्पनिक या पौराणिक भी।

2. गोत्र एक बहिर्विवाह वंश समूह है। चूँकि एक गोत्र का संगठन एक सामान्य पूर्वज की कल्पना पर आधारित होता है, इसलिए एक गोत्र के सभी सदस्य अपने को एक सामान्य पूर्वज की सन्तान मानते है. इसलिए वे एक-दूसरे के भाई अथवा बहन हुए। इसलिए वे अपने गोत्र के किसी व्यक्ति से विवाह नहीं करते। विवाह अपने से बाहर के गोत्र में होता है।

3. गोत्र एक पक्षीय समूह होता है। एक गोत्र में या तो माता की ओर से सभी परिवारों को शामिल किया. जाता है या पिता की ओर के सभी परिवारों को सम्मिलित किया जाता है। गोत्र में रक्त सम्बन्धियों को ही शामिल किया जाता है। विवाह के बाद पत्नी का गोत्र भी बदल जाता है। और वह अपने पति के गोत्र को ग्रहण कर लेती हैं रेड्डी कुलों व टोडाओं में विवाह के बाद भी पत्नी अपने पति के कुल नाम को ग्रहण नहीं करती। गोद लेने पर पुत्र पिता के गोत्र को धारण कर लेता है। रिवर्स गोत्र की विशेषताओं में टोटम तथा एक क्षेत्रीय निवास को भी सम्मिलित करते है।

गोत्र के प्रकार (Kinds of Clan)

चूँकि गोत्र एक पक्षीय वंशसमूह होता है, इसलिए इसके प्रमुख रूप से दो प्रकार होते हैं:

1. मातृवंशीय गोत्र (Matrilineal clan) इसके अन्तर्गत एक स्त्री पूर्वज की जितनी भी सन्तानें होती है, वे सभी इस गोत्र का सदस्य मानी जाती है। परिवार की एक स्त्री उसकी बहनें तथा उनके बच्चें इस गोत्र के सदस्य होते है। दूसरे शब्दों में, एक स्त्री, उसके बच्चें, उस स्त्री की बहनें तथा उनके बच्चे और उन बच्चों की लड़कियों के बच्चें सब मातृवंशीय गोत्र में शामिल होते हैं, किन्तु भाइयों के बच्चे इसके अन्तर्गत नहीं आते है।

2. पितृवंशीय गोत्र (Patrilineal caln) इसके अन्तर्गत एक पुरुष पूर्वज की सन्तानें सम्मिलित होती है। ऐसे गोत्र में एक पुरुष, उसके भाई, उस पुरुष की संतानें तथा उसके भाइयों की सन्तानें शामिल होती हैं, किन्तु बहनों की सन्तानें ऐसे गोत्र में में नहीं आती। एक पुरुष की बहनें विवाह के बाद पति के गोत्र की सदस्या बन जाती है। झारखण्ड की जनजातियों में पितृवंशीय गोत्र ही पाये जाते है।

गोत्र के विस्तृत स्वरूप (Extended Forms of Clan)

कभी-कभी कई गोत्र मिलकर एक वृहत् समूह का निर्माण करते है, जिसके परिणामस्वरूप भ्रातृदल (Phratry), गोत्रार्ध (Moiety) एवं जनजाति (Tribe) की उत्पत्ति होती है।

श्यामा चरण दूबे के शब्दों में संगठन की दृष्टि से कभी-कभी अनेक गोत्र मिलकर एक समूह बना लेते है, जिसे ही हम भ्रातृदल या गोत्र समूह (Phratry) कहते है।ह मजुमदार एवं मदान के शब्दों में "जब किसी कारणवश एकाधिक गोत्र एक साथ मिल जाते है तो इस समूह को भ्रातृदल कहा जाता है। यद्यपि एकाधिक गोत्रों का संयुक्त रूप ही भ्रतृदल है, परन्तु इस प्रकार संयुक्त होने पर प्रत्येक गोत्र का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता। वास्तव में भ्रतृदल के प्रत्येक गोत्र के सदस्य में सामुदायिक भावना का विस्तार मात्र होता है तथा वह अपने गोत्र तथा भ्रातृदल दोनों के प्रति ही अपने नैतिक व सामाजिक कर्तव्यों व भूमिकाओं का निर्वाह करता है। भ्रातृदल एक ढीला व असंगठित समूह होता है। भ्रातृदल में विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध गोत्र की तरह निश्चित तथा दृढ नहीं होते है। अतः कोई भ्रात्दल बहिर्विवाही हो भी सकता है और नहीं भी।

एक भ्रातृदल में अनेक गोत्र होते है। लोवी ने गोत्रों से भ्रातदल की रचना के सम्बन्ध में चार संभावनाओं की चर्चा की है:

1. कई गोत्र अपने पूर्ववर्ती पृथक अवशेषों को लुप्त किये बिना ही आपस में मिल सकते हैं तथा भ्रातृदल की रचना कर सकते हैं।
2. कई गोत्र इतना बड़ा तथा व्यापक हो सकता है कि वह कालान्तर में चलकर कई छोटे-छोटे समूहों में बंट जाय। इन समूहों में पूर्ववर्ती एकता के सूत्र पूर्णतः टूट नहीं पाते और वे सब पुनः मिलकर एक भ्रातदल का निर्माण करते है। झारखण्ड की उराँव हो तथा मुंडा जनजातियों में कई गोत्र अपनी उत्पत्ति एक ही स्रोत से मानते है। अतः वे एक प्रातदल का निर्माण करते है।
3. यदि किसी जनजाति में कई गोत्र समाप्त होते-होते केवल दो ही अवशेष रह जायें, तो उनमें भी भ्रातृदल का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ टोडा जनजाति में पहले कई गोत्र थ किन्तु अब इस जनजाति में केवल दो ही गोत्र अवशिष्ट रह गये है, जो भ्रातृदल (तारथरोल तथा तिवालिओल) कहलाने लगे है।
4. गोत्र एवं भ्रातृदल की उत्पत्ति अलग-अलग कारणों के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न तरीकों से भी हो सकती है। ये सभी आपस में मिलकर समाज के एक बड़े संगठन की रचना भ्रातृदल के रूप में कर सकते है। लोवी ने अमरीकी "दत्त" जो जनजातियों में भ्रातृदल जैसी व्यवस्था है, के आधार पर इस प्रकार की संभावना व्यक्त की है।

अगर किसी जनजाति के सभी गोत्र केवल दो भागों में विभक्त होकर संगठित हों तो उस पूरे संगठन को युग्म-संगठन (Dual organization) कहा जाता है तथा इनमें से प्रत्येक हिस्से को अर्थात् युग्म-संगठन के आधे हिस्से को गोत्रार्ध (Moiety) कहते है। यह गोत्रार्ध बहिर्विवाही समूह होता है और इस कारण एक गोत्रार्ध के सदस्य अपने-अपनेविवाह सम्बन्ध दूसरे गोत्रार्ध के साथ ही स्थापित करते है। मलनेशिया, आस्ट्रेलिया तथा उत्तरी अमरीका में बहुत से समुदाय इन गोत्रार्थो में बँटे हुये है! पूर्वी अफ्रीका में युग्म संगठन "गैलाज" के रूप में पाये जाते है। प्रत्येक गैलाज दो समूहों में विभाजित होता है-एक वर्ग पुरुष दूसरे वर्ग से पत्नियाँ प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार एक जनजाति परिवार से प्रारंभ होकर विस्तृत परिवार, वंशगोत्र, प्रातृदल गोत्रार्थ तथा जनजाति तक प्रसारित होती है।

गोत्र का नामकरण (Nomrnclature of clan)

गोत्र का नामकरण प्रायः पूर्वजों को आधार मानकर किया जाता है। गोत्र के पूर्वज के रूप में वास्तविक तथा काल्पनिक मनुष्य, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी या कोई अन्य चीजें हो सकती है। हिन्दुओं में गोत्रों के नाम ऋषियों के आधारपर सुनिश्चित किये जाते है, जैसे-कश्यप, शांडिल्य, भारद्वाज इत्यादि। जनजातियों में टोटम तथा स्थान के आधा पर गोत्र के नामकरण किये जाते है। टोटम के नाम पर आधारित गोत्र के उदाहरण है-कुंजम, नागसोरी इत्यादि। इसी प्रकार स्थान के आधार पर गोत्र केनाम है-जौनपुरिया, सरगुजिया, महानदियाँ इत्यादि। जानवरों के नाम के आधार पर सालं (मछली), नाम (सर्प) सालक (चिड़ियाँ) इत्यादि गोत्र पाये जाते है। इसी प्रकार अशोक (फुल), सारू (जमीकन्द) इत्यादि पेड़-पौधो के आधार पर गोत्रों के नामकरण पाये जाते है।

गोत्र के कार्य (Function of Clan)

जनजातीय समाज में गोत्र एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण संगठन है। इस सामाजिक संगठन के द्वारा अनेक सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक कार्यो का सम्पादन सुचारू ढंग से किया जाता है जिनका विवरण निम्नवत् है:

1. सदस्यों के व्यवहार पर नियंत्रण (Control over behaviour of members) गोत्र अपने सदस्यों के लिए सामुदायिक सुसंगठन के लिए नियम बनाता है तथा उनके द्वारा अपने सदस्यों के व्यवहारों पर नियंत्रण रखता है। चूँकि गोत्र के सभी सदस्य परस्पर एक-एक दूसरे से घनिष्ट रूप से बंधे होते है, इसलिए यह काम गोत्र अति सरलतापूर्वक सम्पादित कर सकता है। अपने गोत्र के सदस्यों को समूह के नियमों का पालन करने की सीख देना तथा उन्हें सही मार्ग पर अग्रसारित करना गोत्र परिवारों के बड़े-बूढ़े का प्रमुख कार्य होता है। गोत्र के नियमों की अवहेलना करने की स्थिति में गोत्र सदस्य को गोत्र से बहिष्कशत भी करता है, जिसके डर से लोम-गोत्र नियमों की अवमानना नहीं करते।

2. गोत्रबहिर्विवाह (Clan exogamy) एक गोत्र के सभी सदस्य अपने को एक सामान्य पूर्वज को सन्तान मानते है, इस कारण यह एक-दूसरे के भाई-बहन समझे जाते है। यही कारण है कि अपने गोत्र के सदस्यों के साथ विवाह करना निकटाभिगमन (Incesaat) माना जाता है। इस प्रकार गोत्र का एक प्रमुख कार्य अपने सदस्यों से गोत्र बहिर्विवाह सम्बन्धी नियमों का अनुपालन करवाना होता है।

3. गोत्र के सदस्यों के बीच पारस्परिक सहायता तथा सुरक्षा की भावना (Feeling of mutual co-operatio and security among members of clan) गोत्र का अति महत्वपूर्ण कार्य सदस्यों के बीच पारस्परिक सहायता तथा सुरक्षा प्रदान करना है। चूंकि एक ही पूर्वज पर विश्वास होने के कारण गोत्र के सदस्यों के बीच "हम की भावना" तथा भ्रातृभाव होते है, इसलिए वे आवश्यकतानुसार एक-दूसरे की सहायता करने में दिलचस्पी लेते है। गोत्र का प्रत्येक सदस्य अपने गोत्र के दूसरे सदस्यों के प्रति सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक सहायता के लिए आशावान होता है। यदि गोत्र के किसी सदस्य के प्रति कोई दुर्व्यवहार होता है, तो ऐसी स्थिति में गोत्र के अन्य सदस्य उसकी सहायता करने के लिए तत्पर हो जाते है। गोत्र में भ्रातृभाव इतना प्रबल होता है कि अगर गोत्र का कोई सदस्य बीमार पड़ जाता है तो गोत्र के अन्य लोग उसकी देख-रेख तथा चिकित्सा की व्यवस्था करते है। इसी प्रकार अन्य विपत्तियों, दुर्घटनाओं तथा असमर्थताओं के समय गोत्र के लागे गोत्र-सदस्यों को सुरक्षा प्रदान करते है।

4. धार्मिक क्रियायें (Religious activitiesaa) प्रत्येक गोत्र का एक टोटम होता है, जिसकी पूजा तथा अराधना करना गोत्र के सभी सदस्यों का नैतिक कर्तव्य समझा जाता है। गोत्र के पूर्वजों की पूजा करने की परम्परा की वजह से ही गोत्र के मृतक सदस्य देवता तुल्य माने जाते है। टोटम पवित्र होता है, इसलिए उसे मारना या हानि पहुँचाना पाप समझा जाता है। टोटम के प्रति आदर की भावना होने के कारण उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया जाता है। टोटम की तस्वीर घर में लगाये जाने तथा शरीर पर गुदवाये जाने की भी परम्परा का निर्वाह किया जाता है। दुर्खीम ने टोटम को ही धर्म की उत्पत्ति का आधार तथा सामूहिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक माना है। यह एक गोत्र के सदस्यों को नैतिक बन्धन में बाँधता है।

5. प्रशासनिक कार्य (Administrative function) जनजातीय समाज में विभिन्न गोत्रों के नियमों को शामिल कर ही प्रशासनिक नियमों का निर्माण किया जाता है। जनजातीय समुदाय में प्रशासन के संचालन करने वाली परिषद में विभिन्न गोत्र के मुखिया अपने-अपने गोत्र का प्रतिनिधित्व करते है। इसके अलावे प्रत्येक गोत्र की अपनी परिषद होती है। जो गोत्र सम्बन्धी प्रशासनिक कार्यवाही का संचालन करती है। गोत्र परिषद ही सम्पूर्ण समुदाय के लिए प्रथाओं का अनुपालन कराने का कार्य करती है। कई जनजातीय समाजों में तो एक निश्चित गोत्र के सदस्यों द्वारा ही सरकार या राजा का पद संभालने की परम्परा रही है, जबकि अन्य गोत्र के प्रधानों को शासन सम्बन्धी दूसरे कार्यो का सम्पादन का बोझ वहन करना पड़ता है।

6. सम्पत्ति का स्वामित्व (Possesaasion of property) अनेक जनजातीय समाज में गोत्र सम्पत्ति की देख-रेख करने का भी काम करता है। अफ्रीका तथा इंडोनेशिया में यह प्रथा प्रचलित रही हैं गोत्र के खेत, बगीचे या सम्पत्ति होते है, जिसे गोत्र के प्रधान द्वारा गोत्र के प्रत्येक परिवार को उपयोग के लिए दे दिये जाते है। परिवार द्वारा इस भूमि पर खेती किया जाता है, किन्तु परिवार को इस भूमि को बेचने का अधिकार नहीं होता। कई समाजों में एक गोत्र का वंशानुगत व्यवसाय भी होता है।

इस प्रकार जनजातीय समाज में गोत्र एक सशक्त सामाजिक संगठन है, जो अपने सदस्यों को एकता के सूत्र में पिरोकर उनकी सहायता व सुरक्षा करना है। इसके परिणामस्वरूप जनजातीय जीवन की अनेक समस्याओं का एक सुसंगठित हल तलाशना संभव हो पाता है।

भारत के जनजातीय समाज के गोत्र (Clan in Indian Tribal Society)

मजुमदार एवं मदान (1957:113) के अनुसार कुल या गोत्र अधिकांश रूप से कुछ वंशों का एक ऐसा संगठन होता है, जो अपनी उत्पत्ति एक कल्पित पूर्वज से मानते है, जो मानव के समान पशु, पौधा या निर्जीव वस्तु तक हो सकता है। गोत्र एक पक्षीय रक्त सम्बन्धियों का बहिर्विवाही सामाजिक समूह है, जिसके सदस्य अपने आपको एक दूसरे से सम्बन्धित समझते हैं तथा साधारणतया अपनी उत्पत्ति एक काल्पनिक वंशानुक्रम द्वारा किसी सामान्य पूर्वज से मानते है।

भारत की अधिकांश जनजातियों में पितृवंशीय गोत्र पाये जाते है, जिनके अन्तर्गत पुरुष पूर्वज की संतानें सम्मिलित होती है तथा महिलायें विवाह के बाद पति के गोत्र की सदस्या बन जाती है। गोत्र के पूर्वज के रूप में काल्पनिक या वास्तविक मनुष्य, पेड़ या पशु-पक्षी अथवा कोई पदार्थ होते है, जिनके आधार पर गोत्र के नाम भी रखे जाते है। सौरिया पहाड़िया माल पहाड़िया किसान तथा बनजारा को छोड़कर झारखंड की सभी अन्य अनुसूचित जनजातियाँ विभिन्न गोत्रों में विभक्त है।

संथाल जनजाति के बीच कुल 12 पारिस यानि गोत्र पाये जाते है, यथा-हांसदा मुर्मू किसकू हैम्ब्रम, मण्डी,

सोरेन, टुडू, बासके, बेसरा, पौड़िया चोंडे और बेदिया। संथालों में मूल गोत्र प्रथम सात ही माने जाते है, अंतिम पाँच बाद के बताये जाते है, परन्तु सामाजिक दृष्टि से सभी समान होते है। संथालों में समगोत्रीय यौन सम्बन्ध निषिद्ध है। संथालों में पारिस के सिवा डेढ़ दो सौ खूंट उपगोत्र भी पाये जाते है, जो मुख्यतः देवी-देवताओं पूजा-अर्जना से सम्बन्धित होते है।

उराँव जनजाति की सामाजिक बुनावट गोत्र-विभाजन पर आधारित है। इनमें कुछ प्रमुख गोत्र लकड़ा, रूंडा, गाड़ी, बांडी, किसपोट्टा, तिर्की, एक्का, खलखो, लिंडा, मिंज, कुजूर, बेक केरकेट्टा इत्यादि हैं। समगोत्रीय यौन-सम्बन्ध उराँव जनजाति में भी निषिद्ध है।

खड़िया जनजाति तीन प्रकार की होती है-पहाड़ी खड़िया, दूध खड़िया तथा डेलकी खड़िया। पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम तथा मानभूम के पहाड़ो पर रहने वाले पहाड़ी खड़िया में वैवाहिक सम्बन्ध के लिये बहिगोत्रीय व्यवस्था पायी जाती है, परन्तु इनके गोत्रों के नाम दूध और ढेलकी खड़िया के गोत्र के नाम भिन्न होते है। मानभूम के पहाड़ों पर निवास करनेवाली खड़िया जनजाति के बीच गुल्गु भुइइया जारू बध तेसा हेम्बरोम इत्यादि गोत्र पाये जाते है पूर्वी तथा पश्चिमी सिंहभूम के पहाड़ों पर रहने वाली खड़िया जनजाति के बीच छः प्रकार के गोत्र पाये जाते है, वे है-कुलसी, खेलुआ, कुजुर, अगारिया, कुईया या भूइया और गुलु दूध तथा ढेलकी खड़िया के बीच पैत्रक बहिगोत्रीय व्यवस्था पायी जाती है। एक गोत्र के सभी सदस्य यह मानते है कि वे सभी एक उभय पूर्वज की संतान है, एक गोत्र के सभी सदस्य भाई का सम्बन्ध रखते हैं तथा आपस में वैवाहिक तथा यौन सम्बन्ध का निषेध बरतते है। समगोत्र के अनुचित यौन सम्बन्ध की भावना इनमें इतनी प्रबल है कि वे इसे "गोत्र वध" कह कर पुकारते है। ढेलको खड़िया आठ गोत्रों में विभक्त है। इनके नाम क्रमशः मूरू, सोरो, समद या बागे, बारलीहा, जारहाद, हंसदा या दमदत, भाई और टोप्नों है। इसमें भाई और टोप्नों अन्य गोत्रों की अपेक्षा निम्न कोटि के समझे जाते है। इन दोनों गोत्र वालों के द्वारा बनाये हुए भोजन अन्य गोत्र वाले अस्वीकार करते है। सामाजिक श्रेणी में "मुरू" गोत्र का स्थान प्रथम आता है और इनके बाद समद अर्थात् केरकेट्टा का। इन्हीं दोनों गोत्रों के आदमी जातीय प्रमुख समझे जाते है। पंचायत में, जाति सभा में, जन्म और मृत्यु के भोज में प्रायः सभी सार्वजनिक अवसर पर इनकी मान्यता होती है और ये सब पैनदिहा अथवा जल देने वाला कहलाते है। मेरू गोत्र वाले ही सामाजिक भोज के अवसर पर भोजन का पहला ग्रास ग्रहण करते है। इस प्रकार ढेलकी खड़िया के बीच गोत्रीय विभाजन का स्पष्ट स्वरूप देखने को मिलता है। दूख खड़िया के बीच दुमदुम, कुलु, केरकेट्टा बिलुंग सोरेन, बास, टैरू, टोप्पों और कीर नौ प्रकार के गोत्र पाये जाते है। खड़िया जनजाति में निषेध वस्तु को मारना या खाना वर्जित अवश्य है, परन्तु ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं मिलता जिसमें यह कहा जा सके कि इस "निषेध" के प्रति काफी सजग होते है। जब कभी निषेध वस्तुओं को खान का प्रश्न उठता है, वे लोग कोई न कोई तरीका निकाल ही लेते हैं, उदाहरणार्थ दुध खड़िया के "वा" अथवा चावल गोत्र के व्यक्ति चावल नहीं खाते है, ऐसी बात नहीं है। वे सिर्फ माड़ नहीं पीते। उसी तरह "विलुम" और नमक गोत्र वाले कच्चा नमक नहीं खाते, और यदि वे नमक खाते भी है तो दोया उससे अधिक अंगुलियों-को खाते वक्त मुह में रखना जरूरी है।

मुंडा जनजाति अनेक बहिर्विवाही इकाइयों में बटी हुई होती है, जिसे "कीली" कहते है। मुंडा परम्परा के अनुसार एक कीली के सभी सदस्य एक पूर्वज की संतति होते है। जहाँ तक कबीले या कीली का प्रश्न है मुंडा बहिर्विवाही है, परन्तु जहाँ तक उनकी जनजाति का प्रश्न है वे अंतर्विवाही है। मुंडा और किसी

अन्य मुंडाभाषी यथा संथाल, हो खड़िया तथा बिरहोर के बीच संमोदन विवाह नहीं होता। मुंडा जनजाति के बीच कीली का नाम बहुधा पशु अथवा पक्षी या पौधों के नाम पर रखा जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इनके पूर्वजों का देवता वस्तुओं से सम्बन्ध रहा होगा। एक कबीले तथा कीली के सदस्य अपनेको

एक पूर्वज की संतति मानते है। मुंडा जनजाति के बीच बोदरा, भेंगरा, होरो, तिर्की, पूर्ती कडरू, आइन्द, गिरहूल, केरकेट्टा टूटी इत्यादि गोत्र पाये जाते है।

हो जनजाति कई गोत्रों में विभक्त होती है। इन गोत्रों का नाम प्रायः पशु-पक्षी तथा पौधों के नाम पर होता है। इन सबों को टोटम (इट चिन्ह) कहा जाता है। विवाह सम्बन्ध के जो दो मुख्य विचारणीय प्रश्न है, उनमें वस्तुतः कीली का प्रतिबन्ध तथा बहिगोत्रीय का कानून सर्वप्रथम आते है। यह वस्तुतः उनके वैवाहिक सम्बन्ध की आधारभूत शिला होती है। हो जनजाति के बीच सोरेन, पूर्ति देवगम, बोका, हँसदाह, चम्पिया लम्बदार इत्यादि गोत्र पाये जाते है।

बिरहोर जनजाति भी अनेक गोत्रों में बंटा है। प्रत्येक गोत्र का नाम किसी जानवर, पक्षी वृक्ष अथवा कोई अन्य वस्तु या घटना के नाम पर रखा जाता है, जिनमें से कुछ गोत्र इस प्रकार है-इन्दुआर, केरकेट्टा, टोपवार, कछुआ, खेर, लकुरचट्टा मछली, वसवार, थनवर, बराह, कौआ, गिद्ध, तिरीवर, भूईया, हेम्ब्रम, गेरूआ, गुंडरी, केन्दुआ, खड़िया लुडीजाल महली, भुरूम, सिंगपुरिया, सुईया, तोरीयार इत्यादि। बिरहोर अपेन इष्ट चिन्हों को पूज्य मानते है और उनका यह विश्वास है कि वे उनके पूर्वज है। वे उनकी न हत्या करते है और न उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं। विवाहित बिरहोर द्वारा ही पूर्ण रूप से गोत्र सम्बन्धी निषेधाज्ञाओं का पलन किया जाता है। शादी के पश्चात् जब कोई बिरहोर पूर्णरूपेण गोत्र का सदस्य हो जाता है तो उसके लिये अपने इष्ट चिन्ह का हानि पहुँचाना अथवा हत्या करना, अपने गोत्र के किसी सदस्य को हानि पहुँचाने अथवा हत्या करने के बराबर समझा जाता है। औरतों के लिये पति के इष्ट चिन्ह को पहुँचाना अपने पति को हानि पहुँचाने के तुल्य है और उसकी हत्या करना पति की हत्या के समान माना जाता है।

इकाई-5

टोटम एवं टोटमवाद (TOTEMAND TOTEMISM)

हॉबेल के अनुसार "टोटम एक पदार्थ, प्रायः एक पशु अथवा पौधा है, जिसके प्रति एक सामाजिक समूह के सदस्य विशेष श्रद्धाभाव रखते है और यह अनुभव करते है कि उनके और टोटम के बीच भावात्मक समानता का एक विशिष्ट बन्धन है।" टोटम गोत्र के सदस्यों के लिए पूज्यनीय वस्तु होती है, कभी-कभी उसे पूर्वज के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। जब गोत्र के सदस्य टोटम के प्रति अपने विश्वासों और धारणाओं को एक संस्था के रूप में प्रकट करते है तो उसे टोटमवाद कहा जाता है।

फैजर के मतानुसार "टोटम भौतिक वस्तुओं का एक ऐसा वर्ग है जिसके प्रति आदिम लोगों का यह विश्वास होता है कि उसके तथा गोत्र के प्रति व्यक्ति के बीच एक घनिष्ट सम्बन्ध विद्यमान है।"

रेडक्लीफ ब्राउन के शब्दों में "टोटमवाद प्रथाओं एवं विश्वासों का वह समूह है जिसके द्वारा समाज तथा पशु-पौधे एवं अन्य प्राकृतिक वस्तुओं, जो सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण है, के बीच सम्बन्धों की एक विशेष व्यवस्था स्थापित हो जाती है।"

मजुमदार के अनुसार "टोटम वह पेड़, पौधा अथवा पशु है जिसके नाम पर एक जनजाति में कोई गोत्र अपना नामकरण करता है।"

भारत की जनजातियों में टोटम के आधार पर गोत्र का नामकरण होता है। भारतीय जनजातियाँ प्रायः टोटम बहिर्विवाह के नियमों का पालन करती है। भारतीय जनजातियों में टोटम प्राणी को न मारने, उसके मांस न खाने, टोटम पेड़ का फल न खाने, टोटम प्राणी की मृत्यु पर शोक प्रकट करने, टोटम के चित्र को शरीर पर गोदना के रूप में गुदवाने, घर के दीवारों पर उसका चित्र बनाने इत्यादि टोटम सम्बन्धी व्यवहार प्रचलित है। गोत्र के सदस्यों में यह विश्वास पाया जाता है। कि टोटम संकट की घड़ियों में उनकी रक्षा करता

है तथा चेतावनी देता है। पारिस्थिति की संतुलन को बनाये रखने के लिए मनुष्य तथा पर्यावरण के बीच सहानुभूति पूर्वक सम्बन्धों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। एक ही टोटम को मानने वाले लोगों में सामूहिकता, सामुदायिकता एवं भाई-चारे की भावना पायी जाती है। टोटम बहिर्विवाह निकटाभिगमन पर पाबन्दी लगाता है। टोटम के प्रति अज्ञात भय सामूहिक जीवन को नियंत्रित करता है। टोटम के आधार पर ही गोत्र का नामकरण होता है। प्रत्येक टोटमी समूह में टोटम को पूर्वज के रूप में स्वीकार करने से सम्बन्धित अनुश्रुति होती है। टोटम के साथ एक पवित्र तथा अलौकिक सम्बन्ध जोड़ा जाता है। तथ उसके अन्तर्गत अलौकिक शक्ति की कल्पना की जाती है। इस टोटम के आधार पर ही गोत्र का नाम रखा जाता है। उदाहरणार्थ उराँव जनजाति में लकड़ा (शेर), तिर्की (बड़ा चूहा), कच्छप (कछुआ), खाका (कौआ), तिग्गा (बन्दर), कुजा (लता) इत्यादि तथा संथाल जनजाति में हंसदाक् (हंस), मुर्मू (नील गाय) हेमब्रम (सुपारी), बेसरा (बाज), पौड़िया (कबूतर), चोंडे (छिपकली) इत्यादि गोत्रों का नाम गोत्र चिन्ह के आधार पर रखा गया है।

निषेधाज्ञा (TABO0)

टैबू (Taboo) पपोलिनेशिन भाषा से लिया गया शब्द है, जिसका अर्थ होता है निषेध या निषेध करना। पिडिंगटन के अनुसार "टैबू या निषेधाज्ञा एक विशेष प्रकार का निषेध है, जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि यदि इसक उल्लंघन हुआ तो स्वतः ही अलौकिक शक्ति द्वारा अवांछित परिणाम पैदा होगे। भारत की जनजातियों में निषेधाज्ञा एक अलिखित कानून की भांति होता है जिसका पालन करना आवश्यक समझा जाता है।

भारत की जनजातियों में विभिन्न प्रकार की निषेधाज्ञाएँ पायी जाती है। यहाँ की अधिकांश जनजातियाँ गोत्र चिन्हों को पूज्य समझती है तथा वे उनकी न हत्या करते है और न उन्हें कष्ट पहुँचाते है। बिरहोर जनजाति में औरतों के लिए पति के इष्ट चिन्ह को हानि पहुँचाना अपने पति को हानि पहुँचाने के तुल्य माना जाता है तथा उसकी हत्या करना भी पति की हत्या के समान है।

भारत की अधिकांश जनजातियों में एक गोत्र के सभी सदस्य एक पूर्वज की संतति माने जाते है। इसलिए वे अपने गोत्र में शादी नहीं करते, किन्तु जहाँ तक जनजाति का प्रश्न है वे अंतर्विवाही है। इनमें समगोत्रीय यौन-सम्बन्ध निषिद्ध होता है। हो जनजाति की महिलायें न हल छूती है और न हल चलाती है, जबकि संथाल जनजाति की महिलाओं पर मांझीथान (देव स्थल) जाने पर पाबन्दी होती है। मुंडा जनजाति के महिलायें धान नहीं बोती और न ही छप्पर छा सकती है। मुंडा जनजाति में विवाहित बहन को सरहुल पूजा के प्रसाद नहीं दिये जाते, चूँ कि शादी के बाद उसे पति का गोत्र धारण करने के कारण दूसरे गोत्र का. माना जाता है। मुंडा महिलायें दाह संस्कार के समय श्मसान स्थल पर नहीं जाती है। रजस्वला मुंडा महिलाओं के लिए पूजा स्थल तथा पाकशाला में जाना निषेधित होता है।

टैबू को जनजातीय समाज का अलिखित कानून माना गया है। तथा ऐसा विश्वास किया जाता है कि टैबू का जब उल्लंघन होता है तो उल्लंघनकर्ता स्वयं दंडित हो जाता है। अपराधी टैबू तोड़ने से पैदा होने वाली विपत्तियों से भयभीत रहता है। टैबू का उद्देश्य व्यक्ति को समाज के प्रतिमानों तक सीमित रखना है। इसलिए टैबू के तीन उद्देश्य है: उत्पादक, सुरक्षात्मक तथा निषेधात्मक। कृषि क्रियाओं से सम्बन्धित टैबू उत्पादक, स्त्रियों, बच्चों तथा कभी-कभी पुरुषों को कतिपय स्थानों, क्रियाओं एवं पदार्थों से दूर रखने सम्बन्धी टैबु सुरक्षात्मक तथा किसी पुरुष या उससे सम्पर्क सीमित करने जैसा कि मुखिया, पुजारी, जादुगर या रजस्वला स्त्री के साथ होता है, सम्बन्धी टैबू निषेधात्मक होते है। निषेधात्मक टैबू में किसी व्यक्ति को

निषिद्ध इसलिए किया जाता है, ताकि वह दूसरों का हानि पर पहुँचा सके। उत्पादक तथा सुरक्षात्मक टैबू लगभग समान होते है।

युवागृह (Dormitory)

भारत की अनेक जनजातियों के बीच युवागृह का अस्तित्व रहा है। भारत के विभिन्न जनजातियों के बीच युवागृह को भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। मध्य प्रदेश की मुरिया तथा गोंड जनजातियों के बीच इसे "गोटुल" कहा जाता है, जबकि उत्तर प्रदेश को भोटिया जनजाति के बीच इसे "रंग बंग" कहा जाता है। जुआंग जनजाति के बीच इसे "दरबार" तथा भुईयाँ जनजाति के बीच "धनगरबासा" कहा जाता है। असम के कोनयक नागा जनजाति के बीच लड़कों के युवागृह को "मोरूंग" तथा लड़कियों के युवागृह को "यो कहा जाता है, जबकि मेंमी नागा जनजाति के बीच इसे क्रमश: "इखोचय" तथा "इलोमची" के नाम से सम्बोधित किया जाता है। दक्षिण भारत की मुधुबान, मानन तथा पलियान तथा पश्चिम बंगाल व उड़ीसा की जनजातियों के बीच युवागृहों का प्रचलन रहा है। झारखण्ड की असुर, मुंडा तथा हो जनजातियों के "बीच "गीतिओड़ा" बिरहोर जनजाति के बीच "गितिजोरी, सौरिया पहाड़िया जनजाति के बीच "कोहबाह आड़ा", दुध तथा ढेलकी खड़ियां जनजातियों के बीच "गीतिओं" के नाम से जाना जाता था। झारखण्ड की अन्य जनजातियों के युवागृहों की अपेक्षा उराँव जनजाति के बीच पाया जाने वाला युवागृह "धुमकुरिया" अत्यधिक सुसंगठित रूप में पाया जाता था।

युवागृहों की उत्पत्ति के संबंध में मानव वैज्ञानिकों के बीच एक मत नहीं है। हडसन के अनुसार युवागृह सामूहिक गृह का अवशेष है। मानव जीवन के प्रारंभिक स्तर में एक सामान्य सामूहिक गृह होता था, जिसमें सभी लोग एक साथ मिलकर रहा करते थे। धीरे-धीरे लोग विभिन्न परिवारों में विभक्त हो गये, फिर भी सामूहिक गृह का अस्तित्व अन्य रूप में बना रहा और गाँव के सभी परिवार अपने-अपने बच्चों को उसमें रात व्यतीत करने और अपने सामूहिक जीवन की निरन्तरता को बनायें रखने के लिये भेजने लगे। धीरे-धीरे यहा सामूहिक गृह इस समुदाय की प्रथा और परम्पराओं पर आधारित युवक और युवतियों के लिये एक शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। जे. शेक्सपियर की दृष्टि में युवागृहों का निर्माण निकटाभिगमन से बचाव के लिए किया गया तो कुछ अन्य समाज वैज्ञानिकों के अनुसार बच्चों को प्राथमिक संबंधों की अंतरंगता देखने से बचाने के लिए या माता-पिता को सहवास में संलग्न होते समय बच्चों द्वारा देखने जाने से रोकने के लिए। कुछ समाजविदों का मत है कि शिकारी एवं घुमक्कड़ जनजातियों द्वारा जंगली जानवरों तथा बाहरी शत्रु समूहों से रात में सुरक्षा के लिए सभी युवक एवं युवतियों को एक स्थान पर एकत्रित करने के उद्देश्य से ही युवागृह की उत्पत्ति हुई।

एल्विन एवं ग्रिगसन के द्वारा भारतीय युवागृहों के विषय में दिये गये विवरण से पता चलता है कि इसका एकमात्र उद्देश्य सदस्यों के लिए जीवन साथी चुनना तथा उन्हें यौन संबंधी शिक्षा देना है, परंतु हट्टन, मजुमदार, शरत चन्द्र राय इत्यादि ने एल्विन के विचारों को पूर्णरूप से स्वीकार नहीं किया है। इनके अनुसार युवागृह जनजातीय शिक्षा की एक महत्वपूर्ण संस्था रही है, जहाँ पर इसके सदस्यों को सामाजिक आर्थिक व धार्मिक जीवन से संबंधित अनेक कार्यो को भी सिखाया जाता रहा है। जनजातीय अनुशासन, सामाजिक न्याय तथा पारस्परिक उत्तरदायित्व के संबंध में भी यहाँ सदस्यों को शिक्षा दी जाती है, अपराध और दंड की बातें, बुरे कार्यो के परिणाम अदि के विषय में कहानियों द्वारा जानकारी दी जाती है। इसलिए इसे केवल प्रेम और यौन संबंधी कार्य-कलापों का केन्द्र मानना उचित नहीं है।

शरद चन्द्र राय ने झारखंड की उराँव जनजाति की घुमकुरिया के तीन प्रमुख उद्देश्यों का उल्लेख किया है,

जिनसे धुमकुरिया की उत्पति के कारणों का भी पता चलता है। प्रथम ये खाद्य संकलन हेतु प्रभावकारी आर्थिक संगठन का कार्य करते है। द्वितीय, ये युवाओं को इनके सामाजिक एवं अन्य दायित्वों के विषयों में प्रशिक्षित करने के उपयुक्त शिक्षा स्थल का कार्य करते है। तृतीय, ये शिकार को सफलतापूर्वक सम्पादित करने हेतु इनसे संबंधित जादू और धर्म की क्रियाओं के आयोजन और युवकों की प्रत्यक्ष क्षमताओं को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त स्थान होते है।

घुमकुरिया झारखंड की उराँव जनजाति की एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था थी, जो अनौपचारिक रूप से अपने सदस्यों को सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक शिक्षा व प्रशिक्षण देने का कार्य करती थी। इस संस्था का कार्य मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति, संस्कृति का वहन तथा सामाजिक प्रतिमान के प्रतिकूल आरचरण करने वालों के व्यवहार पर नियंत्रण करना था। 1872 ई. में डाल्टन ने उन सभी प्राचीन गाँवों से जहाँ पुरातन प्रथाओं को संरक्षण प्राप्त था, वहाँ घुमकुरिया का अवलोकन किया था, जहाँ गाँव के सभी युवकों के लिए रात में सोना आवश्यक था। युवक तथा युवतियों के लिए अलग-अलग घुमकुरिया को हुआ करते थे। युवकों के धुमकुरिया को जोंख इरपा तथा युवतियों के घुमकुरिया को पेलो इरपा कहा जाता था। गाँवों में पेलो-इरपा संस्थात्मक रूप में नहीं पाया जाता था। एक बुजुर्ग विधवा के नेतृत्व में अविवाहित लड़कियाँ एक अलग मकान में रात्रि व्यतीत करती थी। सच्चिदानन्द को झारखंड के खपिया गाँव के युवक तथा युवतियों के लिए एक सामूहिक शयनागार की जानकारी मिली थी, जिसे जोंक-पेलों, इरपा के नाम से जाना जाता था। छोटा खपिया में जोक-पेलो-इरपा एक विधवा के मकान में अवस्थित था, जबकि बड़ा खपिया में यह एक निजी मकान में चलाया जा रहा था। गाँव के लोग यह नहीं चाहते थे कि युवक-युवतियाँ जोक-पेलों-इस्पा में पूरी रात व्यतीत करें। घुमकुरिया के युवक तथा युवतियाँ शयनागार के आंतरिक तथा गुप्त क्रिया कलापों के विषय में दंडित होने के डर से दूसरों के यहाँ तक कि अपने माता-पिता सभी कुछ कहना चाहते थे। वे नयनागार तथा उसके प्रशासन के प्रति विश्वासी होते थे।

घुमकुरिया की संरचना (Structure of Dhumkuria)

धुमकुरिया प्रायः गाँव के केन्द्र में अखड़ा (नृत्य स्थल) से जुड़ा होता था। डी. एन. मजुमदार के अनुसार बहुत से उराँव गाँवों में धुमकुरिया गाँवों में घुमकुरिया गाँव के केन्द्र में बिना किसी बड़ी सड़क से जुड़ा होता था या गाँव के मुखिया के घर के निकट होता था। धुमकुरिया को जन-बूझकर चारों तरफ से बन्द रखा जाता था तथा केवल रेंगकर आने-जाने के लिए एक छोटा सा सूराख दरबाजे के रूप में होता था। मकान के भीतर अंधेरा होता था, जहाँ अधिकांश समय तक धुंआ भरा होता था। बाहर से भीतर का भाग स्पष्ट नहीं दिखता था।ह लेकिन सीता टोप्पो (1979) ने अपने शोध अन्वेषण के दौरान वैसा एक भी धुमकुरिया नहीं पाया, जिसमें आदमी एक छोटे छेद से रेंगकर प्रवेश करता हो। सीता टोप्पों के अनुसार घुमकुरिया में खिड़कियाँ नहीं पायी गयी, परंतु इसका इसका भीतरी भाग प्रकाश तथा शुद्ध वायु से परिपूर्ण हाता था। उनके अनुसार अधिकांश युवागृहों में बरामदे का अभाव होता था।

धुमकुरिया को तीन स्तरों में विभाजित किया जाता था। उराँव लड़कों को लगभग 10 से 11 वर्ष की आयु में घुमकुरिया में पुना जोंखस के रूप में दाखिल किया जाता था। तीन वर्ष के बाद उनका प्रवेश माझतुरिया जोंखस में हो जाता था तथा तीन वर्ष के बाद पुनः माझतुरिया जोंखस कोहा जोंखस में हो जाता था तथा तीन वर्ष के बाद पुनः माझतुरिया जोंखस कोहा खोंखस के रूप में जाने जाते थे। कोहा जोंखस के रूप में वे तब तक रह जाते थे, जब तक उन्हें एक या बच्चे नहीं हो जाते थे। पुना जोंखस जो नव दीक्षित होते थे, माझतुरिया या कोहा जोंखस के समझा काम-वासना संबंधी बातचीत करने का साहस नहीं करते थे। उनमें अपने बड़ों के प्रति आदर भाव होता था।

जब उराँव बच्चे छः सात वर्ष के हो जाते थे तो उनके माता-पिता तथा परिवार के अन्य बड़े-बुजुर्ग उनपर ध्यान न दे पाते थे, क्योंकि उस समय तक परिवार में दूसरा बच्चा आ जाता था, जिसें लाड़-प्यार की अधिक आवश्यकता होती थी। तब उपेक्षित बच्चा नव शिशु से ईर्ष्या व भोजन तथा पेय के लिए झगड़ना प्रारम्भ कर देता था। वह निरंतर अपनी माँ को चिढ़ाया करता था तथा बदले में माँ को डॉट-डपट सुनने को बाध्य हो जाया करता था, जब यह स्थिति पनपती थी जो उसके माता-पिता प्रायः धुमकुरिया में उसकी दाखला दिला देना चाहते थे।

प्रति वर्ष माघ पूर्णिमा के अवसर पर घुमकुरिया में नये सदस्यों का दाखिला घुमकुरिया के धांगर महतो द्वारा किया जाता था। माघ पूर्णिमा के शुभ अवसर पर धांगर महतों जिन परिवारों के लड़कों को धुमकुरिया में दाखिला लेना होता था उनके दरवाजे पर एक हल रख देता था। लड़के के माता-पिता को धुमकुरिया को शुल्क के रूप में करंज का बीज तथा चटाई बनाने के लिए खजूर की पत्तियाँ देनी पड़ती थी। इस प्रकार धुमकुरिया में लड़के को प्रवेश मिल जाता था।

धुमकुरिया में उराँव बच्चे पूना जोंखस के रूप में बाल्य काल के उत्तरार्द्ध में प्रवेश करते थे। सभी बच्चे एक ही गाँव के होते थे, इसलिए वे एक-दूसरे के लिए अजनवी नहीं होते थे। धांगर महतो, माझतुरिया एवं कोहा जोंखस भी उनके लिए अपरिचित नहीं होते थे सभी पुना जोखंस का एक नेता होता था, किन्तु पुना जोंखस धीरे-धीरे चार-पाँच लड़कों का एक समूह बना लेते थे तथा प्रत्येक समूह के अन्तर्गत एक समूह नेता का चुनाव कर लिया जाता था। समूह के प्रत्येक सदस्य एक साथ रहना तथा काम करना पसन्द करते थे जिसके कारण उनमें परस्पर सहानुभूति की भावना रहती थी। जब कोई पुना जोंखस बीमार पड़ता था तो उस समूह के अन्य सदस्य उसकी देखभाल तथा दवा के व्यवस्था करते थे। वैद्यों के कहने के अनुसार वे जंगलों तथा बाजारों से जड़ी-बूटी तथा अन्य दवाओं की व्यवस्था किया करते थे। जब उराँव बच्चे पुना जोंखस के रूप में धुमकुरिया में प्रवेश करते थे तो अनुदेशन तथा अनुकरण की प्रक्रिया से अपनी सांस्कृतिक प्रतिमानों को सीखा करते थे। माझतुरिया तथा कोहा जोंखस पुना जोंखसो को ऐसा करो, ऐसा नहीं करो, प्रशंसा तथा भर्त्सना के रूप में पुरस्कार तथा दण्ड देकर सांस्कृतिक प्रतिानों की दीक्षा देते थे। माझतुरिया ता कोहा जोंखस नवदीक्षित पुना जोंखस पर निगरानी रखते थे। पुना जोखस को अपने से बड़े लोगों की सेवा करनी पड़ती थी, उसकी आज्ञा का पालन पड़ता था, शरीर की मालिस करनी पड़ती थी, उनके बाल झाड़ने पड़ते थे तथा आग के लिए लकडियों एकत्रित करनी पड़ती थी तथा दीप जलाने के लिए करंज के बीज से तेल निकालना पड़ता था। रात में उन्हें सभी सदस्यों के साने के लिए चटाई बिछानी पड़ती थी। यदि वे ये सब काम नहीं करते तो उन्हें दंडित किया जाता था। प्रायः उन्हें दण्ड कठिन शारीरिक श्रम के रूप में दी जाती थी-दिनभर उन्हें लकड़ियाँ काटनी पड़ती थी।

या दिन भर खेतों की सिंचाई करनी होती थी या कुएं से दिनभर पानी खीचना पड़ता था। उसका सामाजिक बहिष्कार भी किया जाता था तथा निश्चित दिनों तक अखड़ा में नृत्य में भाग लेने से मनाही कर दी जाती थी। कभी-कभी अत्यंत ही बड़ी गलती करने पर उनकी पिटाई भी की जाती थी।

अनुदेशन के अलावे अनुकरण के माध्यम की भी घुमकुरिया में संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती थीं। धूमकुरिया में नवदीति बालक देखता था कि अन्य पुना जोखस वर्षो से यहाँ चटाई बिछाने, दीप जलाने इत्यादि काम करते आ रहे है तो वे स्वयं उनका अनुकरण करना प्रारंभ कर देते थे। जब उनसे कोई गलती होती थी तो दूसरों द्वारा सुधार कर दिया जाता था। वास्तव में सभी परम्परायें अनुकरण के आधार पर अस्तित्व में होती है। प्रत्येक पीढ़ी अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी की परम्पराओं को स्वीकार कर अपना बना लेती है।

जब उराँव पुना जोखस से माझतुरिया जोखस का दर्जा प्राप्त करते थे तो उनकी आयु लगभग 14 वर्ष की होती थी। यह उनकी किशोरावस्था के प्रारंभिक काल होते थे। समाज वैज्ञानिकों ने इस अवस्था को अत्यंत ही नाजुक काल माना है। माझतुरिया जोखस के पुना जोखस के रूप में तीन वर्ष से अधिक समय तक घुमकुरिया में रहने के कारण यहाँ की सभी गतिविधियों से परिचित हो जाते थे। वह पुना जोखस आदेश देने तथा कोहा जोंखस से आदेश लेने की स्थिति में होते थे। यह प्रक्रिया उनके परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप संतुलित व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होती थी। व विकसित समाज के किशोरों जैसा तनाव तथा दबाव से ग्रसित नहीं हुआ करते थे। किशोरावस्था होने के काण विपरीत लिंग के प्रति उनमें आकर्षण होता था। 17-18 वर्ष की आयु में माझतुरिया जख्स कोहा जोखस का पद प्राप्त कर लेते थे, जो धुमकुरिया का सबसे ऊँचा पद होता था। धांगर महतो समस्त घुमकुरिया का प्रधान होता था तथा उसके बाद कोतवार का स्थान होता था। धांगर महतों की शादी हो जाती थी और वह घुमकुरिया छोड देता था। तो कोतवार को ही सामान्यतया धांगर महतों के रूप में चयन किया जाता था तथा वह अन्य सदस्यों के साथ दूसरे कोतवार का चुनाव करता था। कोहा जोखस अपनी गतिविधियों में ज्यादा उन्मुक्त होते थे। वह केवल धांगर महतो, कोतवार तथा पंचों से ही डरते थे जो धुमकुरिया के सभी सदस्यों पर निगरानी रखते थे। धुमकुरिया के पंचगण गाँव के बुजुर्ग व्यक्ति हुआ करते थे, जो धुमकुरिया के सदस्यों को माता-पिता तथा अभिभावक होते थे। इस प्रकार ग्राम के बुजुर्ग व्यक्ति धुमकुरिया के प्रशासन तथा गतिविधियों को परोक्ष रूप से नियंत्रित किया करते थे। लड़कियाँ खजूर की पत्तियों से चटाई बनाया करती थी। कोहा जोंखस लड़कियों के साथ भी धुमा करते थे। उनपर केवल इतना ही प्रतिबन्ध होता था कि वे अपने गाँव तथा गोत्र की लड़कियों के साथ प्रेम संबंध स्थापित न कर सके। कोहा जोंखस साहसी होते थे।

घुमकुरिया के प्रकार्य (Function of Dhumkuria)

गाँव में शादी-विवाह के अवसर पर धुमकुरिया के युवक तथा युवतियाँ विवाह समारोह को व्यवस्थित करने में सहायता करते थे। फसल रोपने तथा काटने के समय भी घुमकुरिया के युवक तथा युवतियाँ ग्रामवासियों की सहायता किया करते थे। वे घर बनाते, कुँआ खोदते तथा खेती लायक जमीन तैयार करते समय भी गाँववालों की सहायता किया करते थे। गाँव वाले जब भी धांगर महतों तथा कोतवार से सहायता माँगते, वे धुमकुरिया के खास सदस्यों को उनकी सहायता के लिए निर्देश देते थे। बदले में ग्रामवासी काम करने वाले सदस्यों को भोजन तथा घुमकुरिया में दीप जलाने के लिए करंज का बीज का या तेल तथा जाड़े के मौसम में जलाने के लए लकड़ियाँ दे दिया करते थे। घुमकुरिया उराँव युवकों के लिए रात्रि विश्रामशाला के रूप में प्रयोग किया जाता था। वर्षो तक रात में साथ-साथ रहने तथा सोने के कारण उनके बीच भाई-चारे का संबंध पनप जाता था। धुमकुरिया के युवक-युवतियाँ जतरा के अवसर पर नृत्य तथा संगीत में दूसरे परहा के लोगों के साथ प्रतियोगिता किया करते थे। समय-समय पर घुमकुरिया के युवक तथा युवतियों भेंयरी जमाव में हिस्सा लेते थे, जो एक अंतर-ग्राम्य जमाव हुआ करता था, जिसके माध्यम से वे लोग पड़ोस के गाँवों से अच्छा संबंध बनाया करते थे। यह एक औपचारिक मुलाकात होती थी, जिसके तहत वे लोग अपने-अपने झंडे लेकरनाचते-गाते तथा ढोल बजाते एक दूसरे से मिलते थे। इस अवसर पर मेंजवान युवक तथा युवतियों संगीत बजाते हुए आगंतुकों की आगवानी करते तथा उनपर अरवा चावल झिड़कते तथा आम की टहनी से पानी झिड़ककर पानी से भरा हुआ उन्हें एक बरतन प्रदान करते। आगंतुकों का पैर भी धोया जाता। इस औपचारिकता के बाद वे लोग एक-दूसरे से मित्रता के सूत्र में बंध जाते। तत्पश्चात् वे एक साथ मिलकर नाचते-गाते तथा प्राति मोज में साथ-साथ भाग लेते। यह उनके आपसी सहयोग की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करता तथा यह साहचर्य उनके सामूहिक जीवन को जीवन्त तथा ठोस बनाने में सहायता करता।

इस प्रकार के औपचारिक मिलन से परहा के लोगों की भावना पनपती तथा आपसी सद्भाव जागृत होता।

शरत चन्द्र राय ने घुमकुरिया के युवक-युवतियों द्वारा मुत्री-चान्दी नामक धर्मानुष्ठान सम्पादित किये जाने की चर्चा की है। तीन रात तक अविवाहित युवक तथा युवतियाँ अखड़ा में नाचते रहते। नाचते समय युवक युवतियों के बिरियों (कान में पहने जाने वाला जेवर) चुराने का प्रयास करते। युवतियों द्वारा यह अधिकतम प्रयास किया जाता कि उनके बिरियों की चोरी न हो। फिर भी कुछ युवक बिरियों चुराने में सफल हो जाते। चौथे दिन शाम में युवक मुत्री चान्दी के पास जाते जो एक वृक्ष के नीचे आधा गाड़ा गया पत्थर होता। एक युवक उस पत्थर के सामने एक गढ़्ढा खोदता तथा एक काली मुर्गी की बलि चढ़ाता। वह उस मुर्गी के कटे हुए सिर, खून तथा चुराया गया बिरियों को एक साथ उस गढ़्ढे में रख देता। इसके बाद इस गढ़्ढे में सभी युवक पेशाब कर देते तथा मिट्टी से भर देते। ऐसा करते समय सभी युवक अपनी बोली में चिल्लकार कहते ''लड़कियों की संख्या घटे तथा लड़कों की संख्या बढ़े। वे ऐसा सोचा करते थे कि बिरियों लड़कियों की संख्या का प्रतिनिधित्व करता है तथा बिरियों को गाड़कर वे लड़कियों की जनसंख्या को बर्बाद कर रहे है। शरत चन्द्र राय के अनुसार इस धर्मानुष्ठान में स्त्रियों की जनसंख्या घटाने तथा युवकों की प्रजनन शक्ति को बढ़ाने के लिए ऐंद्रजालिक शक्ति निहित होती थी ताकि जनजातीय समुदाय में उन्हे अपरिमित रूप से घर बसाने योग्य बनाया जा सके।

धुमकुरिया में बहुत कड़ा अनुशासन हुआ करता था। धुमंकुरिया के नियमों की अवहेलना करने वाले सदस्यों को घांगर महतो कड़ी सजा देता था। वह उनके पैरों पर तब तक मारता रहता तथा वे पीड़ा से चिल्लाते रहते जब तक वे फिर गलती न करने की प्रतिति करते। उन्हें खींचकर कभी-कभी किसी खम्भे से बाँध दिया जाता था। अगर कोई लड़का अपना विस्तार गीला कर देता तो उसे जमीन में गाड़े गये कील को दाँत से निकालना पड़ता। जो लड़के नृत्य में भाग लेने से चूक जाते उन्हें एक पत्थर के खंभे में बांस के दो टुकड़ों से उनके पैरों से कसकर बाँध दिया जाता और छलांग लगाना पड़ता। लेकिन धीरे-धीरे घुमकुरिया में दिये जाने वाली सजा को उदार बना दिया गया। बाद में वहाँ शारीरिक दंड पर ज्यादा जोर नहीं दिया जाने लगा। अपराध करने वालों को सूचित कर दिया जाता था तथा उन्हें सामूहिक नृत्य, भोजों तथा अन्य समारोहों में भाग लेने से वंचित कर दिया जाता था।

धुमकुरिया का उपयोग अतिथिशाला के रूप में भी किया जाता था। उन अतिथियों को जिन्हें जवान के घर में ठहरने के लिए जगह की कमी होती थी, उन्हें घुमकुरिया में रात व्यतीत करने के लिए जगह दो जाती थी। धार्मिक तथा अर्द्ध-धार्मिक वस्तुयें घुमकुरिया में ही संग्रहित किये जाते। गाँव के प्रतीक को भी धुमकुरिया में ही रखा जाता था। वे लोग इस ग्राम प्रतीक को धार्मिक मेलों तथा जतरा के अवसर पर काफी धूमधाम से प्रदर्शित करने के लि. ले जाते। यह प्रतीक लकड़ी के बने घोड़ा, ऊँट, हाथी, मछली, घड़ियाल, ढोल छाता इत्यादि होते। प्रत्येक गाँव का अपना एक प्रतीक होता था।

युवकों के शयनागार ''जोंख इरपा'' की तुलना में युवतियों के शयनागार ''पेलो इरपा'' की संख्या कम हुआ करती थी। अधिकांश गाँवों में ''पेला इरपा'' गुप्त रखा जाता था तथा बाहरी लोग इसके विषय में नहीं जान पाते थे। लेकिन ''जोख इरमा'' के सदस्य अपने पड़ोस के सभी गाँवों में स्थित मेलो-इरपा के विषय में जानकारी रखते थे। पेलो-इरपा मुखिया को ''पेलो-कोतवार'' कहा जाता था, जो बहुधा गाँव का एक बुजुर्ग उराँव, पुरुष हुआ करता था। ''पेलो इरपा'' की एक वरीय युवती को उनके नेता के रूप में चयन किया जाता, जिसे बड़का धाँगरिन कहा जाता था। यद्यपि वह सिद्धांततः पेलो-कोतवार के अधीन होती, किन्तु वह शयनागर की लड़कियों का नियंत्रित करतो, उन्हें निर्देशित करती तथा स्वतंत्र रूप से कोई निर्णय लेती थी। जोंख-इरपा की तरह पेलो-इरपा में भी लड़कियाँ तीन स्तरों में बँटी होती थी।

जख इरपा तथा पेलो-इरमा के क्रिया कलापों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि धूमकुरिया नृत्य एवं संगीत, ललित कला, व्यक्तित्व निर्माण, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक शिक्षा, प्रेम तथा यौन शिक्षा का एक महत्वपूर्ण परम्परागत प्रशिक्षण केन्द्र था, जिसका जनजातीय युवक-युवतियों के व्यक्तित्व को उनकी सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप ढालने में महत्वपूर्ण योगदान था।

धूमकुरिया का विघटन (Disorganization of Dhumkuria)

वर्तमान समय में धूमकुरिया बिल्कुल ही विलुप्त हो गया है। किसी-किसी गाँव में घुमकुरिया (मकान) के अवशेष मात्र बचे है, जिसके अन्तर्गत पहले जैसे क्रिया-कलाप नहीं होते है। उराँव जनजाति के बीच उत्पन्न संस्कृति-संक्रमण की प्रक्रिया ने धूमकुरिया को काफी नुकसान पहुँचाया है। ईसाई मिशनरियाँ भी धुमकुरिया की गतिविधियों की आलोचक रहीं है। ईसाई उराँव को अपना सदस्य नहीं बनाया करता था। जनजातीय गाँवों में सरकार, आदिम जाति सेवा मंडल तथा अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा विद्यालय खोले जाने के कारण भी धुमकुरिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इन गाँवों में अधिकांश विद्यालय जाने वाले जनजातीय बच्चे धुमकुरिया जाना छोड़ दिये। गैर जनजातीय शिक्षक भी घुमकुरिया के क्रिया-कलापों को अनैतिक तथा बुरा समझकर उन्हें हतोत्साहित किया करते थे। सामाजिक शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत रात्रि पाठशाला जाने वाले छात्र-छात्रायें भी धुमकुरिया में नहीं जा पाते थे। आजीविका की तलाश में युवक-युवतियों के असम तथा बंगाल के चाय बगानों में पलायन कर जाने के कारण भी घुमकुरिया में उपस्थिति घटने लगी थी। बाहरी गैर-जनजातियों के संपर्क में आने के कारण उराँव जनजातियों में घुमकुरिया के प्रति हीन भावना पनपने लगी थी, चूँकि गैर जनजातीय लागे धुमकुरिया को नीची दृष्टि से देखा करते थे। जनजातीय गाँवों में पनपी गुटबंदियाँ भी घुमकुरिया को कमजोर बना दिया। इस प्रकार झारखंड के जनजातीय क्षेत्र के बदलते हुए सांस्कृतिक परिवेश में घुमकुरिया अपने अस्तित्व को कायम नहीं रख सका।

अभ्यास-प्रश्न

1. जनजातीय सामाजिक संस्थाओं जैसे परिवार विवाह इत्यादि पर निबंध लिखें।
2. जनजातीय विवाह एव विवाह संबंधी निषेध पर विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करें।
3. जनजातीय समाज में विवाह के कितने प्रकार होते हैं। स्पष्ट करें।
4. जनजातीय समाज में नातेदारी किस संवर्गो में विभाजित होती है? व्याख्या करें।
5. नातेदारी की भूमिका और महत्व पर प्रकाश डालें। नातेदारी के नियामक व्यवहार एवं रीतियों का वर्णन करें।
6. गोत्र क्या है? इसके कितने प्रकार होते है? इसकी क्या विशेषताएं है।
7. गोत्र के क्या कार्य होते हैं? भारत के जनजातीय समाज में गोत्र की भूमिका का वर्णन करें।

NOTES

bdkÃ&6
vkfnokl h vkfFkd 0;oLFkk

tutkrh; vFk0;oLFkkvk dh fo'k"krk vkerkj ij fuokg [krh] çk—frd l l k/kuk ij fuHkjrk] l jy çk|kfxdh] rFkk Hkfe vkj lenk; d l kFk etcr lc/k gkrh g] ftle vDl j ckτkj&lpkfyr ykHk d ctk; ikjLifjd fofue; ij /;ku fn;k tkrk gA

tutkrh; vFk0;oLFkk, vDl j 0;kikj ;k ckτkj fofue; d fy, vf/k'k"k ink dju d ctk; viu lenk; dh t:jrk dk ijk dju d fy, i;klr mRiknu dk çkFkfedrk nrh gA

आर्थिक संगठन हमें सभी प्रकार के समाज में देखने को मिलते है, यद्यपि प्रत्येक समाज में उत्पादन, उपभोग, वितरण की संस्थाओं, मूल्य एवं तरीकों में भिन्नता पायी जाती है। मानवी आदिम लोगों के आर्थिक संगठनों का अध्ययन करके आर्थिक इतिहास, आर्थिक व्यवहारों एवं सार्वभौतिम आर्थिक तत्वों को ज्ञात करते हैं। फर्थ की मान्यता है कि आर्थिक संगठन एक प्रकार की सामाजिक क्रिया को मानव जीवन के अन्य कार्यों से पृथक् करके नहीं देख सकते। उत्पादन, विनिमय, उपभोग एवं सम्पति सभी सामाजिक संगठन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। समाज व्यवस्था की भिन्नता के साथ अर्थ-व्यवस्थाओं में भी भिन्नता देखने को मिलती है। मनुष्य की तीन प्रमुख आवश्यकताएं है-भोजन, वस्त्र और निवास। इनमें भोजन की आवश्यकता मूल है जिसकी पूर्ति के लिए वह अपने भौगोलिक पर्यावरण से अनुकूलन करता है और उसी के अनुरूप संस्कृति के भौतिक तत्वों का निर्माण करता है। संस्कृति और भौगोलिक पर्यावरण का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य का आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन बहुत कुछ पर्यावरण से प्रभावित होता होता है। उसके अपनी संस्कृति के सहारे प्रकृति से अनुकूलन स्थापित किया है। संस्कृति के बलबूते पर ही उसने प्राकृतिक स्त्रोती का दोहन (Exploitation) किया है जिसने आर्थिक संगठन को जन्म दिया है। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था संस्कृति व पर्यावरण की अन्तःक्रिया का परिणाम है। आदिम समाजों का संगठन आधुनिक समाजों से भिन्न है। उनके अधिकांश आर्थिक प्रयत्न भोजन उत्पादन को लेकर ही किये जाते है जो भौगोलिक पर्यावरण पर अत्यधिक निर्भर है। इसके लिए उन्हें कठोर परिश्रम और प्रकृति से संघर्ष करना पड़ता है। फिर भी उनमें निश्चितता एवं सुरक्षा का अभाव होता है। वहां व्यक्तिगत रूप से आर्थिक प्रयत्न कम ही किये जाते है। अधिकांशतः पारिवारिक एवं सामूहिक आधार पर ही उत्पादन के प्रयत्न होते है। वर्तमान अर्थ-व्यवस्था आदिम अर्थ-व्यवस्था का ही विकसित रूप है। वर्तमान को जानने के लिए भूतकाल का सहारा लिया जाता है। आज के मानवशास्त्री आदिम अर्थ-व्यवस्था में अधिक रुचि रखने लगे है। हरस्कोविट्स ने तो आर्थिक मानवशास्त्र (Economic Anthropology) की नयी शाखा का भी श्रीगणेश किया है। आदिम अर्थ-व्यवस्था की विशेषताओं का उल्लेख करने से पूर्व हम यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि अर्थ-व्यवस्था किसे कहते हैं।

अर्थ-व्यवस्था का अर्थ एवं परिभाषा (MEANING AND DEFINITION OF ECONOMY)

शारीरिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिए मनुष्य अपनी तीन मूलभूत आवश्यकताओं जिन्हें कार्ल मार्क्स (Karl Marx) जीवन के आवश्यक भौतिक मूल्य कहता है, को जुटाने के लिए प्रयत्न करता है। ये मूलभूत आवश्यकताएं है-भोजन वस्त्र और निवास। बिना इनको प्राप्त किये मनुष्य का जीवित रहना कठिन हो

जायेगा और उसका सामाजिक जीवन भी खतरे में पड़ जायेगा। इन आवश्यकता की पूर्ति के दौरान उसके द्वारा किये जाने वाले प्रयत्न अर्थ-व्यवस्था को जन्म देते है। वह उत्पादन करता है। और उत्पादित वस्तु का उपभोग भी, परन्तु उत्पादन का कार्य सदैव अकेला व्यक्ति ही नहीं करता वरन् इसमें अन्य लोगों के सहयोग की आवश्यकता भी होती है। उत्पादन में भाग देने वालों में भी उत्पादित वस्तु या श्रम के मूल्य का वितरण करना पड़ता है। सभी वस्तुओं का उत्पादन भी एक या कुछ व्यक्तियों द्वारा नहीं होता। अतः वह अपने द्वारा उत्पादित वस्तु दूसरे लोगों को देकर उसके बदले में दूसरी वस्तु लेता है, तो विनिमय प्रारम्भ होता है। इस प्रकार उत्पादन, उपभोग, विनिमय तथा वितरण मिलकर मनुष्य के आर्थिक जीवन को क्रियाशील बनाते है और एक अर्थ-व्यवस्था को जन्म देते हैं।

पिडिंगटन अर्थ-व्यवस्था की परिभाषा करते हुए लिखते है कि "आर्थिक प्रणाली लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए, उत्पादन की व्यवस्था, वितरण पर नियन्त्रण तथा समुदाय में स्वामित्व के अधिकारों एवं दावों को निर्धारित करती है।"

बील्स तथा हॉईजर के मतानुसार, "आर्थिक संगठनव्यवहारों के प्रतिमान है तथा समाज का वह परिणामस्वरूप संगठन है जो कि वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण तथा उपभोग से सम्बन्धित है।"

बोहनन के अनुसार, सामाजिक समूहों और मानवों की भौतिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करेन के लिए स्रोतो, प्रविधि और कार्य को संगठित करने का जो तरीका है उसे ही हम एक अर्थ-व्यवस्था कह सकते है।

लूसी मेंयर के अनुसार, "अर्थ-व्यवस्था का सम्बन्ध उन कार्य-कलापों से हैं, जिनसे लोग अपने साधनों भौतिक और अभौतिक दोनों की व्यवस्था करते हैं और उनके विभिन्न उपयोगों में से कुछ को चुनते है ताकि प्रतिद्वन्द्वी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सीमित साधनों का आवंटन किया जा सके।"

लघु समाजों की अर्थ-व्यवस्था के प्रसिद्ध अध्ययनकर्ता रेमण्ड Raymond Firth) लिखते हैं कि "यह मानव कार्य-कलापों का वह विस्तृत क्षेत्र है, जिसका सम्बन्ध साधनों के परिसीमित उपयोग और संगठन से है। इस प्रकार मनुष्य विवेक द्वारा आवश्यकताओं से तारतम्य स्थापित करता है।"

मजूमदार एवं मदान के शब्दों में, जीवन की दिन-प्रतिदिन की अधिकाधित आवश्यकताओं को कम से कम परिश्रम से पूरा करने हेतु मानव सम्बन्धों तथा प्रयत्नों को नियमित एवं संगठित करना ही अर्थ-व्यवस्था है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मनुष्य को जीवित रहने के लिए अपने विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ता है। इसके लिए उसे कुछ प्रयत्न करने पड़ते है। प्रयत्नों के दौरान वह अनेक साधनों का प्रयोग करता है। ये साधन क्या होंगे-यह प्रकृति पर्यावरण एवं संस्कृति दोनों ही के द्वारा निर्धारित होते है। आस्ट्रेलियन जनजातियां और केलिफोर्निया के इण्डियन आखेट और जंगली फल-फूल के द्वारा ही जीवन निर्वाह करते है। उन्हें पशु-पालन या कृषि का ज्ञान नहीं है। पश्चिमी सूडान के वेदूइन अरब पशुपालन करते है। इस प्रकार पर्यावरण में अर्थ-व्यवस्था को निर्धारित किया है, दूसरी ओर संस्कृति भी आर्थिक संगठन को प्रभावित करती है। एक ही भौगोलिक पर्यावरण में रहने वाले दक्षिणी अफ्रीका के बुशमैन और हाटेनॅाट की अर्थ-व्यवस्था भिन्न-भिन्न है। भारत में नीलगिरि की पहाड़ियों पर रहने वाले टोडा भैस पालन करते है तो कोटा बांस व बेंत की वस्तुएं बनाकर जीवन यापन करते है।

स्पष्ट है कि प्रकृति एवं संस्कृति ने मानव के भौतिक साधनों को निश्चित किया है। ये साधन भी मानव के पास सीमित है और उसकी आवश्यकताएं अनन्त है, किन्तु किन आवश्यकताओं की पूर्ति वह पहले करेगा, किनकों कुछ समय के लिए स्थगित करेगा, व भविष्य में पूरी होने के लिए छोड़ देगा, इसका निर्धारण मानव

अपने विवेक एवं साधनों की उपलब्धि के आधार पर ही करता है। उपभोग, विनिमय उत्पादन और वितरण की प्रक्रियाएं भी पर्यावरण एवं संस्कृति दोनों के ही द्वारा निर्धारित होती है और ये सब मिलकर मानव के आर्थिक संगठन को जन्म देती हैं।

NOTES

इस प्रकार हम कह सकते है कि मनुष्य की अनुकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव पर्यावरण कादोहन करता है और दोहन के साधन उसे अपनी संस्कृति से ही प्राप्त होते है। इस प्रकार पर्यावरण एवं संस्कृति की अन्तःक्रिया ही आर्थिक संगठन को जन्म देती हैं। वर्तमान समय में मानव ने अद्वितीय वैज्ञानिक प्रगति की है और भौगोलिक पर्यावरण की सीमा को लांघा है। आज वह एक ही पर्यावरण में अनेक अर्थ-व्यवस्थाओं एवं व्यवसायों को एक साथ पनपा रहा है, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि आदिम अर्थ-व्यवस्था का प्रकृति से आज भी वनिष्ठ सम्बन्ध है। आदिम लोगों की अर्थ-व्यवस्था आधुनि क मानव की अर्थ-व्यवस्था से भिन्न है। हम यहां उनकी अर्थ-व्यवस्था की विशेषताओं का उल्लेख करेगें ताकि यह भेद और भी स्पष्ट हो सके।

आदिम अर्थ-व्यवस्था की विशेषताएँ (CHARACTERISTICS OF PRIMITIVE ECONOMY)

आदिम समाजों में आर्थिक क्रियाएं प्रमुख रूप से शारीरिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिए ही की जाती है। अतः उनकी अर्थ-व्यवस्था को निर्वाह अर्थ-व्यवस्था (Subsistence economy) कह सकते है। उनकी मुख्य समस्या उदरपूर्ति और जीवित रहने की है। इसके लिए उन्हें प्रकृति से संघर्षरत रहना होता है। हमारी तरह उनमें उत्पादन एवं उपभोग करने वाले स्पष्टतः भिन्न-भिन्न समूह नहीं है। वहां परिवार उत्पादन एवं उपभोग करने वाली इकाई है। परिवार ही अर्थ-व्यवस्था का मूल आधार है। आधुनिक अर्थ-व्यवस्था की तरह उनमें नियोजित अर्थ व्यवस्था का मूल आधार है। आधुनिक अर्थ-व्यवस्था की तरह उनमें नियोजित अर्थ-व्यवस्था नहीं होती। संक्षेप में, आदिम अर्थ-व्यवस्था की मूल विशेषताएं इस प्रकार है:

(1) इनका तकनीकी ज्ञान और स्तर बहुत निम्न है। अनुकूल जलवायु, वनस्पति और प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता होने पर भी साधनों क सीमितता के कारण एवं ज्ञान के अभाव के जाल व फंदे से ही वे अपना उत्पादन कर लेते है। में लोग भरण-पोषण की न्यूनतम आवश्यकताएं भी काफी कठिनाई से पूरी कर पाते है। प्रतिदिन या मौसम भर खाद्य-संग्रह में लगे रहना, अधिकांश समय कठिनाई का सामाना करना और भूख के खतरे का बना रहना, आदि आदिम अर्थ-व्यवस्था के लक्षण हैं।

(2) ये लोग भविष्य के लिए बचाकर रखने या संग्रह करने की प्रवृत्ति से मुक्त है। यदि वे कुछ एकत्रित भी करते है तो उसे लम्बे समय तक सुरक्षित रखना नहीं जानते। उत्तरी रोडेशिया की बेम्बा जाति फल और अनाज जमा कर लेती है, परन्तु गर्मी, नमी और दीमक उन्हें नष्ट कर देते है। टिकोपिया के लोग मछली साफ करना नहीं जानते थे। पशुपालक अपने पशुओं की रक्षा रोगों से नहीं कर पाते। उत्पादन में भावी जरूरतों पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। अतः संग्रह की कठिनाई आती. है। अधिकांशतः साधनों के अभाव के कारण वे अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति सीमित मात्रा में ही कर पाते हैं। एस्मिों लोग सील मछली का मांस खाते है, उसकी चर्बी से ईंधन और रोशनी का काम लेते है, चमड़े से वस्त्र एवं तम्बू बनाते है। सील मछली की मांसपेशियां धागे का काम देती है और हड्डिया औजार बनाने का। दक्षिणी सूडान के पशु-पालक न्यूर (Neur) पशुओं की सहायता से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। थोड़े से आर्थिक साधनों पर अत्यधिक बल देने के कारण आर्थिक विकास ठीक से नहीं हो पाता।

NOTES

(3) यातायात के साधनों के अभाव के कारण अनाज और वस्तुओं के संग्रह में तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान को ले जाने में बड़ी कठिनाई होती है। अतः इनकी आर्थिक क्रियाएं एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक ही सीमित रहती है और एक लघु क्षेत्र से बाहर इनके आर्थिक ढांचे का विस्तार नहीं हो पाता।

(4) इन लोगों में आधुनिक समाजों की तरह मुद्रा और बाजार की व्यवस्था नहीं है। और न ही बैंक और साख, आदि की सुविधाएं है। अधिकांशतः उनका विनिमय वस्तु विनिमय के रूप में ही प्रचलित है। इसलिए उनमें व्यापारी, दलाल, प्रतियोगिता व एकाधिकार, आदि का अभाव होता है।

(5) आदिम समाजों में मुनाफाखोरी को प्रवृत्ति नहीं पायी जाती क्योकि अधिकांशतः उत्पादन सामूहिक रूप से होता है। वे पारस्परिक दायित्वों एवं सामूहिकता की भावना से बंधे होते है। अतः वे एक-दूसरे से मुनाफा लेने की बात नहीं सोचते।

(6) उत्पादन व वितरण की तुलना में विनिमय पर कम बल दिया जाता है क्योंकि सामूहिक रूप से जो कुछ उत्पादन किया जाता है उसका समान वितरण कर दिया जाता है। इनमें उत्पादन बिक्री के लिए नहीं किया जाता है। बचत कम ही हो पाती है, अतः विनिमय भी यदा कदा ही होता है। उत्पादन भी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही किया जाता है।

(7) आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों में कोई भेद नहीं होता उनमें मालिक और नौकर केसम्बन्ध नहीं पाये जाते। उनकी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाएं त्यौहारों तथा उत्सवों से घुली मिली होती है।

(8) उत्पादन के दौरान धार्मिक और जादुई क्रियाएं भी की जाती है। उनका विश्वास है कि जादुई क्रियाओं व धार्मिक क्रियाओं से उत्पादन बढ़ता है तथा आर्थिक कार्य में सफलता मिलती है। ट्रोब्रियाण्डा द्वीप वासी मछली मारने व शिकार पर जाने से पहले अनेक धार्मिक व जादुई क्रियाएं करते है जो उन्हें गहरे समुद्र में मछली मारने में सहयोग प्रदान करती हैं व कृषि करने वाली जनजातियां फसल बोने व काटने के समय भी इसी प्रकार की क्रियाओं का सहारा लेती है।

(9) आदिम लोगों में नित्यप्रति अविष्कार, नवाचार (Innovation) और परिवर्तन कम ही होते है। अतः वहां स्थिरता अधिक है। इस स्थिरता एवं समरूपता के कारण ही आर्थिक उत्पादन की प्रविधि में साधारणतः कोई परिवर्तन नहीं हो पाते।

(10) आदिम लोगों में हमारी तरह विशेषज्ञ नहीं होते और न ही विशेषीकरण ही पाया जाता हैं। वहा। हर व्यक्ति थोड़ा बहुत सभी तरह का काम जानता है। इस दृष्टि से जनजातीय लोग हरफनमौला (Jack of all tradesaa) माने जा सकते है। वहां श्रम विभाजन विशेषीकरण या कुशलता तथा अकुशलता के आधार पर नहीं पाया जाता।

(11) व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार की सम्पत्ति हमें इन लोगों में देखने को मिलती है। तीर-धनुष, नाव, फन्दे, कृषि के औजार व्यक्तिगत सम्पत्ति है, तो कृषि भूमि, चरागाह एवं शिकार का क्षेत्र नदी, तालाब, आदि सामूहिक सम्पत्ति, अधिकांशतः उत्पादन व्यक्तिगत रूप से न कर सामूहिक रूप से किया जाता है। परिवार ही उत्पादन करने वाली आधारभूत इकाई है। आर्थिक क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य जीवन-यापन के साथ-साथ सामुदायिक कर्तव्यों को निभाना भी है।

(12) आदिम अर्थ-व्यवस्था में उपहार (Gifts) का विशेष महत्व है। यह विनिमय का एक माध्यम है।

एक व्यक्ति के पास जब किसी वस्तु की अधिकता होती है तो वह दूसरों को उपहार प्रदान करता है। उपहार लेने वाले का भी यह कर्तव्य है कि वह बदले में कुछ उपहार दे। उपहार के बदले प्रति-उपहार के निश्चय के कारण व्यक्ति को भविष्य में सुरक्षा प्राप्त होती है। अतिथि सत्कार का भी आदिम आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। अतः कोई बाहरी अतिथि आकर कभी भी इनके यहां खा-पी सकता है।

(13) इन लोगों में यह हिसाब नहीं लगाया जाता कि किसने कितना श्रम किया और न ही इस आधार पर इनमें वितरण होता है। बुशमैन (Bushman) जनताति में शिकार चाहे कोई भी करे, परन्तु मांस का वितरण एक निश्चित नियम द्वारा ही होता है। मुखिया, विवाहित एवं युवकों के अलग-अलग हिस्से तय होते है। वहां मजदूरी नहीं होती है। इनमें श्रम के पुरस्कार के बजाय हैसियत के अनुसार उत्पादित वस्तु का विभाजन ही पाया जाता है। न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का अधिकार सभी को है।

(14) आधुनिक अर्थ-व्यवस्था की तरह वहां राजनीतिक शक्ति का आर्थिक नियन्त्रण कोई सम्बन्ध नहीं है। इनमें कर वसूली, बाजार, मुद्रा, यातायात आदि की व्यवस्था करना राजनीतिक व्यवस्था का राजनीतिक व्यवस्था का कार्य नहीं है। इस प्रकार आदिम अर्थ-व्यवस्था प्रारम्भिक और सरल प्रकार की है, परन्तु वर्तमान में आधुनिकता के सम्पर्क के कारण उनमें अनेक परिवर्तन आ रहे है। उनमें भी मुद्रा, बैंक, साख, बाजार, दलाल, आदि का प्रचलन हो रहा है।

आदिम अर्थ-व्यवस्था का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF PRIMITIVE ECONOMY)

विभिन्न मानवशादियों ने आदिम अर्थ-व्यवस्था का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। हम यहां कुछ वर्गीकरणों का उल्लेख करेंगे :

(I) ग्रास का वर्गीकरण (Classification, by Gross)-ग्रास ने विकासवादी स्तर के आधार पर अर्थ-व्यवस्थाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। आपने अर्थ-व्यवस्था को पांच भागों में इस प्रकार विभक्त किया।

(i) संकलनशील अर्थ-व्यवस्था (Collectional economy),

(ii) सांस्कृतिक घुमक्कड़ अर्थ-व्यवस्था (Cultural Nomadic economy),

(iii) स्थिर ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था (Settled Village economy),

(iv) नागरिक अर्थ-व्यवस्था (Town economy),

(v) आधुनिकतम या राजधानियों की अर्थव्यवस्था (Metropolitan economy),

(II) जैकब्स तथा स्टर्न का वर्गीकरण (Classification by Jacobs and Stem)-वे पहले सम्पूर्ण आदिम अर्थ-व्यवस्था को दो भागों में विभक्त करते है तथा पुनः प्रत्येक मुख्य भाग को दो भागों में बांटते है, जो इस प्रकार है-

(i) शिकार करने, मछली मारने एवं भोजन एकत्रित करेन वाली अर्थ व्यवस्थाएं (Hunting] fishing and food gathering economy)

(अ) खाद्य सामग्री संकलन करने वाली सरल अर्थ व्यवस्थाएं (Simple food gathering economiesaa), (ब) खाद्य सामग्री करने वाली विकसित अर्थ-व्यवस्थाएं (Advanced

food gathering economiesaa)

(ii) कृषि तथा पशुपालन सम्बन्धी अर्थ-व्यवस्थाएं (Agriculture and Pastoral economiesaa)।

NOTES

(1) कृषि सम्बन्धी सरल अर्थ-व्यवस्थाएं (Advanced Agricultural Pastoral economiesaa)।

(III) फोरडे एवं हरस्कोविट्स का वर्गीकरण (Classification by Forde and Herskovits)-फोरडे एवं हरस्कोविट्स ने आर्थिक विकास के स्तर को पांच भागों में बांटा है। इनकी मान्यता है कि एक ही समाज में एक साथ एक से अधिक आर्थिक अवस्थाएं रही है, जो इस प्रकार है--

(i) संकलन (Collection), (ii) शिकार (Hunting), (iii) मछली पकड़ना (Fishing), (iv) कृषि (Cultivation), (v) पशुपालन (Animal Husbandry)

(IV) डॉ. दुबे का वर्गीकरण (Classification by Dube)-दुबे ने अर्थ-व्यवस्था के वर्गीकरण में भोजन प्राप्त करने एवं प्राप्त करने एवं उत्पादन के आधार को स्वीकार किया है और अर्थ व्यवस्था को निम्नलिखित प्रमुख स्तरों में विभाजित किया है।

(i) संकलन आखेटक स्तर-इस स्तर की प्राथमिक अवस्था में सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद विनिमय के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता है। दूसरी अवस्था में संकलन इतना होता है। कि सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद भी विनिमय के लिए शेष रहता है।

(ii) पशुपालन स्तर।

(iii) कृषि स्तर-इस अवस्था के भी दो भाग है-प्रथम, फलोद्यान आश्रित अर्थ-व्यवस्था, द्वितीय, कृषि आश्रित अर्थ-व्यवस्था। कृषि आश्रित अर्थ-व्यवस्था को भी दो उपभागों में विभक्त किया गया है-एक, सरल कृषि व्यवस्था, दूसरी, विकसित कृषि व्यवस्था।

(V) थर्नवाल्ड का वर्गीकरण (Classfication by Thumwald)-धर्नवाल्ड ने अर्थ-व्यवस्था का विस्तृत वर्गीकरण करते हु उसे सात भागों में विभाजित किया है जो इस प्रकार है।

(1) शिकार करने, पशु-पक्षी पकड़ने वाले तथा खाद्य सामग्री एकत्रित करने वाले समरूप समुदाय (Homogeneous Communitiesaa of hunters, trappers and food collectors)। कदार चेंचू, खरिया, कोरवा, आदि भारतीय जनजातियां इसका उदाहरण है।

(2) शिकार करने, पशु-पक्षी पकड़ने वाले तथा कृषकों का समरूप समुदाय (Homogeneous Communitiesaa of hunters, trappers and food agriculturists)। कमार, बैगा और बिरहोर जनजातियां इसका उदाहरण है।

(3) शिकार करने, पशु-पक्षी पकड़ने वाले, कृषक तथा कारीगरों के श्रेणीबद्ध समाज (Graded society of hunters, trappers agriculturists and artisans)। चेरी, अगरिया एवं अन्य जनजातियां दस्तकारी के लिए प्रसिद्ध है।

(4) चरवाहे (Herdmen)-टोडा एवं कुछ प्रकारके भील वर्ग पशुपालक है।

(5) समरूप शिकारी तथा चरवाहे (Homogeneous hunters and herdmen)। उत्तरांचल के हिमवर्ती क्षेत्र के हिमवर्ती क्षेत्र के भोटिया “याक” और जिब्स टट्टू पालते है और घुमक्कड़ व्यापारी भी है।

(6) सामाजिक आधार पर श्रेणीबद्ध शिकारी, कृषक तथा कारीगर समूह (Socially graded herdmen with hunting] agricultural and artisan population)

उपर्युक्त वर्गीकरणों के अतिरिक्त भी कई विद्वानों ने अपने कुछ अन्य वर्गीकरण भी प्रस्तुत किये है, जैसे एडम स्मिथ (Adam Smith) ने आखेटक, पशुपालक और कृषक तीन स्तर माने है। लिस्ट ने इसे विस्तृत कर एक चौथी अर्थ-व्यवस्था दस्तकारी एवं) उद्योग और जोड़ दी है। हिल्डर ब्राण्ड ने भिन्न प्रकार का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। वे विनिमय, मुद्रा और उधारी (Credit) पर आधारित अर्थ-व्यवस्थाओं का उल्लेख करते हैं। एहरनफेल्स ने दक्षिण-पूर्व एशिया की अर्थ-व्यवस्था को चार भागों में विभक्त किया है- खाद्य संकलन, उन्नत आखेटक कृषक और घुमक्कड़ पशुपालक।

वास्तविकता यह है कि कोई भी समाज पूर्णतः किसी एक ही प्रकार की अर्थ-व्यवस्था पर निर्भर नहीं है और न ही विकास के जो विभन्न स्तर बताये जाते है उन स्तरों से होकर प्रत्येक समाज गुजरा ही है। उदाहरण के लिए न्यूजीलैण्ड के माओरी वर्तमान में कृषक है, परन्तु वे उद्विकासीय स्तर में कभी भी पशुपालक नहीं रहे। डार्बल फोरडे भी इसी प्रकार का मत व्यक्त करते हुए लिखते है कि कोई भी समाज न तो किसी एक निश्चित आर्थिक अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है और न ही किसी समय में कोई विशेष अवस्था ही एकमात्र रूप में प्रचलित रही है वरन् विभिन्न अर्थ-व्यवस्थाएं संयुक्त रूप में विकास के दौरान प्रचलित रही है। गोर्डन चाइल्ड (Gorden Child) भी फोरडे के विचारों से अपनी सहमति प्रकट करते है।

आर्थिक विकास के मुख्य स्तर (Main Stagesaa of Economic Development)

(1) शिकार एवं भोजने संकलन शील स्तर की अर्थ-व्यवस्था।

(2) पशुपालन स्तर की अर्थ व्यवस्था

(3) कृषि स्तर की अर्थ-व्यवस्था।

(4) औद्योगिक स्तर की अर्थ-व्यवस्था।

(1) शिकार एवं भोजन संकलन करने वाली जनजातियां (प्रथम स्तर)

इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने वाली जनजातियां उदर-पूर्ति के लिए उत्पादन नहीं करतीं वरन् संकलन ही करती। प्रमुखतः वे लोग जो कि जंगलों में पैदा होने वाले कन्द-मूल, फल-फूल शहद आदि के द्वारा जीवन-यापन करते हैं, संकलन शील अर्थ-व्यवस्था वाले हो है, और साथ ही मछली मारकर एवं शिकार करके भी जो लोग जीवन व्यतीत करते है, उन्हें भी हम उत्पादक नहीं कह सकते। मानव भोजन प्राप्ति के लिए जब विशेष प्रयत्न करता है और प्रयत्नों के परिणामस्वरूप भोजन में वृद्धि होती है जैसे पशुपालन करके, कृषि या उद्योगों में प्रयत्न करके, तो ऐसे स्तर को उत्पादन स्तर की अर्थ-व्यवस्था कहते है। विश्व की किसी भी प्रागैतिहासिक संस्कृति को हम केवल एक ही वर्ग में नहीं रख सकते, उनमें एकाधिक स्तर साथ-साथ रहे है।

शिकार एवं संकलन के प्राथमिक स्तर पर मानव केवल अपनी आवश्यकता पूर्ति जितना ही संकलन कराता था। उसके पास बचत नहीं होती थी जिसका कि वह विनिमय कर सके। द्वितीयक स्तर पर उपभोग के बाद विनिमय के लिए कुछ बच सकता है।

प्रथम प्रकार की अर्थ-व्यवस्था वाली जनजातियां भारत में कदार और चेचू श्रीलंका के वेदा: आस्ट्रेलिया के अधिकांश मूल निवासी, फिलिपीन और मलय प्रायद्वीपों के पिग्मी समूह, अण्डमान द्वीप के आदिवासी

NOTES

और अफ्रीका के बुशमैन, आदि है। ये सभी आदिवासी समूह प्राकृतिक परिस्थितियों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। जब भौगोलिक परिस्थितियां अनुकूल होती है तो वे फल-फूल जड़ों, कन्द शहद, शाकपात शिकार, मछली आदि के द्वारा उदर-पूर्ति करते है, लेकिन कठिन समय आने पर जब जो कुछ मिल जाये, उसी से गुजारा करना होता है। इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने वाले जन-समूहों की संख्या सीमित होती है। जो 40 से 70 तक होती है। संकलन का कार्य सामूहिक रूप से किया जाता है। बच्चे एवं स्त्रियां जंगलों में खाद्य पदार्थों का संकलन करते है तो युवा लोग शिकार एवं मछली पकड़ने का काम करते है। मौसम परिवर्तन होने पर इन्हें अपना स्थान परिवर्तन भी करना होता है और ये ऐसे स्थानों की खोज करते है जहां सरलता से भोजन उपलब्ध हो सके। अतः इनका जीवन घुमक्कड़ होता है। इनमें व्यक्तिगत रूप से उत्पादित वस्तुओं का उपभोग सारे समूह द्वारा नहीं होता है। केवल सामूहिक रूप से संकलित पदार्थों का ही समान रूप से वितरण किया जाता है। इनमें श्रम विभाजन का आधार यौन-भेद एवं आयु-भेद है। किसी भी कार्य के विशेषज्ञ इनमें नहीं होते है। इनमें व्यक्तिगत सम्पत्ति का अभाव होता है। शिकार करने, मछली मारने एवं खाद्य संकलन के क्षेत्रों को सामूहिक सम्पत्ति माना जाता है। इसे इम आदिम साम्यवादी स्थिति कहते है। इन समूहों में धन एवं सम्पत्ति के आधार पर समाज में वर्ग-व्यवस्था नहीं पायी जाती है।

शिकार एवं संकलन करने वाले वे समूह जो उपभोग के बाद विनिमय के लिए कुछ बचा पाते है विश्व में बहुत कम ही हैं। ऐसी अर्थ व्यवस्था हमें उत्तर-पश्चिमी केलिफोर्निया के समुद्रतटीय इण्डियन्स से लेकर अलास्का तक कुछ समाजों में देखने को मिलती है। इनकी आबादी पहले प्रकार की अर्थ व्यवस्था की तुलना में अधिक होती है। इनकानिवास स्थान व्यापार केन्द्रों से जुड़ा होता है। शिकार करने एवं संकलन करने का कार्य सम्पूर्ण समूह द्वारा एक मुखिया के नेतृत्व में किया जाता है। इसलिए वह शिकार एवं संकलित पदार्थ में विशेष भाग पाने का अधिकारी होता है। यहां पर भी श्रम विभाजन का आधार यौन-मेद एवं आयु-भेद है, परन्तु कुछ क्षेत्रों में विशेषज्ञता के आधार पर भी श्रम का बंटवारा किया जाता। शिकार व संकलन के क्षेत्र प्रधानों एवं मुखियाओं के अधिकार में होते है। इस प्रकार की व्यवस्था सम्पत्ति के आधार पर वर्ग विभाजन के प्राथमिक स्तर की द्योतक है।

इसके द्वितीय स्तर को हम तीन भागों में बांट सकते है भोजन संकलन करने वाले, शिकार करने वाले एवं मछली मारने वाले-यद्यपि हमें कई बार इनका मिला-जुला रूप ही देखने को मिलता है। खाद्य पदार्थों के संकलन में सबसे कम श्रम एवं साधनों की आवश्यकता होती है, जैसे कुदाल, टोकरी, मिट्टी के बर्तन, आदि से ही काम चल जाता है। इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था वाले लोगों को मौसम एवं स्थान का पूरा ज्ञान होता है कि किस मौसम में कौन से फल कहां मिलेंगे। यही नहीं बल्कि वे खाद्य-पदार्थे के संकलन की विधि एवं उन्हें पकाने या अन्य प्रकार से खाने योग्य बनाने की विधि भी जानते है। शिकार करने वाले लोगों के पास शस्त्र औजार एवं उपकरण, संकलन करने वालों की तुलना में अधिक होते है शिकार के लिए तीर-धनुष भाले, बर्डी, फन्दे आदि का उपयोग किया जाता है। शिकार के उपकरण-विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न है। कही कही शिकार का कार्य अकेले व्यक्ति ही करता है तो कही सामूहिक रूप से मछली मारने वालों की भी स्थिति लगभग शिकार करने वालों जैसी ही है। मछली मारने का कार्य भी भिन्न-भिन्न समूहों द्वारा भिन्न-भिन्न तरीकों द्वारा होतता है। तीर-धनुष, फन्दे, जाल तथा हल्के जहर द्वारा अचेतन करके भी मछली मारी या पकड़ी जाती है। इन लोगों को भी मछली मिलने के स्थानों का पर्याप्त ज्ञान होता है।

इस प्रकार की अर्थ व्यवस्था वाले समूह की बील्स एवं हाईजर (Beais & Hoizer) ने चार प्रमुख विशेषताएं बतायी है-(i) ये लोग अक्सर घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करते है। (ii) ये लोग अधिकांश एक-दूसरे ऐ रक्त सम्बन्धी परिवार के सदस्य होते है जो कि आत्मनिर्भर होता है। (iii) इनमें जनसंख्या का घनत्व

बहुत कम होता है। (iv) चूंकि ये लोग जंगलों में निवास करते है, अतः इन पर वर्तमान संस्कृतियों का प्रभाव नहीं पड़ा है और वे अपनी मूल विशेषताएं बनाए हुए है।

(2) पशु- पालन स्तर की अर्थ-व्यवस्था (द्वितीय स्तर)

जब मनुष्य ने यह देखा कि पशुओं को मारने के बजाय यदि उन्हें पाला जाय तो वे अधिक उपयोगी सिद्ध होगे। उनके बाल, चमडे, हढ़ी व मांस, आदि सभी का उपयोग हो सकेगा एवं जीवित अवस्था में उनके दूध और दूध से बने पदार्थ मिल सकेंगे, तब उसने पशु-पालन प्रारम्भ किया। मानव का सबसे पुराना साथी कुत्ते ने मनुष्य के वफादार रखवाले के रूप में कार्य किया और कभी-कभी जानवरों के शिकार में भी शिकार में भी सहायक होता। दूसरा पशु बिल्ली रही होगी। धीरे-धीरे मानव ने गाय, बैल, भैस, घोड़ा ऊंट भेड़ बकरी एवं अन्य पशुओं को भी पालना प्रारम्भ किया होगा। पशुओं का उपयोग धार्मिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रहा है। विश्व की लगभग सभी संस्कृतियों में थोड़ा-बहुत पशुपालन देखने को मिलता है। पशुपालन स्तर की अर्थ-व्यवस्था में मानव में स्थिरता आयी। वह पशुओं को लेकर ऐसे स्थानों पर कुद समय तक रहने लगा जहां घास एवं पत्तों की बहुलता होती। घास की समाप्ति पर वह पशुओं के झुण्ड को लेकर फिर घास बाहुल्य क्षेत्रों की ओर चल पड़ता। बर्फीले प्रदेशों पर रहने वाले एस्किमों रेण्डियर एवं कुत्ते पालते है। कुत्ते उनकी "स्लेज" नामक गाड़ी को बर्फ पर खींचते है। रेण्डियर से वे दूध एवं मांस दोनों प्राप्त करते है। इसकी चर्बी को जलाते है, खाल को पहनते है एवं नाव बनाने के लिए भी काम लेते हैं। वे दूध एवं दूध से बने पदार्थों चमड़े बालों एवं मांस, आदिको बेचकर जीवन की अन्य आवश्यकताओं को वस्तुएं खरीदते है। रेगिस्तान के निवासी एवं घास उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों के लोग भी पशुपालन करते है। पशुओं का उपयोग दूध एवं मांस के लिए ही नहीं वरन् कृषि के लिए भी किया जाता है। सी. डी. फोर्ड पशुओं के चार उपयोग बताते है (1) उनका मांस खाया जाता है, (2) चमड़े का उपयोग, (3) बोझा ढोने एवं गाड़ी खीचने का काम, (4) सवारी का काम।

पशुपालन करने वाले लोगों को चारे पानी के स्थानों एवं मांस तथा दूध के विविध उपयोगों का ज्ञान भी . होता है। किस समाज के लोग किन पशुओं का पालन करेंगे, यह बहुत कुछ स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों एवं वहां पर उपलब्ध पशुओं पर भी निर्भर है। रेगिस्तान के लोग ऊंट का पालन करने है तो टोडा लोग भैंस का पशुपालन करने वाले लोग भी प्रकृति पर प्रथम स्तर के लोगों की तरह ही निर्भर रहते हैं। वे मौसम परिर्वन होने पर चरागोहों की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते है, उनका जीवन प्रथम स्तर की तुलना में स्थिर होता है। पशुओं में बीमारी फैलनेव मरने पर इन्हें आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता है। पशुओं की बीमारियों एवं उनकी चिकित्सा का भी इन्हें ज्ञान होता है। और जड़ी-बूटियों तथा जादुई एवं धार्मिक क्रियाओं के सहारे पशुओं की चिकित्सा की जाती है।

(3) कृषि स्तर की अर्थ-व्यवस्था (तृतीय स्तर)

मानव ने जब फलों को खाकर उनके बीज एवं गुठलियों को फेंक दिया होगा और इन बीजों को अंकुरित होते एवं पेड़-पौधे के रूप में फलते-फूलते देखा होगा तो उसके मन में उन्हें उगाने की लालसा पैदा हुई. होगी। ऐसा सम्भवतः सर्वप्रथम स्त्रियों को ही ज्ञात हुआ होगा क्योंकि पुरुष तो बाहर शिकार में व्यस्त रहता था। पशुचारण के दौरान उसने यह भी अनुभव किया कि एक विशेष ऋतु में ही फल-फूल लगते है, पेड़-पौधे उगते है तो उसे कृषि फलोद्यान पर आश्रित एवं दूसरी, कृषि आश्रित अर्थ-व्यवस्था। फल-फूल देने वाले पौधों को उगाने का कार्य सम्भवतः विश्व में सर्वप्रथम इथोपिया, उत्तर भारत की घाटियों, दक्षिण पूर्व एशिया, मेक्सिको, चिली, आदि स्थानों पर हुआ होगा। पेड़ लगाने के लिए मानव ने कुदाल, फावडे एवं

हो का प्रयोग किया, परन्तु कृषि यन्त्रों की कमी के कारण यह कार्य उन्हीं स्थानों पर अधिक हुआ जहां भूमि उपजाऊ एवं सरलता से खोदी जानेयोग्य थी। उस समय मानव खाद का प्रयोग भी नहीं जानता था, अतः उर्वरता नष्ट होने पर वृक्षों को नये स्थानों पर से जाना जरूरी था। सर्वप्रथम केला, नारियल ब्रेड-फूट, आदि वृक्षों को उगाया गया होगा। इसी प्रकार धीरे-धीरे अन्य फलों के पौधों को उगाना भी प्रारम्भ किया होगा।

अनाज की खेती सर्वप्रथम मिश्र से प्रारम्भ की गयी होगी। अन्न उगाने की प्रमुख तीन विधियां है जो अन्न के तीन महत्वपूर्ण प्रकारों पर आधारित है। चावल की खेती दक्षिणी-पूर्वी एशिया में प्रारम्भ हुई। गेहूं शेष एशिया, यूरोप उत्तरी अफ्रीका में विकसित एवं प्रसारित हुआ। मक्का अमरीका की उपज है। कृषि कार्य नव पाषाण युग में प्रारम्भ हुआ जिसने मनुष्य की अब तक की अर्थ-व्यवस्था, संस्कृति एवं धर्म में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने में योग दिया है। कृषि के नये यन्त्रों का अविष्कार हुआ और पशुओं के सहारे खेती की जाने लगी। आदिवासियों में कृषि के तरीके अविकसित ही है। कई जनजातियां स्थानान्तरित खेती (Shifting Cultivation) करती है। वे जंगलों में पहले आग लगा देते है और जब पेड़-पौधे जलकर राख हो जाते है तो वहां कृषि कार्य किया जाता है। तीन-चार वर्ष में वह भूमि उपज देना कम कर देती है या बन्द कर देती है तो वे लोग दूसरे स्थान पर चले जाते है। वहां पर भी यही विधि अपनायी जाती है। ऐसी कृषि केवल मोटे अनाजों, जैसे जो, बाजरा, चना मटर आदि की ही सम्भव है। उस प्रकार की कृषि में उत्पादन भी कम मात्रा में होता है। उत्पादन कार्य इन समाजों में सामूहिक रूप से किया जाता है। अतः कृषि भूमि पर भी सामूहिक अधिकार होता है। मुखिया उपज को परिवारों की आवश्यकता के अनुसार बांट देता है। कहीं-कहीं पर कृषि कहीं पर कृषि कार्य पारिवारिक स्तर पर भी किया जाता है। अविकसित कृषि-स्तर में आवश्यकता पूर्ति के बाद विनिमय के लिए बहुत कम ही बच रहता है। फसल श्रम विभाजन चौन आधार पर पाया जाता है। मिट्टी के बर्तन बनाने, बांस व लकड़ी के कटोरें बनाने व कपड़ा बनाने वाले विशेषज्ञ भी होते है। ये लोग कृषि के अतिरिक्त समय में हस्तकला एवं कुटीर उद्योग आदि का कार्य भी करते हैं। धन व सम्पत्ति सम्बन्धी भेद न होने से समाजों में वर्ग-व्यवस्था भी नहीं पायी जाती है। राजाएवं शासकों को भेंट, आदि की प्रथा भी नहीं होती है।

कृषि का विकसित स्तर अनुक जटिल रूपों में पनपा है। बड़े-बड़े ग्रामों एवं नगरों में कृषि एक उन्नत व्यवसाय है। उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व पाया जाता है। कुछ लोगों के पास ही कृषि-योग्य भूमि होती है और वे मजदूरों द्वारा कृषि कार्य करवाते है। विकसित कृषि व्यवस्था में वर्ग-भेद देखने को मिलता है। एक तरफ भू-स्वामी है तो दूसरी तरफ कृषि मजदूर। भू-स्वामी पैसों के बल पर विशेषज्ञों एवं मजदूरों द्वारा कार्य करवाते है। सरल प्रकार की कृषि व्यवस्था भारत के आदिवासी समूहो, पॉलीनेशिया, मलेनेशिया मलय-एशिया, आदि स्थानों पर पायी जाती है, जहां उत्पादित खाद्य-पदार्थ उपभोग के बाद विनिमय के लिए बहुत कम बच रहते है। ऐसे लोगों की ग्राम जनसंख्या 2,000 से अधिक नहीं होती है। कृषि कार्य परिवार एवं व्यक्ति द्वारा स्वतन्त्र रूप से किया जाता है।

(4) औद्योगिक स्तर की अर्थ व्यवस्था (चतुर्थ स्तर)

इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था आदिम समाजों में बहुत कम ही देखने को मिलती है। कृषि व पशुपालन के साथ-साथ छोटे-छोटे दस्तकारी के व्यवसाय तो कई समाजों में प्रचलित है, परन्तु पूर्ण रूप से उद्योग पर निर्भर अर्थ-व्यवस्था तो सभ्य समाजों में भी नहीं है। वहां पर उद्योग के साथ-साथ कृषि भी की जाती है। आदिम समाजों में पशुपालन एवं कृषि के साथ टोकरी बनाना, रस्सी, चटाई, कपड़ा, लोहे के औजार, बर्तन, बेंत का कार्य आदि भी किया जाता है। शिल्प उद्योगों में आदिवासियों ने कलात्मक वस्त्रों का निर्माण

किया है। असम के नागा प्रसिद्ध कलात्मक वस्त्रों का निर्माण करते है। ऐसे समाजों में कुछ लोग कृषि, आदि का कार्य करते है तो कुछ उन पर निर्भर रहने वाले शिल्प उद्योग में लग जाते है।

NOTES

आदिम समाजों में अर्थ-व्यवस्था की कार्य-प्रणाली (क्रियाशीलता) (Economic Mechanism in Primitive Societiesaa)

उत्पादन, वितरण, उपभोग, विनिमय, श्रम विभाजन, आदि किसी भी अर्थ-व्यवस्था की कार्य-प्रणाली को निर्धारित करते है। हमें किसी वस्तु का उपभो करना है तो उसका उत्पादन करना होगा। उत्पादन के दौरान कभी-कभी एक से अधिक व्यक्ति मिलकर कार्य करते हैं। ऐसी स्थिति में श्रम का बंटवारा किया जाता है तथा उत्पादित की हुई वस्तु में उत्पादन करने वालों का भी हिस्सा होता है, अतः वितरण अस्तित्व में आता है। यदि उत्पादित वस्तु उपभोग के बाद बचती है तो उसका विनिमय किया जाता है और उसके बदले में दूसरी आवश्यकताओं की वस्तुएं खरीदी जाती है। विनिमय को माप योग्य एवं सुविधाजनक बनाने के लिए मुद्रा का सहारा लिया जाता है। वस्तुए बेचने एवं खरीदने के लए बाजार का विकास होता है। आर्थिक क्रियाओं के दौरान मनुष्य अनेक अन्य बन्धनों में बंध जाता है। उसके कई दायित्व एवं कर्तव्य भी हो जाते है तो साथ ही अधिकार भी पैदा होते है। आदिम समाजों में श्रम विभाजन, उत्पादन, विनिमय, वितरण मुद्रा बाजार एवं व्यापार, आदि का उल्लेख करेंगे।

श्रम विभाजन (Division of Labour)

आदिम समाजों में उत्पादन की क्रिया केवल एक ही व्यक्ति द्वारा पूर्ण नहीं हो पाती वरन् इनमें अन्य व्यक्तियों का सहयोग भी लिया जाता है। और सम्पूर्ण कार्य को अलग-अलग भागो में बांटकर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को सौपा जाता है जिसे श्रम विभाजन कहते हैं। श्रम--विभाजन आयु लिंग या विशेषज्ञता के आधार पर देखने को मिलता है। किस समाज में किस लिंग और आयु के लोग कौन-सा कार्य करेंगे यह उस समाज द्वारा अपनायी जानेवाली अर्थ व्यवस्था पर निर्भर करता है। शिकार करने एवं संकलन करने वाली अर्थ-व्यवस्था में पुरुष शिकार करने जंगलों में जाते हैं तो स्त्रियां घर के कार्य की देखभाल, बच्चों का लालन-पालन, जंगलों में कन्द-मूल फल-फूल शाक-पात, आदि के संचय का कार्य करती है। एस्किमों, अण्डमानी एवं अरूण्टा जनजातियों में ऐसा ही देखने को मिलता है। शारीरिक दौर्बल्य के कारण ऐसे काय जिनमें अधिक शारीरिक बल की आवश्यकता पड़ती हो, स्त्रियों को नहीं सौपे जाते। इसके अतिरिक्त लिंगीय आधार पर श्रम विभाजन का कारण कुछ शारीरिक प्रक्रियाएं भी है, जैसे स्त्रियों में ऋतु-स्राव एवं शिशु जन्म की प्रक्रियाओं को न समझ पाने के कारण इनके प्रति अतार्किक धारणाएं पैदा हुई। परिणाम यह हुआ कि ऋतुस्राव एवं शिशु जन्म की प्रक्रियाओं के दौरान उसे धार्मिक कार्यों के सम्पादन से वंचित कर दिया गया। टोडा जनजाति में स्त्रियों को पवित्र भैसों को छूने एवं दुग्धशाला में प्रवेश करने की इजाजत नहीं है। उनकी मान्यता है कि स्त्रियों का मवेशियों से सम्पर्क होने पर विपत्ति आ सकती है। स्त्रियों का शिशुओं के साथ लगाव होने के कारण भी स्त्रियों को बच्चों की देखभाल एवं खाना बनाने का कार्य सौपा गया। अतः उन्हें अनिवार्य रूप से घर पर ही रहना पड़ा। लिंग के आधार पर श्रम विभाजन का आधार स्त्रियों को शारीरिक दुर्बलता एवं कार्यों के लिए उन्हें अक्षम समझना भी है। न्यूगिनी के सियाने लोग (Siane) समझते है कि स्त्रियां कुल्हाड़ी नहीं चला सकती। कुछ कार्यों को करना पुरुष अपनी मर्यादा के विरुद्ध मानते है। ओजिब्बा (Ojibwa) जनजाति में पुरुषों की तरह स्त्रियां भी शिकार का कार्य करती है। फिर भी सन्तानोप्तत्ति एवं बच्चों का लालन-पालन, घर का काम-काज, ऋतु स्राव एवं गर्भावस्था तथा सामान्य शरीर रचनात्मक क्षीणता, आदि ऐसे कारक है जो लिंगीय श्रम विभाजन पैदा करने के लिए उत्तरदायी है।

पशु-पालन एवं खेती करने वाले सभी समाजों में श्रम विभाजन का कोई सर्वमान्य प्रतिमान देखने को नहीं मिलता। फसल बोने, काटने उखाड़ने खोदने एवं कृषि से सम्बन्धित अन्य छोटे-मोटे कार्य स्त्री एवं पुरुष मिलकर करते है, दोनों एक-दूसरे के कार्य में हाथ बंटाते है। ट्रोब्रियांडा द्वीप के निवासियों एवं भारत की कृषि कार्य करने वाली जनजातियों में स्त्री-पुरुष को साथ-साथ कृषि कार्य करते देखा जा सकता है। कुइची इडियनों में पुरुष खेत का सारा काम करता है, परन्तु उसकी स्त्री आस-पास झाड़ियों के नीचे बैठकर आराम करती है और पति को कृषि कार्यों में कोई सहयोग नहीं देती। भारतीय जनजातियों में स्त्रियां खाद्य संकलन, फसल बोने एवं काटने मछली पकड़ने टोकरियां एवं कपडे बुनने बर्तन बनाने, आदि का कार्य करती है। किन्तु वे शिकार करने, पेड काटने लुहारी एवं सुनारी आदि के कार्य नहीं करती। कही-कहीं पुरुषों की भांति जादू-टोने का कार्य भी स्त्रियों द्वारा किया जाता है।

श्रम विभाजन ने स्त्री-पुरुषों को कुछ अधिकार एवं दायित्व भी दिये है। उदाहरण के रूप में, जूनी जनजाति में शिकार से लौटने पर स्त्री अपने पति का द्वार पर स्वागत करती है एवं उसके लिए खाने-पीने की व्यवस्था काती है। पुरुष जो कुछ शिकार एवं कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुएं लाता है, वे सभी घर में आने पर स्त्री की सम्पत्ति मानी जाती है।

आदिम समाजों में श्रम विभाजन का आधार विकसित समाजों की भांति विशेषज्ञता नहीं है। फिर भी कुछ व्यक्ति किसी कार्य विशेष के लिए दक्ष समझे जाते है। कई जनजायिों में उत्पादन के दौरान जादुई एवं धार्मिक क्रियाएं करने वाला एक विशेष व्यक्ति ही होता है। तो औजारों का निर्माण कभी-कभी विशेषज्ञ ही करते है। जाम्बिया के टोआओं में यह विश्वास प्रचलित है कि कारीगर का कौशल पूर्वजों की देन है। यदि वह इसका प्रयोग नहीं करता है। तो पूर्वज नाराज होगें। अतः वह सदा काम करता रहता है और चीजें बनाकर सम्बन्धियों को देता है। अफ्रीकी समाजों में कलाकार राजदरबारों से सम्बद्ध थे। वे उनकी कलाओं को प्रोत्साहन देते थे। अफ्रीका के स्वर्ण धूल व चमड़े के सामान भूमध्यसागर के तटों तक पहुंचे। अशाण्टी जनजाति एवं नाइजीरिया के धूप लोगों में भी लुहारी, सुनारी एवं वस्त्र-निर्माण के आधार पर विशेषज्ञता पायी जाती है।

वर्तमान में औद्योगीकरण से प्रभावित जनजातियों में स्त्री व पुरुष दोनों ही खानों कारखानों एवं चाय के बागानों में साथ-साथ कार्य करते है। सन्थाल स्त्री-पुरुष इस्पात के कारखानों एवं रानीगंज तथा झरिया की कोयले की खानों में काम करते है तो नागा स्त्री-पुरुष असम के चाय बागानों में भारतीय जनजातियों में मालिक एवं श्रमिक के बीच श्रमिक के बीच श्रम विभाजन नहीं है। क्योंकि उनमें मजदूरी प्रथा नहीं पायी जाती। अतः खेत का मालिक और पड़ोसी या दूसरे रिश्तेदार खेत में साथ-साथ कार्य करते है।

श्रम का पुरस्कार (Reward of Payment for Service)

श्रम के बदले में आधुनिक समाजों में नकद वेतन या मजदूरी मिलती है, परन्तु आदिम समाजों में भोजन और सांस्कृतिक भेंट दी जाती है। कभी-कभी सेवा के बदले सेवा की जाती है, लेकिन उस समय यह नहीं देखा जाता है कि व्यक्ति ने जितना कार्य किया या जितने समय तक कार्य किया, दूसरा भी वैसा ही करे और न ही यह देखा जाता है कि कौन व्यक्ति दक्ष कारीगर था और उसके बदले में सेवा देने वाला भी उतना ही दक्ष है या नहीं। मनुष्य सदा भोजन, वस्त्र और मकान के लिए ही कार्य नहीं करता है वरन् कई प्रकार की वस्तुओं पत्नी प्राप्ति प्रसिद्ध पद, गुप्त समितियों की सदस्यता प्राप्त करने एवं समुदाय में ऊँचा स्थान पाने के लिए भी श्रम करता है। फर्श ने टिकोपिया समाज में एक विचित्र नाव का निर्माण होते देखा। नाव बनाने में अनेक लोगों ने श्रम किया। काम समाप्त होने पर समाज के शासक के निकट सम्बन्धियों को छोडकर सभी

को घर ले जाने के लिए एक-एक टोकरी भोजन दिया। नाव पर नक्काशी करने वाले को वृक्ष की छाल का एक बण्डल दिया गया छैनी के मालिक पेड़ काटने वाले एंव काठ में छेद करने वाले को भोजन का उपहार दिया गया। पेड़ को घसीट कर तट पर लाने वालों को नारियल एवं फलों से पुरस्कश्त किया गया। इस प्रकार से काम के बदले में शासक की ओर से लोगों को या तो भोजन मिला या उपहार दिया गया। फर्श के विचार से काम में सहायता भौतिक लाभ के लिए हो नहीं की गयी वरन् बन्धुत्व व पड़ोस के दायित्व निभाने, शासक की इच्छाओं का सम्मान करने एवं बाद में मछली-मारक अभियान की सदस्यता की आशा से भी की गयी। दायित्वों की पूर्ति से आत्म-सन्तोष भी मिलता है।

गृह-निर्माण के कार्य में भी श्रम का पुरस्कार इसी प्रकार से दिया जाता है। निर्माण का कार्य कुशल कारीगर करते है। जिन्हें बल्कल वस्त्र और चटाइयां आदि दी जाती है। काम समाप्त होने पर कुशल और अकुशल श्रमिक एक साथ भोजन करते है और आस-पास के लोगों को भी भोजन दिया जाता है। जो व्यक्ति मकान बनवाता है, उसके विवाह जन्य बन्धु अतिरिक्त भोजन की व्यवस्था करते है।

उत्पादन (Production) कौन-सा समाज क्या उत्पादन करेगा, यह बहुत कुछ वहां की भौगोलिक परिस्थितियों प्राकृतिक स्रोतों की उपलब्धि एवं साधन-सम्पन्नता और तकनीक पर निर्भर है। यही नहीं वह समाज किस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था को अपनाये हुए है, इसका भी उत्पादन से गहरा सम्बन्ध है। शिकार करने मछली मारने, खाद्य पदार्थों का संकलन करने, पशुपालन एवं कृषि करने तथा उद्योग में लगे समाजों में उत्पादन की प्रणालियां भिन्न-भिन्न होंगी। खाद्य-पदार्थो का संकलन करने वाले कन्दमूल, फल-फूल एवं शाक-पात का संकलन कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं तो मछली मारने व वंशिकार करनेवाले भी मछली व शिकार से ही जीवन-यापन पूर्ति करते है तो मछली मारने व शिकार करने वाले भी मछली व शिकार से ही जीवन-यापन करते है। अर्थशास्त्रीय दृष्टि से इसे हम उत्पादन नहीं कह सकते।

पशुपालन द्वारा जीविका कमाना संकलन एवं उत्पादन के बीच की प्रक्रिया है। वास्तव में कृषि एवं उद्योग स्तर ही उत्पादन की श्रेणी में आते है क्योंकि कृषि से भोज्य पदार्थ एवं उद्योग के कच्चे माल का उत्पादन होता है तो शिल्प उद्योग द्वारा अन्य वस्तुओं का।

आदिम समाजों में उत्पादन व्यक्ति ही मछली मारने चल पड़ता है। वहां पर नावें ही ऐसी बनायी जाती जिसमें एक व्यक्ति बैठकर शिकार कर सके, परन्तु कभी-कभी दो व्यक्ति मिलकर भी शिकार अभियान पर जाते है। कई बार भोज्य पदार्थों का संकलन या शिकार व मछली मारने का कार्य पूरे परिवार एवं रिश्तेदारों द्वारा मिलकर किया जाता है। भारत में कांदार, चेचू खरिया, कोरवा, आदि में मछली मारने, शिकार करने एवं जंगलों में फल-फूल एकत्रित करने का कार्य सम्पूर्ण परिवार के सदस्यों द्वारा मिलकर किया जाता है। कभी-कभी सम्पूर्ण गांव, समुदाय या समूह ही उत्पादन की क्रिया में सहकारी रूप में भाग लेता है। अफ्रीका की लोगो (Longo) जनजाति में शिकार पर पुरुष, स्त्रियां एवं बच्चे सभी जाते है जो हल्का मचाते है एवं शिकार को घेरते है। पश्चिमी कीनिया की गुसीई (Gusii) जनजाति में "रिका" नामक सहकारी समूह होता है जो एक गांव ही नहीं वरन् एक क्षेत्र तक फैला होता है और अवसर पड़ने पर समूह के सदस्य परस्पर सहायता करते हैं। इसी क्षेत्र की किपलिंगी (Kipsingis) जनजाति में ग्राम अधिकारी ही यह तय करता है कि किसके खेत पर काम किया जायेगा। कहीं-कही युवक टोलियां बनाकर अपनी सेवाएं अर्पित करते है। उत्पादन की क्रिया के साथ जादुई एवं धार्मिक क्रियाएं भी की जाती है क्योंकि आदिवासियों का विश्वास है कि जादू एवं धर्म उन्हें उत्पादन में सफलता दिलायेंगे। ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासी मछली मारने के लिए नाव का निर्माण करते समय कई मन्त्रों का उच्चारण एवं जादुई क्रियाएं करते है जिससे कि नाव तेज चलें, समुद्र में जा सके और अपनी स्वामी के लिए यशोपार्जन कर सके। टिकोपिया में भी नाव बनाते समय एवं मछलियों

के लिए जाल बुनते समय इसी प्रकार की रस्में अदा की जाती है। नाव को देवता को अर्पित किया जाता है और उनसे आशीर्वाद मांगा जाता हैं

इस सन्दर्भ में आदिम उद्यमी का उल्लेख भी आवश्यक है। आदिम समाजों में उत्पादन करने वाला उद्यमी या तो परिवार का मुखिया या ग्राम समूह का शासक होता है। ट्रोब्रियाण्डा द्वीप में मुखिया ही नाव निर्माण के लिए कुशल और अकुशल श्रमिक जुटाता है। आवश्यकता होने पर सम्पूर्ण गांव एवं बाहर के लोगों द्वारा भी सहायता ली जाती है। कभी-कभी गांव की सभी नावें एक व्यक्ति के नेतृत्व में यात्रा पर निकलती है। नेता सभी नावों को भोजन देता है और मौसम खराब होने या विपत्ति में वे सभी साथ रहते है। उद्योगों के अधिष्ठाताओं के पास अतिरिक्त भोजन का भंडार होना जरूरी है ताकि वे उत्पादन में लगे लोगों का भरण-पोषण कर सके। ट्रोब्रियाण्डा ग्राम शासक को अपने वैवाहिक सम्बन्धियों से यह म्भण्डार प्राप्त होता है। पत्नियों के भाई अपनी बहिनों को अपने खेत की उपज देते है। मलेशियन लोगों में भी मकान बनोन से पहले एक व्यक्ति को भोजन का भण्डार बनाना होता है जो वह निर्माण कार्यो में लगे लोगों को बांटता है। आदिम समाजों में मालिकों का एक अलग वर्ग नहीं बनता और न ही उद्योग चलाने वाला ऐसा सोचता कि उसे शारीरिक श्रम नहीं करना चाहिए। उदाहरण के रूप टिकोपिया समाज में फर्म ने देखा कि शासक के दो पुत्र अन्य लोगों के साथ लकड़ी के कुन्दे को तट तक घसीट लाने का काम कर रहे थे। नाव का मालिक अन्य लोगों के साथ स्वयं भी मछली मारने जाता है। हरस्कोविट्स ने लिखा है कि डाहोमी काराजा भी श्रम से मुक्त नहीं है। उसकी स्त्रियां अन्य स्त्रियों की तरह खेतों में काम करती थी।

दूसरी ओर कुछ आदिम समाज ऐसे भी है जहां पश्चिमी अर्थ में उद्यमी होते है। जैसे नूपलोगों में बड़े लोग कच्चा माल खरीदते है। ऐसा करने वाला व्यक्ति स्वयं भी दक्ष कारीगर होता है और वह माल बनाने के लिए कारखानों में बांट देता है। मामल के बनने पर वह आधे से अधिक भाग अपने पास रखकर शेष श्रमिकों में बांट देता है, और अपने हिस्से को नकद बेच देता है।

वितरण (Distribution)

वितरण से तात्पर्य है उत्पादन में भाग लेने वाले लोगों को उत्पादित वस्तु का हिस्सा दिया जाय या किसी और रूप में प्रतिफल दिया जाया वितरण की वस्तु शिकार का कोई भाग, फल-फूल, शाक-पात का हिस्सा या पूरी वस्तु के रूप में भी हो सकता है। आदिम समाजों में किसको कितना और क्या वितरित किया जायेगा, यह बहुत कुछ सामाजिक नियम पर निर्भर है। कभी-कभी तो यह भी नहीं देखा जाता कि किसने कितना श्रम किया है। जैसा कि हम पहले कह चुके है कि अफ्रीका की कई जनजातियों में भवन निर्माण करने वाले कुशल एवं अकुशल सभी श्रमिकों में सायं काल समान रूप से भोजन वितरित किया जाता है। शिकार करने वाले लोगों में यह निर्धारित है कि मुखिया शिकार का कोन सा भाग प्राप्त करेगा तथा शेश व्यक्ति कौन-सा जैसे अफ्रीका की लोगो (Longo) जनजाति में मुखिया शिकार का कंधा प्राप्त करता है। कृषि करने वाले समाजों में सारीउपज को एक साथ एकत्रित कर बिना यह देखे कि किसने कितना श्रम किया सदस्यों की संख्या व आवश्यकता के आधार पर उनमें अनाज वितरित किया जाता है, परन्तु कुछ आदिम समाज ऐसे भी है जहां उत्पादन सामूहिक रूप से न होकर पारस्परिक रूप से होता हैं। एक परिवार द्वारा पैदा हुए फसल कम होने पर दूसरे परिवार से उधार भी ली जा सकती है और अगली फसल पर मय सूद के लौटा दी जाती है। होपी (Hopi) जनजाति में परिवार के पास वस्तु की कमी पड़ने पर उसके रिश्तेदार उस परिवार को भेंट देकर उसकी आवश्यकता पूर्ति करते है। जूनी (Zuni) जनजाति में भी फसल के समय मुक्त हस्त से अनाज वितरण करने एवं अतिथियों को भोजन देने की प्रथा है।

उपभोग (Consumption)

जनजातीय समाजों में उत्पादित एवं वितरित वस्तुओं का उपभोग किया जाता है। कौर कितना उपभोग करेगा यह बहुत कुछ आदिम समाजों में व्यक्ति की आर्थिक स्थिति पर निर्भर न होकर सामाजिक स्थिति पर निर्भर है। ग्राम या समूह के मुखिया की सामाजिक स्थिति एवं प्रतिष्ठा ऊंची होती है, अतः उपभोग की दृष्टि से भी उसे विशेषाधिकार प्राप्त है। वहीं अच्छे भोजन, वस्त्र एवं मकान का उपयोग करता है। समय समय पर उसे भेट, उपहार व नजराने दिये जाते है कभी कभी सामूहिक भोज आदि भी होते है। आदिम समाजों में उपभोग की इतनी विषमता देखने को नहीं मिलती है जितनी की आधुनिक समाजों में इसका कारण यह है कि वहां उत्पादन भी सीमित मात्रा में ही होता है। अधिकांशतः जीवन-यापन के लिए उन्हें प्रकृति से संघर्षरत रहना होता है तथा उन लोगों का जीवन-स्तर भी निम्न होता है।

उपहार, अतिथि सत्कार, व्यापार एवं विनिमय (Gifts] Hospitability Trade and Exchange)

जनजातियों के उपहार, विनिमय एवं व्यापार के द्वारा वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है। उपहारों का उद्देश्य उत्पादन के वितरण द्वारा व्यक्तिगत एवं सामूहिक सम्बन्धों के स्थायित्व प्रदान करना होता है। अण्डमानियों से लेकर विकसित समाजों तक हमें उपहार देने की प्रथा देखने को मिलती है। उपहार आर्थिक व सामाजिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। उपहार से आर्थिक दृष्टि से कीमती एवं उपयोगी वस्तुएं तथा प्रतिष्ठा की दृष्टि से महत्वपूर्ण वस्तुएं दी जाती है, लेकिन व्यावहारिक और आर्थिक दृष्टि से मूल्यहीन एवं निरुपयोगी वस्तुएं तक भी दी जाती है। जन्म, विवाह, मृत्यु एवं बड़े दिन, आदि अवसरों पर उपहार देने का विशेष प्रचलन देखने को मिलता है। कभी-कभी उपहार देना अनिवार्य भी होता है तो कभी वैकल्पका उपहार देना अधिकारों व कर्तव्यों का द्योतक है। कब किस अवसर पर कौन उपहार प्राप्त करने का अधिकारी होगा और किस पक्ष का यह कर्तव्य होगा कि वह उपहार दे, यह सब निश्चित होता है। इसमें समूह के सम्बन्ध में दृढ़ता आती हैं और उपहार न देने पर सामूहिक सम्बन्धों के टूटने का खतरा पैदा हो जाता है।

जनजातियों समाजों में उपहारों में माल भाव नहीं होता, जो कुछ दिया जाता है उसे विनम्रतापूर्वक स्वीकार कर लिया जाता है कि उसके बदले में क्या देना है। ऐसा करते समय उपहार में आयी वस्तु एवं उसके बदले में दी जाने वाली वस्तु की कीमत को आंका नहीं जाता है। उपहार प्राप्त करतें ही बदले में उपहार उसी समय नहीं दिया जाता वरन् उसमें देरी भी हो सकती है। उपहार अधिकांशतः मित्रों एवं रिश्तेदारों के बीच में दिये जाते है और ऐसा विवाह, जन्म मृत्यु तथा त्यौहारों पर ही होता है, सदा नहीं। इसका उद्देश्य आर्थिक वस्तुएं प्राप्त करना ही नहीं वरन् सामाजिक सम्बन्धों को प्रगाढ एवं उनमें निरन्तरता बनाये रखना भी है। उपहार की वस्तुएं दैनिक प्रयोग की वस्तुओं से भिन्न होती है, क्योंकि पाने वाला उन चीजों को खरीदने में असमर्थ होता है या उन्हें खरीदना फिजूलखर्ची मानता है। छोटे समाजों में औपचारिक उपहार में कीमती वस्तुएं दी जाती है और कभी-कभी इनकी उपयोगिता केवल यही होती है कि इन्हें पुनः उपहार के बदलें किसी को दे दिया जाता है।

पिडिंगटन उपहार में पारस्परिकता का सिद्धान्त (Principle of reciprocity) देखते है जिसमें सेवा की वस्तुएं पाने वाले का यह दायित्व हो जाता है कि वह देने वाले को लगभग उतनी ही सेवा या वस्तुएं पुनः लौटाये, जैसे हम अपने मित्र के पु. जन्म पर कोई भेंट दे तो पुनः उसका भी दायित्व है कि समय आने पर वह भी हमारे लिए ऐसा ही करें। उपहार देने व लेने वालों में घनिष्ठता एवं कर्तव्य-बोध पैदा होता है। आदिम समाजों में विवाह के अवसर पर दी जाने वाले भसेंट से अनेक अधिकार एवं कर्तव्य पनपते है। "लॉबोला"

(Lobola) भी एक ऐसा ही प्रथा है। इसमें वर पक्ष की ओर से वधू पक्ष को मेड़े, कम्बल एवं पशु, आदि दिये जाते है। "लॉबोला" जुटाने में एक परिवार यदि अक्षम होता है तो उसके अन्य रिश्तेदार भी सहायता प्रदान करते हैं। वधू पक्ष भी सारा "लॉबोला" अपने पास नहीं रख लेता वरन् अपने अन्य रिश्तेदारों में भी वितरित करता है और उस परिवार के पुत्र के लिए वधू प्राप्त करने के लिए अन्य परिवार को दे देता है। इस प्रकार लॉबोला जुटाने में एक परिवार को कई रिश्तेदारों से सहायता मिलती हैं और पाने वाला भी इसे अपने दूसरे रिश्तेदारों में बांट देता है। अतः लॉबीला परिवारों के पारस्परिक कर्तव्यों एवं दायित्वों का द्योतक ही नहीं वरन् समूह में घनिष्ठ संगठन पैदा करने वाला भी है।

उपहार सामाजिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, परन्तु आर्थिक दृष्टि से भी उपयोगी है। उपहारों के द्वारा आर्थिक असमानता को दूर भी किया जाता है और तब वह दो-तरफा न होकर एक तरफा ही होता है। अफ्रीका की जूनी जनजाति में वह एक तरफा ही है। ट्रोबियाण्डा द्वीप वासियों में भी भाई खेती, आदि के द्वारा उत्पन्न वस्तुओं को समारोहात्मक रूप में ग्राम (Yam) (एक प्रकार का झोपड़ा जिसमें वहिन को दी जाने वाली वस्तुएं रखी जाती है।) बनाकर गांव के लोगों को देखने व आलोचना या सराहना करने के लिए बुलाया है और फिर उसे बहिन के परिवार को भेंट करता है। माओरी (Maori) जनजाति में मुखिया दूसरे व्यक्तियों से उपहार मांग भी सकता है और मांगा हुआ उपहार न देने पर अनिष्ट होने का डर होता है।

इस प्रकार आदिम समाजों में अधिकांश उत्पादन व्यक्ति या समूह द्वारा उपभोग में लाया जाता है। लेकिन वह कभी-कभी अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं को स्थगित करके सामाजिक, धार्मिक और अन्य अवसरों पर अपने पड़ोसी समूह को भी उपयोग के लिए देता है। कभी-कभी यह आदान-प्रदान औपचारिक हाता है। और इसका उद्देश्य केवल पुरानी प्रथाओं का पालन होता है या नातेदारी विवाह के दायित्वों को निभाना या झगड़ों को शान्त करना होता है। दुर्खीम के अनुगामी मारसल मौस ने सरल समाजों में उपहार के महत्व को बताने के लिए "कुला" और पॉटलैच (Kula and Potlach) का उदाहरण दिया जिसका हम यहां उल्लेख करेगे।

पॉटलैच (Patlach)

यह प्रथा अमरीका के उत्तरी-पश्चिमी तट की जनजातियों में, अलास्का और ब्रिटिश कोलम्बिया में निवास करने वाली चार जनजातियों में पायी जाती है। वे है-हैडा (Haida) लिंगित (Tlingit), शिमशिवन (Tsimshian) और क्वाक्विटल (Kwakiutal) पॉटलैच एक भोज होता है जिसमें कई लोगों और यहां तक के दुश्मनों तक को आमन्त्रित किया जाता है। भोज में लोगों को खूब खिलाया पिलाया जाता है, वस्तुएं नष्ट की जाती है और लोगों में बांटी जाती है। व्यक्ति कितना समृद्धिशाली हैं और कितना कुछ नष्ट कर सकता है और दे सकता है, यह दिखाने के लिए ही वह ऐसा करता है। इससे उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है। इस प्रकार पॉटलैच द्वारा एक व्यक्ति डंके की चोट पर सम्मानजनक सामाजिक प्रतिष्ठा या पद प्राप्त करता है। हैडा जनजाति में कई प्रकार के पॉटलैच प्रचलित है, जैसे-दाह-संस्कार पॉटलैच (Funeral Potlach) गृह निर्माण पॉटलैच (House Building Potlachi) बदला लेने के लिए पॉटलैच (Vengeance Potlach) दाह संस्कार के पॉटलैच में मुखिया का उत्तराधिकारी मुखिया की मृत्यु के बाद उसके पद को ग्रहण करने के लिए पॉटलैच देता है। वह विरोधी युग्म संगठन (Moiety) के लोगों को भी आमन्त्रित करता है और सभी को कीमती वस्तुएं प्रदान करता है। शिमशियन जनजाति में भी समूह के मुखिया की मृत्यु के बाद उसका पुत्र या भतीजा मुखिया के पद व नाम को ग्रहण करने के लिए दूसरे लोगों व मुखियाओं को भोज व नाच-गाने के साथ ही इस समारोह की समाप्ति होती है।

गृह-निर्माण पॉटलैच में एक परिवार के सदस्य कई वर्षों तक कीमती वस्तुओं व भोजन का संकलन करते है। पड़ोसियों को लकड़ी पर नक्काशी के लिए बुलाया जाता है, खम्भों पर टोटम के चिन्ह बनाये जाते है। मकान निर्माण के दौरान भोजन व नृत्य, आदि के कार्यक्रम होते हैं। निर्माण कार्य की समाप्ति पर पॉटलैच दिया जाता है। जिन लोगों ने मकान बनाने में सहयोग दिया, उन्हें उनके पद के अनुसार बिठाया जाता है! स्त्री उन्हें बाल (Fur) कम्बल, कारीगरी की हुई थालियां व अन्य वस्तुएं देती है और अन्त में अपने पति को एक फटा हुआ कम्बल देती है जिसका अर्थ होता है कि परिवार की सम्पति समाप्त हो चुकी है। प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए भी पॉटलैच का आयोजन किया जाता है। कि व्यक्ति ऐसा नहीं करता, लोग उसे कहते है-हतुमने अपने बच्चों के लिए कुछ किया ही नहीं?ह इस प्रकार प्रतिष्ठा भी ऊंची होती है। कोई व्यक्ति यदि स्वयं पॉटलैच नहीं दे सकता, लेकिन यदि उसके पिता ने पॉटलैच दिया हो तो उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा बनी रहती है।

मुंह छिपाने के लिए दिये जाने वाले पॉटलैच का आयोजन एक व्यक्ति तब करता है जब उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा का खतरा पैदा हो गया हो। उदाहरण के लिए, यदि उसने किसी के लिए अपशब्द काम में लिये हो या किसी को परेशान किया हो तो लोग उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। ऐसा व्यक्ति विरोधी युग्म संगठन (Mporyu) के लोगों को आमन्त्रित करता है जिन्होंने उस घटना को देखा है। वह उनके सामने कई कम्बलों को फाड़ता है और उनके टुकड़े उनमें बांटता है। इस अवसर के बाद यह माना जाता है कि उस व्यक्ति के बारे में आगे कभी उस दुर्घटना का उल्लेख नहीं किया जायेगा तथा उसके द्वारा किया गया अपमान भुला दिया गया है।

कभी-कभी बदले वा प्रतिद्वन्द्विता की भावना के कारण भी पॉटलैच दिया जाता है। एक व्यक्ति पॉटलैच का आयोजन कर लोगों को खूब खिलाता-पिलाता है-धन व वस्तुएं एकत्रित कर कई लोगों को बुलाता है और उस व्यक्ति को भी बुलाता है जिससे पहले उसे पॉटलैच में बुलाया था। वह भी खिलाने-पिलाने के अतिरिक्त वस्तुओं की तोड़फोड़ करता है, सील मछली के तेल को नष्ट करता है। दासों को मारता है, कम्बल फाड़ता है और यह प्रकट करता है कि वह भी कुछ कम नहीं है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को हानि होती है। यह क्रम चलता ही रहता है कि बर्बादी जाती है। क्वाक्विटल इण्डियन में भी हैडा जनजाति की तरह इस प्रकार का पॉटलैच दिया जाता है। इसे हम आक्रामक पॉटलैच भी कह सकते है।

पॉटलैच प्रथा का विस्तार विवाह प्रथा में भी देखने को मिलता है। उदाहरण के रूप में किसी स्त्री को कोई सम्मानजानकर पद प्राप्त है और काई पुरुष उसे अपने लिए ग्रहण करना चाहता है तो लड़की के पिता को पुरुष कई कम्बलों का उपहार भेजेगा। यदि ससुर उसे ग्रहण कर लेता है तो वह अपनी लड़की का विवाह उस पुरुष के साथ कर देता है। विवाह के बाद जब उसके पुत्र पैदा होता है तो उस पुरुष का ससुर दामाद से मिली भेंट से अधिक भेंट देता है। साथ ही उनका विवाह बन्धन भी टूट जाता है और स्त्री चाहे तो पुनः पिता के यहां जा सकती है। इसी बीच दामाद पुनः ससुर को भेंट देकर स्त्री के पद व नाम पर अधिकार बनाये रख सकता है। यह क्रम चलता रहता है और ऐसा माना जाता है कि जितनी बाद दामाद ने ससुर को भेंट दी, उतनी ही बार उसका विवाह उस स्त्री से हुआ है। प्रत्येक विवाह के बाद उस स्त्री की सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि समझी जाती हैं।

इस प्रकार पॉटलैंच में उपहारों का वितरण ही नहीं होता वरन् एक चुनौती भी होती है, यह औपचारिक विनिमय हमें चुनौती का आभास दिलाता है। साथ ही यह इस बात का सूचक भी है कि सम्पत्ति के स्वामित्व मात्र से ही सामाजिक प्रतिष्ठा की वृद्धि नहीं होती वरन् उसके वितरण से भी। मौस ने आशियना में यह विश्वास प्रचलित पाया कि उपहार में दी जाने वाली वस्तु की एक आत्मा होती है तो वापस देनेवाले

के पास जाने को उतावली होती है। इस विश्वास से बाध्य होकर ही उपहार पाने वाला प्रतिदान देता है। मौस उपहार को विखण्डित समाजों में स्वायत्त समूहों को एकता के सूत्रों में पिरोने का माध्यम मानते है। मलेशिया के कुछ भागों तथा दखिणी नीलघाटी की मंडारी जनजाति में भी पॉटलैच पाया जाना है।

कुला (Kula)

कुला उपहार विनिमय की विख्यात प्रथा है जिसका सर्वप्रथम विस्तार से वर्णन मेलिनोवस्की ने किया जो मैलेनिशिया और आस्ट्रेलिया में प्रचलित कई व्यवस्थाओं के समान है। यह प्रथा न्यूगिनी, ट्रोबियाण्डा द्वीप, एम्पलेट द्वीप (Amplett Island), लोफलें द्वीप (Loughaalan Island) तथा डोबू (Doubu) में पायी जाती है। इन लोगों की संस्कृतियां भिन्न-भिन्न है फिर भी वे कुला के प्रचलन में सहयोग देते है। कुला आर्थिक प्रकार्य ही नहीं करता है वरन् समारोहात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। कुला के साथ आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक, सांस्कृतिक जादुई एवं धार्मिक मूल्य, यात्राएं तथा मनोरंजन भी जुड़े हुए है। अतः यह इन सभी का संकुल है।

कुला प्रथा में प्रत्येक सक्षम व्यक्ति शंख के आभूषणों द्वारा दूसरे लोगों से विनिमय का साझा स्थापित करता है। ये आभूषण दो प्रकार के होते है-लाल शंख का हार जिसे "सौलवा" (Soulava) कहा जाता है तथा श्वेत शंख के बाजूबंद जिसे "प्लावी" (Mwali) कहते है। कुला में विनिमय करने वाले दोनों पक्ष एक ही वस्तु का विनिमय नहीं करते अर्थात् यदि एक पक्ष ने हार दिया है तो दूसरा पक्ष हार नहीं देता वरन् बाजूबंद देगा और बाजूबंद देने वाले को हार दिया जायेगा। आदान-प्रदान दोनों पक्षों के मिलने पर एक साथ नहीं होता और उसका प्रतिदान उसी समय न देकर अगली भेंट में दिया जाता है। यदि साझेदार पड़ोसी है तो भेंट जल्दी जल्दी भी दी जा सकती हैं विनिमय का भी एक क्रम होता है, सौलवा सदैव घड़ी के कांटे के क्रम में दिया जाता है। (Clockwise) जबकि म्वाली इसके ठीक विपरीत क्रम में (anticlockwise) दिया जाता है। उदाहरण के लिए, सौलवा यदि क, ख, ग, घ, क्रम में दिया जा रहा है। तो म्वाली घ, ग, ख, के क्रम में दिया जायेगा। इसे हम चित्र द्वारा स्पष्टतः समझ सकते है।

कुला विनिमय चार प्रकार से हो सकता है। प्रथम, एक ही कुला समुदायों में भी विभिन्न व्यक्तियों में परस्पर दिया जा सकता है। द्वितीय, दो पड़ोसी द्वीपों के समुदाय में, तृतीय समुद्र के पार एक-दूसरे के नजदीक वाले समुदायों में बिना किसी समारोह के आयोजन के तथा चतुर्थ समुद्र पर के समुदायों में समारोह का आयोजन करके विनिमय के रूप में।

कुला में प्राप्त कई वस्तुओं के खास नाम होते है। वे इतनी कीमती होती है कि उनके स्वामी का इतिहास सभी लोग जानते है। किसी को यदि यह ज्ञात होता है कि उनमें से कोई वस्तु उसके यहां आ रही है तो ह उत्साहपूर्वक इन्तजार करता है। कोई भी व्यक्ति कुला वस्तु को अधिक समय तक अपने पास नहीं रख सकता। कुछ समय रखकर वह शेखी बघार सकता है, उत्सवों एवं त्यौहारों पर पहन सकता है, उसके बाद पुनः वह उसे अन्य साझेदारों को लौटा देता है। जिन लोगों से एक बार कुलासम्बन्ध स्थापित हो जाते उनसे सदैव वे सम्बन्ध बने रहते है। (Once in kula always in kula) अतः यह स्थायी सम्बन्ध है।

कुला की वस्तुएं कीमती ही नहीं होती वरन् उन्हें रखने पर एक समुदाय की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। इसे प्राप्त करना गौरव समझा जाता है और लड़ाकू जनजातियों में आर्थिक लेन-देन से संघर्ष के अवसर कम हो जाते है। कुला से साझेदार को यश और भी प्राप्त होती है। दूर द्वीपों में कुला साझेदार उसके मित्र होते है। जो उसे अवसर आने पर शत्रुओं से सुरक्षा प्रदान करते है।

ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासी जब नावें लेकर अपने कुला साझेदारों से मिलने के लिए चलते है तो एक भव्य दृश्य

देखने को मिलता है। ऐसी यात्राओं पर जाने पूर्व वे कई जादूई क्रियाएं व धार्मिक संस्कार करते है। इस अवसर पर नयी नावें बनायी जाती है, पुरानी सुधारी जाती है तथा उन पर नक्काशी की जाती है। कभी-कभी ये यात्राएं सौ मील लम्बी से भी अधिक दूर की होती है। कुला यात्राओं पर जाते समय वे अवपने साथ उपहार नहीं ले जाते वरन् खाली हाथ जाकर अपनी उपस्थिति से दूसरे पक्ष को यह स्मरण दिलाते है कि उनका प्रतिष्ठा ऋण बाकी है। कुला यात्राओं में केवल पुरुष ही जाते हैं, स्त्रियां नहीं ये पुरुष एक गांव के या आस-पास के गांव में रहने वाले हो सकते है जो एक ही मुखिया के अधीन होते है। मुखिया ही ऐसी कुला यात्रा का खर्च उठाता है और नेतृत्व करता है। हर कोई व्यक्ति कुला सकूह का सदस्य नहीं बन सकता। सदस्य को कुला से सम्बन्धित जादू का ज्ञान होना चाहिए और समुदाय में एक निश्चित पद वाले ही उसके सदस्य हो सकते है भानजा अपने मामा के कुला समूह का सदस्य होता है। इसी तरह धनवान मुखिया के पुत्र भी कुला के सदस्य हो सकते है। यदा-कदा मुखिया की स्त्री भी मुखिया के साथ कुला आदान-प्रदान में भाग ले सकती है। सामान्यतः बच्चों व स्त्रियों को एक प्रकार के विनिमय में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

इस प्रकार कुला व्यवस्था केवल एक आर्थिक क्रिया ही नहीं वरन् इसके साथ सामाजिक प्रतिष्ठा एवं बल धर्म एवं जादू इतिहास और व्यापार भी जुड़ा हुआ है। कुला समूह में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति को नियमों का पालन करना होता है। ऐसा न करने पर उसे बहिष्कश्त कर दिया जाता है, उसकी आलोचना की जाती है।

वासी (Wasi)

मेलिनोवस्की ने कुला से मिलती-जुलती वासी (Wasi) प्रथा का उल्लेख किया है। ट्रोब्रियाण्डा द्वीप के भीतरी भागों में बसे गांव और तटीय गांवों में वस्तु विनिमय का तरीका वासी (Wasi) कहलाता है। तटीय गांवों में रहने वालों को द्वीप के भीतर जाकर खेती करने की स्वीकृति नहीं है और भीतरी गांवों को समुद्र के किनारे जाकर मछली मारने की इजाजत नहीं है। अतः इन दोनों गावों में आवश्यकता की पूर्ति के लिए विनिमय होता है। फसल के समय भीतरी गांव वाले अपने तटीय साथी के लिए याम (yam-एक प्रकार. की फसल) लाते हैं और उसके घर के सामने ढेर लगा देते है। तटीय गांव का निवासी इसके बदले में उसे मछलियां देते है। जहां कुला में सांस्कृतिक वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है, वहां वासी में भोज्य पदार्थों का। मछलियों को ले जाकर गांव वाले सभी को बांटते है। इसी प्रकार से याम भी बांटा जाता है। जिसे "सगाली" (Sagali) कहते है। वासी के सम्बन्ध भी हर किसी से नहीं रखे जा सकते वरन् ये परम्परागत होते है।

गिमवाली (Gimwali)

यह भी मुद्रा-रहित विनिमय है जिसमें वस्तुओं के बदले वस्तुओं का लेन-देन होता है और ऐसा करते समय बाजार में सौदेवासी होती है। एक व्यक्ति अपने साझेदारी से गिमवाली सम्बन्ध नहीं रख सकता। कुला में प्रतिष्ठा की वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है जबकि गिमवाली में घर-गृहस्थी की छोटी-मोटी चीजों का गिमवाली से सम्बन्धित ही एक दूसरे प्रकार का विनिमय बड़ी व महत्वपूर्ण वस्तुओं का होता है जिसे "लागा" (Laga) कहते है। जब छोटे सूअर के बदले भोजन या छोटी-मोटी चीजें प्राप्त की जाती है, तो वह गिमवाली कहलायेगा, परन्तु यदि बड़े सूअर के बदले महत्वपूर्ण वस्तुएं खरीदते है तो यह "लागा" कहलायेगा। बगीचे की भूमि का हस्तान्तरण भी "लागा" है। लागा एक सांस्कारिक खरीद (Ceremonial Purchase) भी है।

उपहार का एक तरीका पोकाला (Pokala) भी है। जब कोई व्यक्ति अपने मुखिया को वस्तुएं भेंट करता

है तो उसे पोकाला कहते है। मुखिया इसके बदले में व्यक्ति को राजनीतिक एवं धार्मिक सेवाएं प्रदान कर सकता है या कुछ भी नहीं दे, ऐसा भी सम्भव है। मुखिया द्वारा की गयी भेंट को येवला (Uoula) कहते है। येवला में दी गयी वस्तुएं अधिकांशतः कुला में प्राप्त मूल्यहीन वस्तुएं ही होती है, परन्तु प्रतिष्ठा की दृष्टि से वे महत्वपूर्ण है। इस प्रकार से कुला में प्राप्त होने वाली सांस्कृतिक महत्व को वस्तुएं "उरीगूबू" प्रथा द्वारा विभिन्न व्यक्तियों में हस्तान्तरित कर दी जाती है। ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासियों में वर्ष में एक बार भाई अपनी विवाहित बहिन के पति को लगभग तीन-चौथाई फसल भेंट करता है। इसे "उरीगूबू (Urigudu) कहते हैं।

एक व्यक्ति 'उरीगूबू' गांव के मुखिया अपनी बहिन के पति या परिवार को भी दे सकता है, बदले में मुखिया द्वारा उसे कुछ वस्तुएं दी जाती है। बाजार, व्यापार और विनिमय की उपर्युक्त सभी विधियां जो ट्रोब्रियाण्डा द्वीप में प्रचलित है, आदिम अर्थ-व्यवस्था के आवंटन के सिद्धान्त (Principle of Allocation) एवं पारस्परिकता के सिद्धान्त (Principle of Reciprocity) को प्रकट करती है।

साल्जबरी ने न्यूगिनी पहाड़ियों को सियान जाति में एक भिन्न प्रकार के विनिमय का उल्लेख किया है। विभिन्न स्वायत्त समूहों के बीच सूअर, शंख के आभूषण और सुन्दर पंखों वाले पक्षियों का विनिमय होता है जिसे "गिमाये" (Gimaiye) कहते है। बन्धुओं व पड़ोसियों के साथ कम कीमत की चीजों का दैनिक जीवन के दौरान आदान-प्रदान किया जाता है। जिसे "उमाये" (Umaiye) कहते है। जन्म, विवाह, हत्या के बाद मेल, फसल काटने के समय गिमाये उपहार दिया जाते है। यह उपहार वंश समूहों में विनिमय माना जाता है। लेने वाला पक्ष देने वाले पक्ष को धन्यवाद देता है। दी गयी वस्तु की मात्रा का प्रमाण रखने के लिए प्रत्येक वस्तु के बदले एक बांस का टुकड़ा रखा जाता है। जब दूसरे पक्ष के लिए प्रतिपादन का अवसर आता है तो इन टुकड़ों के सहारे उन्हें मिलाया जाता है। उमाये में जो एक ही वंश समूह में दिया जाता है। इस प्रकार का हिसाब नहीं रखा जाता। उन्हें खाना खिलाते है, फसल का एक भाग देते हैं और अतिथियों का सत्कार करते है। उमाये द्वारा ये लोग नमक प्राप्त करते हैं। लोगों का एक दल सूअर लेकर अपने मित्रों के यहां जाता है? उनके मित्र उन सूअरों को मारकर, अतिथियों को भोज देते है और विदाई के समय नमक की बड़ी-बड़ी पट्टियां भी दी जाती है। इस प्रकार यह ऐसे समूह से मंत्री बनाने व कायम रखने का साधन है जो विनिमय के अभाव में अपरिचित या शत्रु बने रहेंगे।

आदिम समाजों में विनिमय के लिए उपहार ही नहीं वरन् व्यापार का एक रूप मूक विनिमय (भूक अदला-बदली) (Dumb barter) है, जिसमें मोल भाव नहीं किया जाता। श्रीलंका के वेड्डा तथा उत्तर-प्रदेश के राजी लोगों में मूक अदला-बदली पायी जाती हैं ये लोग रात्रि के अन्धकार में एक स्थान पर अपने द्वारा उत्पादित वस्तुएं रख जाते है। और उसक बदले उन्हें जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उसका संकेत छोड़ जाते है। दूसरा समूह संकेत के अनुसार वस्तुएं रखकर अपनी जरूरत की वस्तुएं ले लेता है। पहले वाला समूह दूसरे दिन आकर रखी हुई वस्तुओं को ले जाता है। इसे हम शान्त व्यापार (Silent Trade) भी कह सकते है। आदिम जातियां अपने शत्रुओं से भी व्यापार करती है। मलाया के सेमंग पिग्मी जंगलों से संकलित वस्तुओं का व्यापार अपनी शत्रु जनजाति सकाई (Sakai) से करते है।

अफ्रीका के उत्तर-पश्चिमी तट पर निवास करने वाले आदिवासियों से कथगिनीयन (Carthaginian) व्यापारी भी मूक-व्यापार करते है। वे तट पर वस्तुएं रखकर आग जला देते है। धुआं देखकर आदिवासी लोग आते है और अपनी आवश्यकता की वस्तुएं लेकर बदले में सोना रख देते है। कुछ समय बाद कार्थागिनीयन लोग आकर सोना ले जाते है। सोने की मात्रा कम होने पर पुनः और प्राप्त करने की लालसा में वे इन्तजार करते है। जब उन्हें वाहित मात्रा में सोना मिल जाता है तो लौट जाते हैं।

कई जनजातियां नियमित रूप से व्यापार करती है। असम के नागा कलाकारीपूर्ण वस्त्रों का राजस्थान के भील कृषि में पैदा होने वाली वस्तुओं का तो टोडा दूध का और कोटा बांस की वस्तुओं का व्यापार करते है। ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासी वस्तु विनिमय को "गमवाली" कहते है। द्वीप के गांवों के निवासी लकड़ी का सामान बनाकर समुद्र तट पर फेरी लगाते है और बदले में नारियल व मछली लेते है। बुशमैन वस्तु विनिमय को सचापेरा (Schapera) कहते है। ऐयून (Auen) समूह अपने पड़ोसी नरोन (Naron) से चमड़े के वस्त्र और थैले प्राप्त करते है। वे बदले में लकड़ी की थालियां, चम्मच, धातु के बर्तन, भाले, चाकू, आदि देते है। नरोन बट्स्वाना (Batswana) लोगों से चमड़े हाथी दांत की वस्तुओं व पंखो के बदले तम्बाके व वमोटा अनाज प्राप्त करते है। स्त्रियों व पुरुषों के झुण्ड एक स्थान पर व्यापार के लिए जाते है।

बाजार (Market)

व्यापार व विनिमय के लिए जनजातियों में निश्चित समय एवं स्थान पर बाजार भी लगते है। पश्चिमी कीनिया की लुहया जनजाति के लोग अनाज, सब्जी, मुर्गियां व टोकरियां बेचते है। झील के किनारे बसने वाली शुओ जनजाति के लोग मछली, मवेशी और बर्तन बेचते हैं। इन बाजारों में संस्थापक और वंशज वहां आने वाले लोगों से चुंगी वसूल करते थे और बाजार से शान्ति रखने की जिम्मेदारी लेते थें घाना में भी चार-छह दिन के बाद बाजार लगते है लोग दे बाजारों के बीच की अवधि से दिन की गणना करते थे। उत्तरी धाना की कोन्कोम्बा (Konkonba) जनजाति में बाजारों की संख्या बहुत अधिक है। इस जनजाति के कई छोटे-छोटे कुल है जो अलग-अलग स्थानों पर रहते है। प्रत्येक कुल के पड़ोस में छह बाजार छह दिनों केलिए लगते है। प्रत्येक बाजार पर उस कुल का अधिकार होता है। जिसकी जमीन पर वह लगता है। वही बाजार का देवता व मन्दिर का पुजारी होता है। बाजार में पकड़े जाने वाले चोर को मन्दिर में मुर्गा चढ़ाना होता है। इनका विश्वास है कि यदि चोर का पता न भी लगे तो उन्हें बाजार के चारों ओर पेड़ों में लगी हुई मधुमक्खियां काट खायेगी। साप्ताहिक बाजार के अतिरिक्त कई जनजातियों के बीच बड़े बाजार भी लगते है। येन्दी एक ऐसा मुख्य बाजार है जो घाना की सभी जनजातियों के लिए वर्ष में एक बार लगता है।

बाजार केवल व्यापार का स्थान ही नहीं होता वरन् गपशप करने का स्थान भी होता है। न्यू ब्रिटेन की स्त्रियां बाजार में कन्द बेचने ही नहीं, अपने बचपन के साथियों से मिलने की आशा में जाती है। नाइजीरिया की टिव (Tiv) जाति के प्रेमी बाजार में अपनी प्रेमिका से मिलते हैं और योजनाएं बनाते है। अफ्रीकन बाजार में महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्य भी होते है। मुखिया व न्यायाधीश वहां कोर्ट लगाते है। और खरीदने वे बेचने वाले के बीच होने वाले झगड़ों को निपटाते है। बाजार के साथ-साथ धार्मिक क्रियाएं भी की जाती है। ईबो (Ibo) एवं टिव (Tiv) लोगों के बाजार का नाम भी देवताओं के आधार पर होता है। यह कहना बड़ा कठिन है कि जब मुद्रा प्रचलन नहीं था तो लोग वस्तुओं का सापेक्ष मूल्य कैसे तय करते थे। टी.एस. एप्सटीन का मत है कि सरल समाजों में बाजारों में अधिकतर खाद्य सामग्रिया ही आती थी जिनकी बिक्री न होने पर परिवार में ही काम में ले ली जाती थी।

अतः माल बेचने के लिए लोग विवश नहीं थे आधुनिक अर्थों में आदिम समाजों में बाजार नहीं थे और न ही मुनाफे की प्रवृत्ति। इस प्रकार आदिम समाजों में बाजार आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं धार्मिक सभी क्रियाओं के केन्द्र रहे है।

मुद्रा (Currency)-आदिम समाजों में हमारी तरह मुद्रा का प्रचलन तो नहीं रहा है परन्तु विनिमय एवं व्यापार का हिसाब तथा वस्तुओं की माप का साधन अवश्य रहा है। वस्तुओं की अदला-बदली के लिए पैसा न होकर बाल, पंख, सीप, पत्थर, आदि होते है। बुशर्मेन अण्डों के छिलकों की माला तथा तम्बाकू,

आदि मुद्रा के स्थान पर काम में लाते जाते है। न्यूगिनी की अनेक जातियां शेल मुद्रा का प्रयोग करती है। न्यू ब्रिटेन के तोलाई (Tolai) टुकड़ों में बांटा जाता है। प्रत्येक में निश्चित संख्या में शेल डाले जाते है। इनके विशेष नाम होते हैं और इनसे अपनी जाति के किसी भी व्यक्ति से कुछ भी खरीदा जा सकता

NOTES

परन्तु विदेशी व्यापारियों से नहीं। अन्त्येष्टि क्रियाओं में टंबू बांटा जाता है। जिसका प्रयोग चालू पूंजीह के नहीं करके व्यक्ति के मरने पर पुनः बांटने के लिए किया जाता है। टंबू के माध्यम से लोग विनिमय में लाभ प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखते। बाजार में सब्जी बेचने आयी स्त्रियां भी बिक्री के बाद जब उठती है तो सबसे बाद में उठने वाली स्त्री टंबू उठाकर दूसरी स्त्रियों को देती है जिसका अर्थ है कि वे स्त्रियां टंबू उठाने में उतावली नहीं है। कहीं-कही पर पशुओं का मुद्रा के स्थान पर प्रयोग किया जाता है।

रौसेल द्वीप (Rossel Island) में दो प्रकार की मुद्राएं प्रचलित है-न्डप (Ndep) तथा न्को (Nko) श्रेष्ठ किस्म के सिक्के होते है जो स्पोण्डिलस शेल (Spondylus shell) के बने होते है तथा न्को गियान्ट काम शेल (Giant Calm shell) की इन लोगों का विश्वास है कि अधिकांश सिक्के ईश्वर ने इस द्वीप के निश्चित स्थानों पर बनाये है। वे स्थान आज भी पवित्र माने जते है। न्डेप सिक्के बाईस किस्म के है। जब मानवशास्त्री आर्मस्ट्रांग यहां पहुंचा तो इनकी संख्या लगभग एक हजार थी। वहां के लोगों का मत है कि ये सिक्के सृष्टि के प्रारम्भ से चल रहे है और इनकी संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उन्हें इनके रंग एवं आकार के आधार पर पहचान सकते है। सबसे ऊपर वाले चार किस्म के सिक्के अभिजात वर्ग के समझे जाते थे। उनका मूल्य क्रम निश्चित था। वे मुखियाओं के पास ही रहते थे और कभी बाहर नहीं निकाले जाते थे बड़े सिक्कों के बदले छोटे या छोटे के बदले बड़ों का आदान-प्रदान नहीं होता था।"इनका उपयोग उधार पर ब्याज प्राप्त करने के लिए किया जाता था। एक व्यक्ति किसी से न्डेप उधार लेता तो लौटाते समय उसे ऊंची कीमत का न्डेप देना होता।

ऋण और उधार (Debt and Credit)

एक प्रश्न यह उठता है कि मुद्रा-रहित समाजों में उधार एवं ऋण की व्यवस्था पायी जाती है। ऋण जैसी व्यवस्था इन समाजों में पायी जाती है। कांगों राज्य के लेले (Lele) इस बात का हिसाब रखते है कि किसने कब कर्ज लिया है। प्रत्येक गांव में कर्ज का हिसाब रखने वाला एक अलग अधिकारी होता है जो याद रखता है कि किस गांव में कितना कर्ज बाकी है। प्राचीन समय में घाना में कर्जदार साहूकार को पहनने के लिए बुना हुआ कपड़ा देता था जिसे वह तब तक पहनता था जब तक कि फट न जाय। इसका उद्देश्य था कि सेवा का प्रतिदान मिलना चाहिए। ऋण लौटाने से पहले कपड़ा फट जाता तो और नहीं दिया जाता। जैसा कि हम कह चुके है, रौसेल द्वीप में एक सिक्का उधार लेने पर लौटाते समय उससे बड़ा सिक्का दिया जाता था। सिक्कों की मात्रा सीमित होने से यह नियम अधिक दिनों तक नहीं चल सकता था। ऐसी स्थिति में कर्जदार अभिजात वर्ग के मुखिया से उस वर्ग का सिक्का मांगकर कर्ज चुका संकता था। कर्ज पाने वाले साहूकार की इससे क्रय शक्ति नहीं बढ़ती थी वरन् वह आत्म-सन्तोष महसूस करता था।

कई समाजों में यह भी निश्चित होता है कि कर्ज कितना बढ़ाकर लौटाया जायेगा। कर्ज लौटाने की अवधि व लौटायी गयी रकम में सम्बन्ध होता था और प्रतिदान की कुछ दर भी थी। रौसेल द्वीप में कर्ज वसूल करने के लिए भी जादुई क्रियाए की जाती थी। कृषक समाजों में जमीन या आभूषण को गिरवी रखकर भी कर्ज लिया जाता है। कर्ज लेकर नहीं लौटाने पर यह डर भी रहता था कि भविष्य में उन्हें कोई कर्ज नहीं देगा। कर्ज सामाजिक व आर्थिक दोनों ही कारणों से लिया जाता है। उत्पादन बढ़ाने एवं विवाह, मृत्यु-भोज तथा अन्य उत्सवों को मनाने के लिए कर्ज लिया जाता है। कर्ज देना भी पूजी नियोजन है। मॉरीशस के भारतीय

हांगकांग के नावों पर रहने वाले तथा सरावक के कृषक दुकानदार का हिसाब महीने के अन्त में करते है, परन्तु पूरी रकम नहीं चुकाते उसका कुछ हिस्सा बाकी रखा जाता है जिससे वह बराबर ग्राहक बना रहे।

पूंजी (Capital)

एक प्रश्न यह पैदा होता है क्या मुद्रा रहित समाजों मेंपूंजी होती है? थर्नवाल्ड का मत है कि ऐसे समाजों में मवेशी और फसल की पूंजी है। पूंजी की धारणा प्रौद्योगिक विकास तथा नैतिक विचारों में परिवर्तनों के साथ-साथ बदलती रहती है। पशु-पालकों में पशु को पूंजी माना गया है तो शिकार करने वालों में शिकार के हथियार, तीर-धनुष, फंदे, वंशी आदि को पार्श पूंजी सम्पत्ति के उस भाग को मानते है जो उत्पादन के काम में लगायी जाया बोहनन के अनुसार, पूंजी कार्य करने की परम्परा और औजारों का सेट (Asset of tools) ह है। पश्चिमी दुनिया में मुद्रा को पूंजी माना गया हैं, परन्तु मुद्रा भी बाजार में आते ही औजार बन जाती है क्योकि वह भी उत्पादन में आराम प्रदान करते है, को कभी-कभी उत्पादन पूंजी कहा जाता है। वस्त्र धोने की मशीन यदि घर पर कपड़े धोने के काम आती है तो वह उपभोक्ता की पूंजी है, यदि उससे पैसा कमाया जाता है तो वह उत्पादक पूंजी करते है जिनका उपभोग तत्काल नहीं होता, परन्तु

जो भविष्य में उपभोग के लिए वस्तुओं की वृद्धि में लगायी जाती है। इसमें हम प्राविधिक ज्ञान एवं कला-कौशल को भी सम्मिलित कर सकते है। टिकोपिया समाजों में जाल, मछली मारने वाली बंसी, नाव कुल्हाडी, जमीन खोदने के लिए औजार तथा नारियल छोलने वाले औजार, आदि पूंजी माने जाते है। एक समय में एक चीज उत्पादन सामग्री है तो दूसरे समय में वह उपभोग सामग्री बन सकती है। पशुओं को पूंजी व बचत के रूप में माना जाता है। जावा के किसान पैसों से भैस खरीद लेते है और नकद की आवश्यकता पड़ने पर उसे पुनः बेच देते है। कुला विनिमय में वस्तु के बदले में वस्तु दी जाती है। इसमें उधार की भावना अथवा दूसरे के द्वारा दी गयी सम्पत्ति को भविष्य में काम में लगाने की भावना नहीं होती जबकि पॉटलैच में यह भावना मौजूद होती है। मुखिया पॉटलैच के लिए कम्बल एकत्रित करता है। देने वाला यह समझता है कि वह कर्ज दे रहा है, जिस पर उसे ब्याज मिलेगा।

आदिम अर्थ-व्यवस्था में सम्पत्ति (PROPERTY IN PRIMITIVE ECONOMY)

मनुष्य द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एकत्रित वस्तुओं को हम सम्पति कह सकते है। विभिन्न आर्थिक स्तरों में सम्पत्ति की धारणा बदलती रहती है। शिकार करने वालों में शिकार का क्षेत्र सामूहिक सम्पति माना जाता है। पशु-पालकों में पशुओं व चरागाह भूमि को सम्पति माना गया है। आधुनिक युग में मशीन, पूंजी, भूमि तथा प्रविधि को सम्पत्ति माना जाता है। वर्तमान में सम्पति का उपयोग आराम प्राप्त करने, इच्छाओं की पूर्ति करने व दूसरों पर अधिकार करने के लिए किया जाता है। इस अर्थ में आदिम समाजों में सम्पत्ति नहीं पायी जाती है। वहां पर आधुनिक समाज की तरह न तो पूंजीपति व मजदूर जैसे आर्थिक वर्ग ही है और न उनमें इतनी बड़ी आर्थिक खाई ही है। आदिम समाजों में पायी जाने वाली सम्पत्ति को प्रमुखतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता। एक, प्राकृतिक वस्तुए जैसे भूमि, नदी, नहर, समुद्र, खनिज पदार्थ, फल-फूल पेड़-पौधें आदि। दूसरी, मानव द्वारा निर्मित भौतिक वस्तुए जैसे मकान, कपड़ा, वस्त्र खोदने की छड़ी फन्दा, तीर-धनुष, आदि तीसरी, अभौतिक सम्पत्ति, जैसे जादू, धर्म, संगीत, कथाएं व उपकथाएं आदि। हम उनका यहां संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

(1) **प्राकृतिक वस्तुएं**-आदिम समाजों में प्रकृति द्वारा प्रदत्त अनेक वस्तुए सम्पत्ति मानी जाती है। भूमि,

प्रारम्भ से ही अचल सम्पत्ति मानी जाती रही है। शिकार करने, फल-फूल एकत्रित करने व पशुचारण करने का आदिम समाजों में एक निश्चित क्षेत्र होता है जिसे सामूहिक सम्पत्ति माना जाता है और सभी लोगों को उस भूमि में शिकार करने, फल-फूल एकत्रित करने व पशुपाचरण करने का अधिकार होता है। इस क्षेत्र में आने वाले नदी, तालाब पहाड़ समुद्र, आदि भी सामूहिक सम्पत्ति माने जाते है। भूमि को आदिवासी आर्थिक दृष्टि से ही नहीं देखते वरन् उसके प्रति वे धार्मिक एवं पवित्र दृष्टिकोण भी रखते है। अरुण्टा (Arunta) जनजाति में यह विश्वास प्रचलित है कि कुछ स्थज्ञान ऐसे है जहां उनके देवता निवास करते है, स्त्रियां गर्भ धारण करती है, टोटम निवास करता है या जहां सम्पूर्ण जनजाति की उत्पत्ति हुई है। वह स्थानसारे समूह के द्वारा पवित्र माना जाता 1 कई बार भूमि को व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में रखा जाता है। कृषक समुदायों में प्रत्येक व्यक्ति की कृषि योग्य भूमि होती है जिस पर वैयक्तिक अधिकार होता है। ओजिब्बा (Ojibwa) में कृषि योग्य भूमि वैयक्तिक सम्पति है तो एस्किमों में यह सामूहिक सम्पति। कभी-कभी कोई “जनजाति यदि दूसरे के क्षेत्र में पशु-चरण शिकार या फल-फूल एकत्रित करना चाहती है तो उसे उस भूमि में निवास करने वाली जनजाति के मुखिया की स्वीकृति लेनी होती है। अफ्रीका की जनजातियों में सम्पूर्ण भूमि का स्वामी तो राजा होता है, परन्तु वह उस भूमि पर बगीचा लगाने व फल पैदा करने के लिए उसे गोत्र व परिवारों में बांट सकता है। आस्ट्रेलियन, अफीकन, बुशमैन, श्रीलंका के वेग, साइबेरिया के टुंगस (Tungus) एस्किमों, कोमाची इण्डियन, शोशोनी (Shodhoni) भूमि को सामूहिक सम्पति मानते है तो ओजिब्बा एवं पश्चिमी अफ्रीका की जनजाति में भूमि व्यक्तिगत सम्पति मानी जाती हैं।

भोज्य पदार्थ की सम्पत्ति स्वीकार करने के बारे में जनजातियों में भिन्न-भिन्न मत हैं। डकोटा व जूनी जनजातियां भोज्य पदार्थों में अतिथियों व अन्य सदस्यों का हिस्सा मानती है वेढा स्त्री अपने पूरे समूह के लिए भोजन पकाती है। कोमांची (Comanchee) और कैनगैग (Kaingang) जनजातियों में शिकार के लोगों में भी वितरित किया जाता है। इस प्रकार भोज्य पदार्थों के बारे में पर्याप्त उदारता देखने को मिलती है, परन्तु ओजिब्बा में शीतकाल में पकड़ी गयी मछलियों पर पकड़ने वाले व्यक्ति का व्यक्तिगत अधिकार होता है।

(2) मानव निर्मित वस्तुएं-मानव द्वारा निर्मित वस्तुएं, जैसे औजार व उपकरण जो एक व्यक्ति के द्वारा बनाये जाते है, वह व्यक्तिगत सम्पत्ति ही होती है। फिर भी दूसरे व्यक्ति उनकी मांगकर अपने काम में ले सकते है और जब काम पूरा जो जाय तो उन्हें वापस लौटा देते है। कैनगैग और एस्किमों लोगों में औजार व उपकरण निर्मित करने वाले की सम्पत्ति तो होती है परन्तु आवश्यकता होने पर दूसरे है व्यक्ति भी उन्हें काम में ले सकते है।

(3) अभौतिक सम्पति (Non-corporeal property) : आदिम समाजों में जादू टोना, कथाएं, गीत-संगीत, आदि भी सम्पत्ति मानी जाती है। अतः एक गोत्र या वंश का कथाओं तथा जादू-टोना, आदि का भी हस्तान्तरण उसी प्रकार से होता है। जैसे भौतिक सम्पति का। ट्रोबियाण्डा द्वीप में भानजा अपने मामा की भौतिक सम्पति के साथ-साथ जादू-टोना व पद का भी उत्तराधिकारी होता है। हमने ऊपर पॉटलैच प्रथा का उल्लेख किया और देखा कि ई बार व्यक्ति प्रॉटलैच अपने पूर्वज के पद व नाम को ग्रहण करने के लिए भी देता है। अनेक जनजातियों में पद एवं जादू-टोने आदि को सीखने के लिए संघर्ष पाया जाता है। क्योंकि इनको प्राप्त करने पर व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा ऊंची हो जाती है।

उत्तराधिकार (Inheritance)-प्रत्येक समाज में उत्तराधिकार सम्बन्धी कुद विशेष नियम पाये जाते है पितृसत्तात्मक समाज में पिता से पुत्र को सम्पत्ति का हस्तान्तरण होता है। जबकि मातृसत्तात्मक में मामा की

सम्पत्ति का उत्तराधिकारी भानजा होता है। उदाहरण के लिए, ट्रावनकोर-कोचीन के राजा का उत्तराधिकारी उसका भानजा होता है। मातृसत्तात्मक गारो जनजाति में परिवार की सम्पति पर पुत्री का अधिकार होता है। जहां स्त्रियों को सम्पति के रूप में समझा जाता है, वहां उनका हस्तानतरण भी वस्तुओं की तरह ही होता है। वैक्स द्वीपवासियों में ब्रिटिश कोलम्बिया की जनजातियों में मामा की विधवा स्त्रियां भानजे को उत्तराधिकार में मिलती है।

सम्पति उत्तराधिकार में कहीं-कही ज्येष्ठाधिकार (Primogeniture) देखने को मिलता है। इफुगों एवं चुकची जनजातियों में सम्पति सभी पुत्रों में बांटी जाती है, परन्तु सबसे बड़ा पुत्र बहुत बड़ा हिस्सा प्राप्त . करता है। मसाई जाति में प्रमुख स्त्री का सबसे बड़ा पुत्र सम्पति का अधिकारी होता है। माओरी (Maori) जनजाति में भी पिता का पद सबसे बड़े पुत्र को ही मिलता है। ज्येष्ठाधिकार के पीछे कुद जनजातियों में यह विश्वास पाया जाता है। कि पति या पितामह या पूर्वजों की प्रेतात्मा ज्येष्ठ पुत्र में प्रविष्ट होकर पुनर्जनम लेती है। इसलिए कई अनुष्ठानिक समारोह केवल ज्येष्ठ पुत्र द्वारा ही किये जाते है। दक्षिणी अफ्रीका में बड़ा भाई पिता की सम्पति का प्रबन्धक या निक्षेपाधिकारी (Trustee) तो होता था परन्तु सर्वेसर्वाधिकारी नहीं। इसके विपरीत, कुछ जनजातियों में कनिष्ठाधिकार (Ultimogeniture) पाया जाता है, जिसमें परिवार के सबसे छोटे पुत्र या पुत्री को उत्तराधिकारी माना जाता है। बड़गा लोगों में लड़के विवाह के पश्चात् अलग घर बनाकर रहते है। और सबसे छोटा पुत्र ही माता-पिता के साथ रहता है। माता-पिता की मृत्यु के बार उसकी सम्पत्ति का अधिकारी भी वहीं होता है। खासी जनजाति (जो मातृसत्तात्मक है।) में भी सबसे छोटी लड़की परिवार में धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न कराती है और परिवार की चल व अचल सम्पति की स्वामी होती है। किरगिज व कुछ एस्किमों लोगों में भी कनिष्ठाधिकार प्रचलित है। कुछ जनजातियों में ज्येष्ठाधिकार या कनिष्ठाधिकार से भन्ति उत्तराधिकार के नियम है। कुछ जनजातियों में व्यक्ति की मृत्यु के साथ ही उससे सम्बन्धित वस्तुएं जला दी जाती है। ऐसी स्थिति में आनुवंशिक सम्पति होती ही नहीं तो उत्तराधिकार का भी प्रश्न नहीं उठता। मेंदू (Maidu) जनजाति में व्यक्ति की मृत्यु के साथ उसकी सारी जायदाद जला दी जाती है। ऐसिनिबोयन (Assiniboin) जनजातियों में तो मृतक के घोड़े भी मार दिये जाते है। पीमा (Pima) जनजाति में जिस घर में व्यक्ति मरता है, उसे या तो त्याग दिया जाता या जला दिया जाता था। ओना जनजाति के लोग मृतक को कपड़े में लपेटकर श्मशान में ले जाते और साथ ही उसकी कुटिया एवं अन्य वस्तुएं भी जला देते थे। केवल मशत व्यक्ति के कुत्ते ही उसके सम्बन्धियों को सौपे जाते थे। उड़ीसा की कन्ध (Kandh) जनजाति में सम्पति सभी पुत्रों में बराबर-बराबर बांट दी जाती है। श्रीलंका की वेळा जनजाति में पुत्रों के साथ-साथ पुत्रियां भी सम्पति की उत्तराधिकारी होती है। और उनकी सम्पति विवाह के बाद उनके पतियों को दे दी जाती है। टोडा लोगों में सबसे बड़े व सबसे छोटे पुत्र को बराबर सम्पति दी जाती है और शेष भाइयों को कमा अल्टेयम जनजाति में सम्पति का अधिकार पिता से पुत्र को, पुत्र न होने पर चाचा के पुत्र को तथा उसके भी पुत्र न होने पर लड़की को प्राप्त होता था। फिजीद्वीप की रीवा (Rewa) जनजाति में सम्पति हस्तान्तरण के नौ तरीके प्रचलित थे। पिता की ओर से पुत्री को सम्पति दी जाती थी। इस व प्रकार से सम्पति उत्तराधिकार नियमों में पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है। हम विभिन्न उत्तराधिकाकर नियमों को संक्षेप में इस प्रकार से प्रकट कर सकते है।

(i) सम्पति में उत्तराधिकार का ज्येष्ठाधिकार नियम पाया जाता है। जिसके अनुसार परिवार के सबसे बड़े पुत्र को उत्तराधिकार मिलता है।

(ii) मातृसत्तात्मक परिवार में सबसे बड़ी पुत्री को सम्पति का अधिकार प्राप्त होता है।

(iii) मातृसत्तात्मक परिवार में सबसे बड़ा भाई ही बहिन के परिवार की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है,

उसकी मृत्यु के बाद उसके छोटे भाई। सभी भाईयों की मृत्यु के बाद भानजे को उत्तराधिकारी मिलता है।

(iv) पितृसत्तात्मक परिवारों में सबसे छोटे पुत्र का सम्पत्ति का उत्तराधिकार होता है अर्थात् यहां कनिष्ठाधिकार नियम प्रचलित होता है।

(v) मातृसत्तात्मक परिवारों में सबसे छोटी पुत्री को कनिष्ठाधिकार नियम के अनुसार सम्पत्ति मिलती है।

(vi) किसी भी भाई को विशेषाधिकार न देकर सभी भाइयों को समानाधिकार प्राप्त होता है, परन्तु पुत्रियों को सम्पत्ति में अधिकार नहीं होता है।

(vii पुत्र के साथ-साथ पुत्रियों का भी सम्पत्ति में समान उत्तराधिकर प्राप्त होता है।

(viii) सबसे बड़े व सबसे छोटे पुत्र को अधिक सम्पत्ति व शेष भाइयों को कम सम्पत्ति दी जाती है।

(ix) मातृसत्तात्मक परिवार में कुछ सम्पत्ति तो मां की ओर से तथा कुछ पिता की ओर से दी जाती है।

(x) उत्तराधिकार का अभाव, जब सम्पत्ति मृतक के साथ ही जला दी जाती हो तो अधिकार का प्रश्न ही नहीं उठता।

ये सभी नियम भारत को विभिन्न जनजातियों में भी पाए जाते है। अतः इनका उल्लेख भारतीय जनजातियों, के उत्तराधिकार के सन्दर्भ में भी किया जाना चाहिए।

सम्पत्ति का स्वामित्व: आदिम साम्यवाद (OWNERSHIP OF PROPERTY : PRIMITIVE COMMUNISM)

अब तक के विवेचन से एक बात स्पष्ट है कि आदिम जगत में धन की लालसा और धन के आधार पर समाज में गहरी खाई, देखने को नहीं मिलती। आधुनिक जगत में सम्पति के आधार पर ही व्यक्ति का मूल्यांकन होता है, दो देश युद्धों का आह्वान करते है, किन्तु समाज में सम्पतित को लेकर इतना तनाव व सामाजिक विभेद नहीं पाया जाता है। वहां अधिकांश सम्पत्ति सामूहिक ही होती है। सभी व्यक्तियों के लिए जीवन के आवश्यक भौतिक मूल्य (भोजन, वस्त्र मकान) जुटाये जाते है। खाद्य सामग्री सारे परिवार, कुल जाति या गांव में बांटी जाती हैं संग्रहीत वस्तुओं का बेचना कभी-कभी असह्य और अपमानजनक भी माना जाता है। जब तक खाद्य पदार्थ उपलब्ध होते है, कोई भी आदिम समाज में भूखा नहीं रह पाता। एक परिवार व समाज का यह नैतिक कर्तव्य भी है कि सभी व्यक्तियों को भोजन, वस्त्र व मकान तो कम से कम मिल ही जाय। आदिकाल में ओना (Ona) लोग शिकार द्वारा पकड़ी हुई हेल मछली द्वीप के सभी लोगों में बांटते थे। डकोटा शिकारी जब शिकार द्वारा पकड़ी हुई हेल मछली द्वीप के सभी लोगों में बांटते थे। डकोटा शिकारी जब शिकार से सफलतापूर्वक लौटता तो गांव के वश्द्धजनों को एक भोज देता था। को जाति में एक व्यक्ति जीवन-भर कमाता व अपने पितृ गोत्र सम्बन्धियों का आतित्य करता। आस्ट्रेलिया व अफ्रीका की इराक्युज और नीग्रो शिकार को सभी वर्गों में बांट देते।

आदिम समाजों में सम्पत्ति के सामूहिक स्वामित्व के इस प्रकार के विचारों को देखकर ही उद्विकासवादियों ने यह धारणा बनायी कि आदिम समाजों में साम्यवादी व्यवस्था पायी जाती थी, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें व्यक्तिगत सम्पत्ति होती ही नहीं थी। ऐसे भी उदाहरण है कि पत्नी घर में बर्तनों की स्वामिनी होती थी तो पुरुष अन्य वस्तुओं का और वे एक-दूसरे की सम्पत्ति को बेच नहीं सकते थे। गोल्डन बीजर (Golden Weiser) का भी मत है कि ऐतिहासिक प्रमाण यह सिद्ध करते है सम्पत्ति मनुष्य की प्राचीन

काल से साथी रही है और निजी सम्पत्ति की धारणा न केवल मनुष्य में वरन् पशुओं तक में पायी जाती है। कुत्ता अपने स्वामी की सम्पत्ति पर अपना पूरा अधिकार समझता है। युगों के साथ-साथ सम्पत्ति की धारणा, स्वरूप, क्रियाशीलता और व्यावहारिक प्रयोग, आदि बदलते रहे है। आदिम समाजों में चल व अचल दोनों ही प्रकार की सम्पत्ति रही है। वस्त्र, पात्र, अस्त्र-शस्त्र तथा पशु आदि को चल सम्पत्ति माना गया है, जिसका अधिकारिणी थी तो पुरुष पशुओं का स्वामी। योकाधिर (yokaghir) जनजाति में शिकारी पति का बन्दुक पर तो पत्नी का सिलाई करने के उपकरणों पर अधिकार था। कुछ चल सम्पत्ति सामूहिक भी थी जैसे नाव मछली पकड़ने के फन्दे सम्पूर्ण परिवार के थे तो कहीं-कही पशु व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ-साथ सामूहिक सम्पत्ति भी माने जाते थे। अचल सम्पत्ति, जैसे भूमि, जो चाहे शिकार का क्षेत्र हो, पशु चरागाह हो या कृषि क्षेत्र सभी लोगों को सामूहिक सम्पत्ति रही है।

आदिम साम्यवाद को प्रकट करने के लिए लोबी ने दो तर्क दिये है एक, व्यक्तिगत स्वामित्व का अभाव और उसके स्थान पर सम्पूर्ण समूह का स्वामित्व हेनरीमेन भारतीय संयुक्त परिवार में सामूहिक स्वामित्व की धारणा से बहुत प्रभावित हुए और वे भी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सम्पत्ति का सामूहक स्वामित्व अति प्राचीन काल से विद्यमान है। मालाबार के मातृवंशीय परिवारों में सम्पत्ति सर्वनिष्ठ (सामूहिक स्वामित्व) होती है। द्वितीय, आदिम समाजों में कुछ सामाजिक नियम, प्रथाएं परम्पराएं व आचार ऐसे है जो साम्यवादी व्यवस्था से मिलते-जुलते है जैसे अतिथि सत्कार करना, खाने-पीने की वस्तुओं पर सामूहिक अधिकार मानना आदि। उदाहरण के लिए, जूनी जनजाति में यह विश्वास है कि यदि अतिथि का सत्कार नहीं किया गया तो खलिहान से अनाज अपने आप गायब हो जायेगा। डकोटा लोग यह मानते है कि खाने-पीने की वस्तुओं पर व्यक्तिगत अधिकार हो ही नहीं सकता। कुछ लोग इसे साम्यवाद नहीं मानते वरन् समाज के इस प्रकार के नियमों के पालन के पीछे कर्तव्य-बोध, नैतिकता, आतिथ्य की अभिव्यक्ति एवं शिष्टाचार का पालन मानते है।

डॉ. रिवर्स ने अनेक आदिम समाजों के वैयक्तिक एवं सामूहिक सम्पति के उदाहरणों द्वारा यह दर्शाने का प्रयत्न किया है। कि उनमें किस प्रकार की साम्यवादी व्यवस्था प्रचलित थी। हम यहां उसी का अनुसरण करेगे। एडीस्टोन द्वीपवारियों में भूमि और सम्पत्ति पर "टाविटी " समूह का अधिकार होता है। टाविटी समूह मातृपक्ष व पितृपक्ष के सदस्यों से मिलकर बनता है जो द्विपक्षीय परिवार की भांति ही है। एम्ब्रिज द्वीप में सम्पत्ति से सम्बन्धित समूह वातिनबुल (Vatinbul) था। वातिनबूल एक समूह किसी जमीन पर खेती कर सकता था और वह उस समूह की सम्पत्ति बन जाती थी। किसी भी वातिनबुल के नष्ट हो जाने पर वह पुनः गांव की हो जाती थी। एम्ब्रिज द्वीप में भी भूमि में भी भूमि सामूहिक सम्पत्ति ही मानी जाती """थी और "मेरी भूमि" के स्थान पर "हमारी भूमि" शब्द का प्रयोग किया जाता था। उनमें माला और गद्दा श्री सामूहिक सम्पत्ति मानी जाती थी। वै धनुष-बाण व फन्दे को व्यक्तिगत सम्पत्ति मानते थे। इस सन्दर्भ में एक विचारणीय बात यह थी कि कोई भी वस्तु व्यक्तिगत श्रम से बनायी गयी है या सामूहिक श्रम से। अधिकांशतः सामूहिक श्रम से निर्मित वस्तु सामूहिक सम्पत्ति ही होती थी से मलेनेशिया में भी सामूहिक सम्पत्ति इसलिए होती कि सामुदायिक श्रम से ही बनता परन्तु वह व्यक्ति या परिवार की सम्पत्ति होती थी। आदिम समाओं में सामूहिक वस्तुओं को लेकर साधारणतः वाद-विवाद नहीं उठते। मलेनेशिया के फिजी भाग में हमें साम्यवाद के दर्शन होते है। वहां कैरी कैरी नामक एक प्रथा है जिसके द्वारा व्यक्ति एक-दूसरे की सम्पत्ति ले सकते हैं। किसी व्यापार करने वाले फिजीवासी का माल उसके गोदाम में पहुंचाने वाला कोई भी व्यक्ति ले सकता है। पोलीनेशियन द्वीपवासियों में भी सम्पत्ति पर सामूहिक अधिकार पाया जाता है। अफ्रीका की बाण्टू जनजाति में राजा भूमि का स्वामी होने की अपेक्षा उसके उपभोग सम्बन्धी वैयक्तिक अधिकारों का वितरणकर्ता ही होता है। डुण्डाज ने बाण्टफ लोगों का उदाहरण देते हुए लिखा है कि वहां

भूमि का प्रत्येक भाग वैयक्तिक अधिकारों का वितरणकर्ता ही होता है। डुण्डाज बाण्टु लोगों का उदाहरण देते हुए लिखा है कि वहां भूमि का प्रत्येक भाग वैयक्तिक सम्पत्ति है। वहां कोई भी व्यक्ति अपनी सम्पति को बेच तो सकता है, परन्तु ऐसा करते समय वह अपने बन्धु समूह से स्वीकृति लेगा और पहला विकल्प उन्हें ही दिया जायेगा।

कार्डीनल ने पश्चिमी अफ्रीका के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में विविधताओं का उल्लेख किया है। गाल्डकोस्ट प्रदेश के उत्तरी भागों में सम्पत्ति वैयक्तिक मानी जाती है। किनारे पर रहने वाले लोगों में भूमि सारी जनजाति की सम्पत्ति वैयक्तिक मानी जाती है और समुदाय का कोई भी सदस्य बिना जोती हुई भूमि को साफ कर उस पर खेती कर सकता है। मध्यवर्ती प्रदेश में एक व्यक्ति जमीन को जोतकर यदि फिर छोड़ देता है तो भी उसका उस भूमि के वृक्षों पर अधिकार बना रहता है।

उत्तरी अमरीका में वैयक्तिक व सामूहिक स्ववामित्व अनेक अवस्थाएं देखने को मिलती है। मेक्सिकों के एजक लोगों में कालपुली नामक एक समूह होता है जो कुल के समान ही होता है कालपुली ही भूमि का स्वामी है। भूमि कालपुली के नर सदस्यों में बांट दी जाती है। और प्रत्येक को अपना भाग जोतना पड़ता है। यदि कोई भूमि नहीं जोतता हैं तो दो वर्ष बाद उसकी भूमि अन्य सदस्यों को सौप दी जाती है। मलेशिया के ऐडीस्टन द्वीप में एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की भूमि पर वृक्ष बोने का अधिकार था और यह सम्पत्ति उसकी व उसके वंशजों की मानी जाती थी। एक अन्य प्रथा के अनुसार एक व्यक्ति धार्मिक अनुष्ठान करके कुछ वृक्षों के फलों को उपयोग करने का अधिकार प्राप्त कर सकता था। एम्ब्रिज द्वीप एवं एपीस्टन द्वीप में कुछ वृक्षों के फलों का उपभोग धार्मिक व्यक्तियों तक ही सीमित था। उनका विश्वस रहा है कि यदि कोई व्यक्ति उन फलों की चोरी करेगा तो प्रेतात्माएं उन पर बीमारियां लायेगी। सम्भवत: यह धारणा इसलिए भी पैदा की गयी होगी जिससे उन वृक्षों का उपभोग एवं स्वामित्व उन्हीं तक या उनकी सन्तानों तक ही सीमित रह सके। अफ्रीका के टोंगों (Tango) लोगों में भूमि पर सामूहिक अधिकार था। लोबे (Lobe) जनजाति में कृषक की आज्ञा लेकर उसका खाली पड़ा खेत बोया जा सकता था पर साथ ही उसमें वृक्ष पैद करने का अधिकार वह सुरक्षित रख लेता था।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सामान्यतः भूमि व कुछ अन्य प्रकार की सम्पत्ति को सामूहिक मानने की प्रथा आदिम लोगों में प्रचुर मात्रा में रही है। यह सामूहिक स्वामित्व परिवार, कुल, अर्द्धांश (Moiety) या सम्पूर्ण गांव का हो सकता था। इन लोगों का जीवन प्रकृति के संघर्षमय था जिसमें लोगों से सहयोग की अपेक्षा की जाती थी। इसलिए कुछ विद्वान् उसे साम्यवा न मानकर आर्थिक सहयोग ही मानते है। दैनिक व्यवहार की वस्तुएं व चल सम्पति अधिकांशतः व्यक्तिगत सम्पत्ति रही है तो अचल सम्पत्ति व जीवन-यापन के साधन सामूहिक सम्पत्ति व्यक्तिगत श्रम से बनी सम्पत्ति पर वैयक्तिक स्वामित्व देखने को मिलता है तो सामूहिक श्रम से निर्मित वस्तुओं पर सामूहिक अधिकार। इस प्रकार आदिम साम्यवाद में निजी सम्पत्ति व व्यक्तिगत अधिकार भी था परन्तु वर्तमान समाज की तरह उसका कटु रूप नहीं था। जीवित रहने के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती थी उन पर सभी का सामूहिक स्वामित्व होता था। जनजातीय समाजों में साधारणतः किसी प्रकार का शोषण नहीं पाया जाता था।

भारतीय जनजातियों का आर्थिक संगठन (अर्थ-व्यवस्था) (ECONOMIC ORGANIZATION OF INDIAN TRIBES)

भारतीय जनजातियों में विभिन्न प्रकार की अर्थ-व्यवस्थाएं पायी जाती है। जनजातीय लोग जीविकोपार्जन के लिए कन्द, मूल, फल, शाक-पात, आदि का संकलन करते हैं, मछली मारते है व शिकार करते हैं,

दस्तकारी, पशुपालन एवं उद्योगों में काम करते है। कोई भी जनजाति किसी एक ही प्रकार की अर्थ-व्यवस्था के सहारे जीवित नहीं वरन् थोड़े बहुत सभी प्रकार के कार्य उनमें देखने को मिलते है। अतः हम भारतीय जनजातियों की अर्थ-व्यवस्था की मिश्रित अर्थ-व्यवस्था कह सकते है। संकलन करने वाले शिकार भी करते है और मछली भी मारते हैं तो पशुपालन करने वाले कृषि भी। कृषि करने वाले पशु-पालन के साथ-साथ दस्तकारी का कार्य भी करते है और उद्योगों में मजदूरों के रूप में भी। इस प्रकार से हम आजीविका कमाने की दृष्टि से किसी भी जनजाति को एक स्पष्ट श्रेणी में नहीं रख सकते।

अध्ययन की दृष्टि से हम भारतीय आदिवासियों में पायी जाने वाली अर्थ-व्यवस्था का वर्गीकरण प्रमुखतः पांच भागों में कर सकते है-(1) संकलन करने वाले एवं शिकारी, (2) पशुपालक, (3) कृषि करने वाले, (4) दस्तकारी करने वाले, (5) उद्योगों में काम करने वाले। हम इनका संक्षेप में यहां उल्लेख करेगे।

(1) **संकलन करने वाली एवं शिकारी जनजातियां-क**ई जनजातियां अपने जीवन-यापन के लिए जंगलों से कन्द, मूल, फल, शाक, सब्जी, आदि एकत्रित करती है। स्त्रियां व बच्चे जंगलों में टोकरी लेकर निकल पड़ते है और उन्हें वहां फल-फूल शाक-पात, आदि जो कुछ मिलता है, ले आते है। कुछ लोग शहद, कत्था, महुआ, गोंद आदि का संकलन कर उन्हें बेचकर अपना जीवन-यापन करते . है। ट्रावनकोर-कोचीन के कदार, माला पंडारम, पालीयन, पानीयन, कुरूम्बा उड़ीसा के बिरहोर, खड़िया तमिलनाडु के चेचू उत्तर प्रदेश के राजी आदि इसी प्रकार की अर्थ-व्यवस्था अपनाये हुए है। महुआ भारतीय जनजातियों के लिए कल्पवृक्ष है। वे इसके फल व पत्तो को खाते है और इससे शराब बनाते है। ये लोग जंगली आम, बड़ पीपल तेंदू आदि से अपनी खाद्य सामग्री आंशिक रूप से प्राप्त करते है। इनमें से कई फल मीठे एवं स्वादिष्ट है तो कुछ अरुचिकर स्वादहीन एवं कड़वे। दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त भविष्य के लिए भी वे संयच करते है, अधिक संकलन होने पर विनिमय एवं बिक्री के लिए ही करते हैं कुदाल, बांस के टोकरे, हड्डियां और धनुष-बाण ही इनकी सम्पत्ति होती है। शिकार व मछली से भी ये लोग भोजन प्राप्त करते है। शिकार का कार्य धनुष-बाण से करते है। इन्हें फन्दों का भी पर्याप्त ज्ञान है। ये लोग पक्षी, खरगोश, हिरण एवं अन्य छोटे जानवरों का शिकार व्यक्तिगत यप से करते है, परन्तु बड़े शिकार का आयोजन सामूहिक रूप से किया जाता है। संकलन एवं शिकार का एक निश्चित क्षेत्र होता है। संग्रहीत खाद्य एवं शिकार को सभी लोगों में वितरित किया जाता हैं।

(2) **पशुपालक जनजातियां-**जीविका पालन के लिए सम्पूर्ण रूप से पशुपालन पर आधारित जनजातियां में बहुत ही कम है। दक्षिण के नीलगिरि पर्वत की टोडा एवं हिमाचल प्रदेश के गुज्जर पशुपालन के द्वारा ही जीवन-यापन करते हैं। पशुपालन के लिए चरागाह की आवश्यकता होती है। अतः एक स्थान पर घास समाप्त हो जाने पर स्थान बदलना आवश्यक है। इसलिए इनका जीवन घुमन्तु प्रकार का होता है, उदाहरण के लिए हिमालय के गुज्जर सर्दियों में मेंदानों में आ जाते है और गर्मियों में पशुओं को लेकर चम्बा की पहाड़ियों में चले जाते है। दूध बेचकर ही ये लोग अपना जीवन-यापन करते है। अब ये लोग थोड़ी बहुत कृषि भी करने लगे है। उदाहरण के लिए हिमालय के गुज्जर सर्दियों में मैदानों में आ जाते है और गर्मियों में पशुओं को लेकर चम्बा की पहाड़ियों में चले जाते है। दूध बेचकर ही ये लोग अपना जीवन-यापन करते है। अब ये लोग थोड़ी-बहुत कृषि भी करने लगे हैं। उत्तर प्रदेश में भोटिया जनजाति के लोग खेती के साथ-साथ पशुपालन भी करते है। नीलगिरि के टोडा मैसों का पालन करते है। इनमें भैसे पवित्र मानी जाती है जिन्हें छूने की स्त्रियों को जाने की मनाही होती है। चूंकि इन लोगों की संस्कृति का आधार भैंस है, अत: इनकी संस्कृति "भैस

संस्कृति" (Buffalo Culture) के नाम से जानी जाती है।

(3) **कृषि करने वाली जनजातियां**-कई जनजातियां कृषि द्वारा अपना जीवन-यापन करती है, परन्तु इसके साथ-साथ ये कन्द-मूल एवं फल एकत्रित करने, शिकार करने तथा पशुपालन का कार्य भी करती है। इनमें कृषि भी दो प्रकार से की जाती है। कुछ जनजातियां स्थानान्तरित खेती करती है तो कुछ स्थायी। स्थानान्तरित खेती (Shifting cultivation) को अलग-अलग नामों से पुकारा गया है। नागा लोग इसे "झूम" मरिया इसे पेंडा, खोंड इसे "पोडू" बैगा इसे "बेवर" तो कुछ इसे "डाहि" या "डाहिया" कहते है। इस प्रकार की कृषि असम, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु आन्ध्र, ट्रावनकोर, कोचीन एवं कोंकण तट की जनजातियों में पायी जाती हैं इस प्रकार की कृषि में केवल मोटा अनाज, जैसे जौ, चना, मटर, मक्कई, बाजरा, आदि ही हो सकता है। इनमें फसल व भूमि दोनों को बर्बादी अधिक होती हैं।

कमार व बैगा भूमि के एक छोटे भाग को चुन लेते हैं। गर्मियों में उस स्थान के वृक्षों को काट डालते है। वर्षा होने के कुद सप्ताह पूर्व उन्हें जला देते है और राख बिखेर देते है। वर्षा के समय कुदाली से जमीन खोदकर बीज बो देते है। जहां "हो" का प्रचलन है वहां हो द्वारा खेती की जाती है। पोडू कृषि में पहाड़ी के ढलानों पर सीढीनुमा खेती की जाती है आन्ध्र के कोडा रेडी उड़ीसा के कुटिया खोंड व बस्तर के माड़िया इसी प्रकार की खेती करते है। यह कार्य बड़ा परिश्रम-साध्य है। इस प्रकार की खेती से कुछ समय के लिए तो उपज ठीक होती है परन्तु थोड़ी अवधि बाद भूमि की उर्वरा शक्ति घटने लगती है। अतः उस भूमि को छोड़ दिया जाता है और दूसरे स्थानों पर फिर इसी विधि से खेती की जाती है। इसमें जंगलों का विनाश होता है एवं भूमि में कटान बढ़ता जाता है। बैगा जनजाति खेतों में हल जोतकर कृषि नहीं करती। उनकी मान्यता है कि हल जोतना धरती माता के वक्ष पर अत्याचार करना है। कई जनजातियां स्थायी रूप से एक ही स्थान पर खेती करती है। राजस्थान में भील, गोड, तमिलनाडु के बडगा, कोट, इरूला, परजा बंगाल के संथाल असम के खासी मणिपुरी, बिहार के मुडा, हो, उरांव, उत्तर प्रदेश के थारू माझी और हिन्दू, आदि इसी प्रकार की खेती करते है। आधुनिकता के सम्पर्क में आकर ये नवीन खाद, बीज एवं यन्त्रों का प्रयोग भी करते लगे है और इनमें भी कई किसान समद्धि हो गये है।

(4) **दस्तकारी करने वाली जनजातियां**-कई जनजातियां शिल्प उद्योग एवं दस्तकारी द्वारा जीवन-यापन करती है। वे छोटे-मोटे वस्त्र निर्माण, टोकरी, चटाई, रस्सी बर्तन एवं धातुओं की वस्तुए बनाने का काम करती है। गोंड लोग धातुओं की वस्तुएं बनाते है, कपड़ा बुनते है, तथा बेंत का सामान व मिट्टी के बर्तन बनाते है। कोरवा व अगरिया भी धातु के बर्तन बनाते है। उड़ीसा के बिरहोर जंगल की लताओं से सुन्दर रस्सियां बनाते है। घासी मरे हुए जानवरों के तांत बनाते है। इरूला बांस की टोकरियां व चटाइयां बैगा, कमार, चैचू (Chenchu) बांस के बर्तन थारू लोग खेती के साथ-साथ बर्तन टोकरियां, वाद्य यन्त्रं रस्सो, चटाई, आदि बनाने कार्य भी करते हैं। कई कृषि करने वाली जनजातियां खाली समय में दस्तकारी का कार्य करती हैं।

(5) **उद्योगों में लगी हुई जनजातियां**-औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण से समाज के विभिन्न वर्गों को प्रभावित किया है। जनजातीय समुदाय भी इनके प्रभावों से मुक्त नहीं रहे और आज अनेक जनजातियां अपना जीवन-यापन नौकरी करने या उद्योगों में श्रमिकों के रूप में कार्य करके कर रही है। इनमें से कई लोग जंगलों व गांवों को छोड़कर शहरों में आ बसे है। कई जनजातीय लोग असम व दार्जिलिंग के चाय बागानों में काम कर रहे है। मध्य प्रदेश के मेंगनीज उद्योगों में अनेक जनजातियां

काम करती है। जमशेदपुर में लोहे के कारखाने और रानीगंज व झरिया की कोयला खानों में अनेक संथाल, हो और अन्य जनजातीय लोग लगे हुए है। हम यहां विद्यार्थियों की सुविधा के लिए दो भारतीय जनजातियों के आर्थिक जीवन का उल्लेख करेंगे जिससे यह ज्ञान को सकेगा कि किस प्रकार आर्थिक क्रियाएं संस्कृति के सम्पूर्ण प्रतिमान को तय करती है।

खडिया जनजाति का आर्थिक जीवन (ECONOMIC LIFE OF KHARIA TRIBE)

खडिया जनजाति मयूरभंज, ढालभूमि, सिंहभूमि और बड़ा भूमि (मानभूम) के जंगलों के निवास करती है। ये लोग अभी तक आधुनिक सभ्यता के अधिक सम्पर्क में नहीं आये हैं इन्हे खाद्य-पूर्ति के लिए सदैव प्रकृति से संघारत रहना होता हैं ये लोग यहां उपलब्ध लोहे की खानों से कच्चा लोहा प्राप्त कर यन्त्र और औजार बनाते हैं जो शिकार करने, मछली मारने, लकड़ी काटने बर्तन बनाने, लकड़ी के सामान व कंधे, आदि के काम में आते है। ये लोग तुम्बी पेड़ों की छाल व पत्तियों आदि वनस्पतियों से अनेक वस्तुएं बनाते है जैसे पानी व अनाज भरने के बर्तन एवं रस्सियां आदि। ये लोग शहद एकत्रित करने के लिए सीढ़ियां, झोंपड़ी तथा बिछोने, आदि भी वनस्पतियों से, बनाते है। ये बांस से चटाई, टोकरी व अन्य सामान बना लेते है। पहाड़ पर निवास करने वाले खडिये “झूम” कृषि करते है जिससे ये रामकली या उड़द कलाई की दाल पैदा करते है, परन्तु इस कर्शश से उनका गुजारा नहीं हो पाता। अतः ये लोग शहद, फल-फूल एवं कन्द-मूल आदि एकत्रित करके अपना गुजारा करते है। चावल इनका प्रिय भोजन है, परन्तु वे इसे प्रतिदिन प्राप्त नहीं कर पाते। इन्हें एक-दो दिन में जब भी चावल मिल जाता है, तो वे अपने आपको भाग्यशाली समझते है। कई बार तो उबली हुई सब्जियों, खाने योग्य कन्द-मूलों एवं पत्तों से ही इन्हें गुजारा करना होता है। जब पुरुष कन्द-मूल-फल एकत्रित करने जाते है तो स्त्रियों को ही घर की देखभाल करती होती है। तलहटी में रहने वाले लोग मजदूरी करके भी अपना जीवन यापन करते है। पहाड़ी खडिया चिड़िया पकड़ते है, उन्हें खाते और बेचते भी है।

खड़िया बस्तियों का आकार भी भिन्न-भिन्न है। पांच से दस परिवारों के समूह पहाड़ी ढालों में बसे है जो लगभग प्रत्येक सौ गज की दूरी पर देखने को मिलेगे। इनमें से जो लोग आधुनिक सभ्यता के सम्पक में आ गये है, वे अस्थायी गांवों में निवास करते है। ईसाई खडियाओं के गांव अधिक साफ-सुथरे है। पहाड़ी छेल्को खडियाओं में अविवाहित युवक-युवतियों के लिए अलग-अलग युवागृह (Dormitoricsaa) बने होते है। पहाड़ी खडियां बांस को रगड़ कर आग पैदा करते है। माचिस उनके लिए विलासिता की वस्तु है। शिकार व संचय करने वाले अधिकांश खडिया अपनी खाद्य पूर्ति जंगलों से ही करते है। ये लोग पानी में उबालते है। कुछ लोग प्याज, हल्दी, नमक, आदि मिलाकर मांस, दाल व सब्जियां पकाना भी सीख गये है। ये लोग महुआ, सरगुजा और तिल के फूलों को पीसकर मिट्टी के बर्तन में भूनकर टिकियां बनाते है। चावल को इमली की चटनी के साथ खाते है। ये चावल व महुआ की शराब पीने से पूर्व पूर्वजों व प्रेतात्माओं को इसका भोग चढाया जाता है।

कूकी जनजाति का आर्थिक जीवन (ECONOMIC LIFE OF KUKI TRIBE)

यह जनजाति असम की लुशाई पहाडियों में निवा करती हैं। इनकी बस्ती चार-पांच झोपडों से मिलकर-बनी होती है। ये लोग झोपड़े बनाने के लिए बांस और बेंत काम में लेते है। ये लोग घुमन्तू जीवन व्यतीत करते है। परिवार का मुखिया विवाह के बाद अपने लड़कों को गृहस्थी की कुछ वस्तुएं देकर अलग घर बसाने के लिए दूसरे गांव भेज देता है और वह उस गांव में स्वतन्त्र शासक की तरह रहता है। यदि पिता का किसी

पड़ोसी सरदारों से संघर्ष होता है तो उसके पुत्र उसकी मदद करते है। सबसे छोटा पुत्र ही पिता के पास गांव में रहता है और पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है। नवीन परिस्थितियों में जहां परिवार के सभी लोग एक ही गांव में सम्मिलित रूप में रहते हैं वहां सबसे बड़ा पुत्र ही उत्तराधिकारी होता है। मुखिया व जनसाधारण की पोशाक में अन्तर होता है। मुखिया पगड़ी हपनता है जिसमें कौआ का पंख होता है। स्त्रियां कमर टंकने तक का वस्त्र ही पहनती है और छातियों को भी ढंकती है। इन्हें शरीर पर गुदवाने का भी शौक है इनमें स्त्री व पुरुष दोनों ही धूम्रपान करते है। इनकी चिलमें बांस की बनी होती है। योद्धा लोग पैसे की बनी खाल की ढाल तथा लोहे व बांस के मालों एवं तीर-धनुष, आदि का प्रयोग करते है। कूकी लोगों के रहने के स्थान साधारणत: बांसों के घने जंगलों से ढंके होते है। इन क्षेत्रों में दूसरे पेड़ों का उगना भी कठिन है। वर्षा ऋतु में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना तो और भी कठिन हो जाता है। इन जंगलों में हाथी, चीते, तेन्दुए हिरण बिसन व जंगली भैसे पाये जाते है समशद्ध किसान अपने स्वयं के हाथ रखते है जो जंगल के भीतर से लकड़ी ढोने का कार्य करते है। कूकी लोग भालू व सूअर का शिकार भी करते है। ये लोग सूअर तथा कुत्ते भी पालते है। इनमें बीमारियों व विपदाओं के समय बकरे, बत्तख, मुर्गे, भैसे, आदि की बलि देकर देवताओं को प्रसन्न किया जाता है। घुमन्तू लोग झोपड़ियां बनाने में दक्ष होते है जिन्हें ये लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते ही शीघ्र ही तैयार कर लेते है। ये लोग बांस से ही अपनी अधिकांश आवश्यकताएं पूरी कर लेते है। टोकरियां, चटाइयां, चिलमें, मछली पकड़ने के जाल, पशुओं के लिए फंदे बुनने के औजार व चूल्हे भी बांस के बनाते है। इन लोगों के वाद्य यन्त्र भी बांस के बने होते है। ये बांस के अंकुर को चावल के साथ उबालकर खाते है। इस प्रकार से कूकी जनजाति की संस्कृति की धुरी बांस है। ये लोग स्थानान्तरित खेती जिसे "झूम" कहते है, करते है। इसके लिए जंगल के सभी वंशों को जला दिया जाता है। केवल एक पेड़ खेत के बीच में रख दिया जाता है जिसमें ये प्रेतात्मा का निवास मानते है। फसल काटते समय पेड़ में बसने वाली प्रेतात्मा के लिए बलि चढ़ाई जाती है। जब यह भूमि उपज देना कम कर देती है तो उसे छोड़ दिया जाता है और खेती के लिए कोई अन्य स्थान चुन लिया जाता है। ये लोग खेती से प्राप्त केवल उतनी फसल ही अपने घर ले जाते है जितनी की उन्हें आवश्यकता है। शेष फसल पालतू जानवरों के लिए छोड़ दी जाती है। शराब पीने का इन्हें खूब शौक हैं कूकी लोगों की अधिकांश आर्थिक आवश्यकताएं बांस से पूरी होती है। अतः ये बांस के जंगलों को पवित्र स्थान मानते है जिनमें उनके देवता निवास करते है।

इस प्रकार से उपर्युक्त दोनों जनजातियों के उदाहरण से स्पष्ट है कि आदिम जातियों का जीवन प्राकृतिक पर्यावरण से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है तथा इनका आर्थिक जीवन इनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की धुरी है।

अभ्यास-प्रश्न

1. आदिम अर्थ व्यवस्था से आप क्या समझते है? इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें।
2. आदिम अर्थव्यवस्था कैसे संचालित होती है? स्पष्ट करें।
3. किसी एक जनजाति की अर्थ व्यवस्था का उल्लेख करें।
4. भारतीय जनजातियों की अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षण कौन-कौन से हैं?
5. आदिम अर्थ-व्यवस्था पर एक समोलोचनात्मक समीक्षा करें।

NOTES

भारत में जनजातियों समस्याएँ
(Problems of Tribes in India)

भारत विविध मान्यताओं का देश है जहां अनेक संस्कृति, भाषा, धर्म, प्रजाति एवं सम्प्रदाय के लोग बसते हैं। इन विविधताओं का एक कारण भारत की भौगोलिक विशेषता कही जा सकती है। भौगोलिक विशेषता के कारण यहाँ अनेक ऐसी जनजातियां बसती हैं, जो आज भी सभ्यता से अत्यधिक दूर हैं क्योंकि ये लोग सुदूर जंगलों, पहाड़ों अथवा पठारी क्षेत्रों में अपना जीवन-यापन करते हैं। इस कारण ये लोग अत्यधिक पिछड़े हुए हैं। ये लोग खानाबदोशी झुण्ड, कंबीले, गोत्र समूह, भ्रातृदल, मोइटी आदि के रूप में रहते हैं। इन्हें जनजाति, आदिवासी अथवा वन्यजाति आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। इन जनजातियों को समाज-शास्त्रियों व अन्य विद्वानों ने विविध नामों से उच्चरित किया है-हट्टन इन्हें आदिम जाति कहते हैं, जिसका अर्थ है देश के वास्तविक निवासी। रिसले, लैसी, ग्रिग्सन, ठक्कर, एलविन एवं सोवर्ट आदि विद्वान् इन्हें आदिवासी नाम से सम्बोधित करते हैं। टैलेंट्स, सैंजनिक तथा मार्टिन ने इन लोगों को सर्वजीववादी कहा है। सरवेन्स ने इन्हें पर्वतीय जनजातियों कहा है। वेन्स ने इन्हें वन्यजाति नाम दिया है, जबकि जी.एस. घुर्ये ने इन्हें तथाकथित आदिवासी अथवा पिछड़े हुए हिन्दू नाम दिया है। भारतीय संविधान में इनका नाम अनुसूचित जनजातियां दिया गया है। एक नाम इनका गिरिजन भी विद्वानों द्वारा दिया गया है।

bdkÃ&7
tutkfr;ksa dh leL;k,a

जनजाति का अर्थ एवं परिभाषायें (Meaning and Definition of Tribe)

1. गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, "स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी संग्रह को, जो एक सामान्य क्षेत्र में रहता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो, जनजाति कहते हैं।"
2. रिवर्स के मतानुसार, "जनजाति एक ऐसा सरल प्रकार का सामाजिक समूह है, जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध आदि सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।"
3. मजूमदार के शब्दों में, "एक जनजाति परिवारों या परिवारों के एक समूह का संकलन होता है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग में रहते हैं, समान भाषा बोलते हैं और विवाह, व्यवहार या उद्योग के विषय में निश्चित निषेधात्मक नियमों का पालन करते हैं और पारस्परिक कर्तत्यों की एक सुविकसित व्यवस्था को मानते हैं।"
4. हॉबल के मत में, "एक जनजाति एक सामाजिक समूह है, जो एक विशेष भाषा बोलता है तथा एक विशेष, संस्कृति रखता है जो उन्हें दूसरे जनजाति समूहों से अलग करती है। यह अनिवार्य रूप से

राजनैतिक संगठन नहीं हो।"

5. चार्ल्स विनिक एक जनजाति में क्षेत्र, भाषा, सांस्कृतिक समरूपता तथा एक सूत्र में बांधने वाले सामाजिक संगठन को लेते हैं जो सामाजिक उप-समूहों, जैसे-गोत्रों या गांवों का सम्मिलित कर सकता है।

6. राल्फ पिडिंगटन ने एक जनजाति की व्यक्तियों के एक समूह के रूप में व्याख्या की है, जो एक समान भाषा बोलता हो, समान भू-भाग में निवास करता हो तथा जिसकी संस्कृति में समरूपता पाई जाती हो।

7. इम्पिरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया के अनुसार, "एक जनजाति परिवारों को एक संकलन है, जिसका एक नाम होता है, जो एक बोली बोलती है, एक सामान्य भू-भाग पर अधिकार रखती है या अधिकार जताती है और प्रायः अन्तर्विवाह नहीं करती रही है।"

उपर्युक्त विद्वानों द्वारा गई विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि जनजाति एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसकी विशेष संस्कृति होती है, निश्चित भू-भाग होता है, सामान्य भाषा होती हैं और जो विवाह आदि में विशेष नियमों का पालन करते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर जनजाति की अग्रलिखित विशेषतायें अथवा लक्षण हो सकते हैं।

जनजाति की विशेषतायें (Characteristics of Tribe)

1. **सामान्य भाषा (Common Language)**-एक जनजाति के लोग सामान्य भाषा को प्रयोग करते हैं जिसके माध्यम से वे अपने विचारों का स्पष्टीकरण करते हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह भाषा हस्तांतरित होती रहती है। इससे उनकी पारस्परिक एकता एवं संगठन विकसित होता रहता है।

2. **सामान्य संस्कृति (Common Culture)**-एक जनजाति की सामान्य संस्कृति होती है जिसके अनुसार उनके रीति-रिवाज, प्रथा, कानून, नियम, खान-पान, मूल्य, विश्वास एवं लोकाचारों, आदि में समानता पाई जाती है। सभी इनका समान रूप से पालन करते हैं, जिससे उनके जीवन के तरीके, व्यवहार, दृष्टिकोण आदि में एकरूपता नियन्त्रित और संचालित होती है।

3. **सामान्य भू-भाग (Common Territory)**-एक जनजाति की प्रमुख विशेषता यह है कि यह एक निश्चित भू-भाग में रहती है, जिसके फलस्वरूप इनमें समुदायिकता की भावना विकसित होती है, किन्तु कुछ विद्वानों के मत में जनजाति की यह विशेषता आवश्यक नहीं है। वह घुसन्तू समाज भी हो सकता है।

4. **एक नाम (One Name)**-प्रत्येक जनजाति का कोई-न-कोई नाम अवश्य होता है जो उस जनजाति की पहचान होता है उसी नाम के आधार पर उस विशेष जनजाति की विशेषताएं स्पष्ट होती हैं।

5. **अन्तर्विवाह (Endogamy)**-जनजाति की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि जनजाति के सदस्य सामान्यतया अपनी जनजाति में विवाह सम्बन्ध स्थापित करते हैं। अपवाद रूप में कोई-कोई जनजातियां बहिर्विवाही भी हो सकती हैं।

6. **सामान्य निषेध (Common Taboo)**-मजूमदार ने जनजाति की यह भी विशेषता बताई है कि एक जनजाति के सदस्य विवाह, व्यवसाय, खान-पान व उद्योग आदि के विषय में सामान्य निषेधों को पालन करते हैं। इसके फलस्वरूप उनमें एक सुदृढ़ व्यवस्था विकसित होती है।

7. **राजनैतिक संगठन (Political Organization)**-प्रत्येक जनजाति का एक निश्चित राजनैतिक संगठन होता है। समाज का कोई प्रमुख अथवा वयोवृद्ध व्यक्ति उनका मुखिया होता है जिसकी आज्ञा का पालन करना सभी का कर्तव्य होता है। आज्ञा का उल्लंघन करने पर दण्ड की व्यवस्था रहती है।

8. **आर्थिक आत्म-निर्भरता (Economically Self-Sufficient)**-जनजातियों के खान-पान का आधार फल-फूल, जंगली जानवरों का शिकार अथवा पशुओं से प्राप्त दूध एवं कृषि आदि होता है अतः प्रत्येक जनजाति अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करती है। फल-फूल इकट्ठा करना, शिकार करना, पशु चारण एवं कृषि आदि साधनों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेती है साथ ही कभी-कभी पड़ोसियों से विनिमय करके आवश्यकतओं को पूरा कर लेती है। इस तरह वह आत्म-निर्भर होती है।

9. **विस्तृत आकार (Big Size)**-जनजाति की एक विशेषता यह भी हैं कि जनजातियां कई परिवार, गोत्र, भ्रातृदल व मोइटी आदि से युक्त होती हैं। इनमें वंश समूह होते हैं इसलिए इनका आकार संगठित होता है। नातेदारी के आधार पर इनका सामाजिक संगठन अतिविस्तृत होता है।

जनजातियों की समस्यायें (Problems of Tribes)

भारतीय संविधान के अनुसार कुल 212 अनुसूचित जनजातियां हैं किन्तु भारत के विभाजन अथवा शरणार्थी आदि कारणों के आधार पर इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। जनजातीय कार्य मंत्रालय वर्षांत समीक्षा 2022 की पीआईबी की रिपोर्ट के अनुसार अनुसूचित जनजातियां (एसटी) भारत की जनसंख्या के लगभग 8.6 प्रतिशत हैं जिनकी संख्या लगभग 10.4 करोड़ है। इतनी बड़ी जनसंख्या वाले समूह की अनेकानेक समस्यायें हैं जिनके कारण इनकी जीवन-चर्या व रहन-सहन आदि प्रभावित हो रहा है।

1. घुर्ये ने इन जनजातियों की समस्याओं के विषय में अपना विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा था कि इन जनजातियों की समस्यायें अपने मूल स्वरूप में पिछड़े हुए हिन्दुओं और खेतिहर श्रमिकों की समस्यायें हैं। उन्होंने इनकी समस्याओं के आधार पर समूहों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है-

   (i) वे जनजातीय समूह, जो एकीकरण की लड़ाई में सफलतापूर्वक लड़े हैं और जो हिन्दू समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त हैं।

   (ii) वे जनजातीय समूह, जिनका आंशिक हिन्दूकरण हुआ है और जो हिन्दुओं के अतिनिकट हैं।

   (iii) वे जनजातीय समूह, जो पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते हैं और जिन्होंने किसी बाहा संस्कृति को स्वीकार नहीं किया है।

   घुर्ये के मतानुसार इन जनजातीय समूहों की समस्याओं की जानकारी व उनका समाधान सम्भव नहीं है अथवा अति कठिन है।

2. मजूमदार व मदान ने जनजातियों से सम्बन्धित समस्याओं को दो रूपों में विभाजित किया है-

   (i) प्रथम, सामाजिक आर्थिक समस्यायें जो आधुनिक नीतियों एवं कानूनों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई हैं अथवा गैर जनजातियों के सम्पर्क के कारण उत्पन्न हुई हैं, जैसे-भूमि का हस्तांतरण अथवा कर्ज लेने के कारण जमींदारों, व्यापारियों अथवा सरकारी कर्मचारियों द्वारा शोषण आदि।

(ii) दूसरी समस्योयें जनजातियों की अपनी विशिष्ट समस्यायें हैं, जो अपनी परम्परागत आर्थिक क्रियाओं के परित्याग के कारण उत्पन्न हुई हैं अथवा भूदान, भू-शोषण आदि से उत्पन्न हुई हैं।

3. ए.आर. देसाई ने इन जनजातियों की समस्याओं पर विचार करते हुए कहा है कि इनकी समस्यायें कृषि श्रमिकों, कारीगरों, व कृषकों आदि की समस्याओं के समान हैं जो वास्तव में शोषण का परिणाम कही जा सकती हैं देसाई का कहना हैं कि हर काई, जैसे-साहूकार, जमींदार व बिचौलिये आदि इन लोगों का शोषण कर रहे हैं। देसाई के मत में इनकी समस्याएं वास्तव में आर्थिक व राजनैतिक हैं, संस्कृति के अस्तित्व से सम्बन्धित हैं, आजीविका से सम्बन्धित समस्याएं रोजगार की सुरक्षा, उच्च जीवन-स्तर, शिक्षा एवं आधुनिक जीवन की सुविधाओं की कमी आदि हैं। इस प्रकार इनकी समस्याएं समाज एवं संस्करति की व्यवस्था से सम्बन्धित हैं।

4. वेरियर एल्विन ने इन जनजातियों की समस्याओं के विषय में लिखा है कि "जनजातियों की संस्कृति अन्य समूहों से भिन्न है। इनकी विशिष्ट सामाजिक संरचना विशिष्ट ऐतिहासिक परम्परा की उपज है। ऐसी स्थिति में संचार व्यवस्था एवं संचार साधनों के कारण जनजाति के समूह दूसरे समूहों के सम्पर्क आने लगे हैं जिससे इन समूहों की संस्कृति को बड़ा खतरा हो गया है।"

5. निर्मल कुमार बोस ने अपने एक लेख में जनजातियों की समस्याओं के निवारण के लिए व उनके एकीकरण के लिए एक मॉडल की व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका मानना है कि समाज की प्रकृति को देखकर ही जनजातियों की समस्याओं का निवारण सम्भव है।

6. श्यामाचरण दुबे के मत में, जनजातियों की समस्याओं को सामान्य रूप से न देखकर, उन्हें राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक हितों से सम्बद्ध एवं सन्तुलित करने की एक निश्चित कार्यप्रणाली के रूप में देखा जाना आवश्यक है।

   इस प्रकार उपर्युक्त सभी विद्वानों ने जनजातियों की समस्याओं पर पर्याप्त विचार किया है और माना है कि इनकी समस्याएँ-शोषण, राजनीति, शिक्षा का अभाव, गैर जनजाति लोगों से सम्पर्क एवं आर्थिक आदि से सम्बन्धित हैं।

7. इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवांस स्टडी, शिमला एवं भारतीय सामाजिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में मई, 1972 में विज्ञान भवन, नई दिल्ली में एक गोष्ठी मानवशास्त्रियों द्वारा जनजातियों की समस्याओं के सम्बन्ध में आयोजित की गयी। जिसमें इनकी समस्याओं को अग्रलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया है।

   1. देश की राजनैतिक प्रतिक्रियाओं में जनजातियों के भाग लेने के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याएं-

      1.1 नवीन राजनैतिक संस्कृति का उद्गम तथा इसके संगठनात्मक तथा विघटनात्मक पहलू।

      1.2 पृथकता और अशान्ति में वृद्धि

   2. देश की आर्थिक प्रक्रियाओं में जनजातियों के भाग लेने के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याएं--

      2.1 बाजारी अर्थ व्यवस्था का जनजातियों की परम्परागत अर्थ-व्यवस्था पर प्रभावा

      2.2 भूमि समस्याएं।

      2.3 जनजातियां और औद्योगीकरण की समस्या।

      2.4 जनजातियां और नवीन आर्थिक अवसर।

2.5 जनजातियों द्वारा अपरम्परागत व्यवसायों को अपनाना।

3. देश की सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में जनजातियों के भाग लेने के परिणामस्वरूप उत्पन्न समस्याएं-

3.1 सामाजिक-सांस्कृतिक अस्तित्व का प्रभाव।

3.2 अन्य वर्गों के साथ समानता।

3.3 जनजातीय समूह के नवीन स्वरूप की उत्पत्ति।

3.4 प्रकट व अप्रकट तनाव-संघर्ष।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि जनजातियों की उपर्युक्त समस्याएं गैर-जनजातियों के सम्पर्क एवं संचार साधनों के प्रसार के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई हैं।

इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्स स्टडी, शिमला में एक सेमिनार जनजातियों की समस्याओं से सम्बन्धित आयोजित की गयी थी। उसमें विभिन्न विद्वानों के लेखों के सार रूप में जनजातियों की निम्नलिखित समस्याएं प्रकाश में लाई गयी थीं-

1. सम्पूर्ण जनजातियों को एक बहुत बड़ा भाग पहाड़ी प्रदेशों में, वन प्रदेशों में तथा देश के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहता है। ये जनजातियां पृथक्-पृथक् समूहों में निवास करती हैं, जहां इनका अपना बहुमत होता है। ये सभी समूह जीवन पद्धति, आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था, संस्कृति एंव भाषा आदि में एक-दूसरे से भिन्नता रखते हैं। अतः इन समूहों की समस्याओं की विवेचना करना अत्यन्त कठिन है। यह एक बड़ी समस्या है।

2. यद्यपि संविधान में जनजातियों को शोषण से मुक्ति दिलाकर उनके विकास करने की ओर ध्यान दिया गया है, किन्तु सेठ साहूकार, जमींदार, व्यापारी व सरकारी अफसर आदि आज भी इनके लिए वन उत्पादन अथवा कर्ज आदि पर आश्रित है। अतः इन लोगों का शोषण भी किसी-न-किसी रूप में होता रहता है। इस प्रकार श्रम आर्थिक पक्ष से सम्बन्धित इनकी समस्याएं आज भी विद्यमान हैं।

3. इन जनजातियों की समस्याएं राजनैतिक चेतना से सम्बन्धित भी हैं तथा विकसित संचार व्यवस्था के कारण क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांग आज मुख्य समस्या होती जा रही है।

4. इन जनजातियों की समस्याएं पुनर्वास से सम्बन्धित भी हैं। विभिन्न क्षेत्रों में कारखानों की स्थापना, बाँध निर्माण एवं अन्य नवीन प्रयोगों के परिणामस्वरूप इनका विस्थापन एवं पुनर्वास एक बड़ी समस्या बन गया है।

5. जनजातियों की एक बड़ी समस्या यह है कि जब इन्हीं में से कोई व्यक्ति उच्च पद को प्राप्त कर लेता है तो वह अपने वर्ग से बिल्कुल कर जाता है। उदाहरण के लिए जनजातियों के कई व्यक्तियों ने नये व्यवसायों को अपना लिया है और वे प्रधानकर्ता बन गये हैं और वे अपने लोगों से ठीक उसी प्रकार बेगार ले रहे हैं, जिस प्रकार सेठ साहूकार इन लोगों से लेते थे यह एक समस्यात्मक स्थिति है।

6. अनुसूचीकरण से सम्बन्धित भी एक गम्भीर समस्या है-वह यह है कि राजनैतिक प्रभाव के परिणामस्वरूप विशेष सुविधाएं प्राप्त करने के उद्देश्य से अनेक लोगों के नाम जनजातियों की अनुसूची में डलवा दिये गये हैं किन्तु अब इन लोगों की स्थिति इतनी सुधर चुकी है कि इनका नाम अनुसूची में होना ही नहीं चाहिए यह भी एक समस्या है।

7. इन जनजातियों को राष्ट्रीय मुख्य धारा से जोड़ने एवं उनके एकीकरण से सम्बन्धित समस्या भी

NOTES

गम्भीर रूप से आज सामने आ रही है। इसके लिए इन्हें संचार एवं यातायात के साधनों से जोड़ना आवश्यक है, जो स्वयं में एक बड़ी समस्या है।

जनजातियों से सम्बन्धित उपर्युक्त समस्याएं गोष्ठियों व सेमिनारों के सन्दर्भ में प्रकाशित की गई हैं। इनका विस्तार से अध्ययन करने पर अग्रलिखित समस्यायें आधारों पर वर्गीकृत की जा सकती हैं-

1. **आर्थिक समस्याएं (Economic Problems)** -जनजातियों की सबसे महत्वपूर्ण समस्या आर्थिक है। इन लोगों के पास न तो पर्याप्त भोजन होता है, न पर्याप्त वस्त्र, रहने के लिए उचित स्थान भी नहीं होता यह सब अर्थ की कमी के कारण है। आर्थिक समस्याएं निम्नलिखित हैं:

1.1 स्थानांतरित खेती सम्बन्धी समस्या (Problems Related Shifting Cultivation)- जनजातियों का बहुत बड़ा भाग-अनुमान: 80 प्रतिशत कृषि पर आधारित है। निर्जन वनों व पहाड़ियो पर रहने के कारण वहां जीविकोपार्जन के साधन अति सीमित हैं-कुछ जनजातियां पहले वनों में आग लगा देती हैं और फिर उस पर कृषि कार्य करती हैं। जब वह भूमि कृषि योग्य नहीं रह जाती तो उसे छोड़कर अन्यत्र चली जाती हैं इस प्रकार से ये लोग आदिम खेती करते हैं। यहीं स्थानांतरित कृषि है। इस प्रकार की खेती से उपज बहुत कम और घटिया होती है, भूमि की बर्बादी होती है. और इनकी मेहनत भी बेकार जाती है जिसके परिणामस्वरूप इन लोगों को भूखे तक रहना पड़ता है-सदियों से कुछ जनजातियां इसी प्रकार की स्थानांतरित कृषि करती आ रही हैं। जिसके कारण इन्हें अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

1.2 नवीन-भूमि व्यवस्था सम्बन्धी समस्याएं (Problems Related to New Land Tenure System) - पहले जनजातियाँ जंगलों को काट कर अथवा उसमें आग लगाकर स्थानांतरित कृषि किया करती थीं और भूमि पर उनका एकाधिकार होता था, जिसका प्रयोग वे स्वेच्छा से किया करती थीं, किन्तु नवीन कानूनों के परिणामस्वरूप उनकी यह स्वतन्त्रता उनसे छिन गयी है। अब उनकों सीमित भूमि सरकार द्वारा दी जा चुकी है किन्तु इस भूमि का जोतकर खेती करते हुए वे डरती है कि चतुर सेठ-महाजन उन्हें कुछ रूपया उधार देकर उनकी जमीन उनसे छीन लेते हैं और ये लोग अपनी ही जमीन पर नौकर बनकर कार्य करते हैं और महाजनों की चालाकी को नहीं समझ पाते-यह इनकी बड़ी समस्या है।

1.3 वनों से सम्बन्धी समस्याएं (Problems of Industrial Labour) खानों, चाय बागानों व कारखानों आदि में कार्यरत जनजातीय श्रमिकों की समस्याएं और भी अधिक गम्भीर हैं। अपने परिश्रम का न तो उन्हें उचित मूल्य दिया जाता है, न रहने के लिए समुचित स्थान कार्य की अवस्थायें अतिशोचनीय हैं। धुआं, गन्दगी व घुटन से भरा वातावरण उन्हें मौका मिलते ही गांव की ओर भागने के लिए विवश कर देता है। ठेकेदारों द्वारा यहां भी उनकी भर्ती और उनसे काम लेने की प्रथा शोषण युक्त होती है-ये लोग न अपने अधिकारों को जान पाते हैं न ठेकेदारों की चतुर नीतियों को। जिसके परिणामस्वरूप अस्थिर रूप में पशुवत् ये लोग अपनी सेवायं समर्पित करते रहते हैं।

1.4 ऋणाग्रस्तता की समस्या (Problems of Indebtedness)-जनजातियों का जीवन जन्म से-मृत्यु पर्यन्त अभाव में बीतता है। इन्हें अपनी उदर-पूर्ति के लिए भी महाजन आदि से ऋण लेना पड़ता है। इनकी अज्ञानता व अशिक्षा का लाभ महाजन व साहूकार बखूबी उठाते हैं और इन भोले-भाले लोगों को घोड़ा ऋण देकर ज्यादा पर अंगूठा आदि लगवा लेते हैं, जिससे कालान्तर में उसकी चुकती न होने पर इनकी जमीन आदि भी साहूकारों की हो जाती है और कर्ज के भार से फिर भी मुक्ति न

मिलने के कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी ये लोग उनके दास बन जाते हैं। इस प्रकार एक बार की ऋमग्रस्तता इनके जीवन की बड़ी समस्या बन जाती है।

NOTES

2. **सांस्कृतिक समस्याएं (Cultural Problems) -** जनजातीय लोग भौगोलिक दृष्टि से पहाड़ी इलाकों, वनों व सीमावर्ती स्थलों में रहते हैं, जहाँ समाज की संस्कृति से इनका सम्पर्क नहीं हो पाता। दूसरी ओर कुछ जनजातियों के जीवन में बाह संस्कृति सम्पर्क कर उनके लिए अनेक समस्याएं उत्पन्न कर देती है। जनजातियों के जीवन में बाह संस्कृति सम्पर्क कर उनके लिए अनेक समस्याएं उत्पन्न कर देती है। जनजातियों की सांस्कृतिक समस्याएं निम्नलिखित हैं-

2.1 **अन्तर्जनजातीय सांस्कृतिक विभिन्नता की समस्या (Problem of Intra - Tribal Cultural Differences)**-जनजातियों की अन्तर्जनजातीय सांस्कृतिक विभिन्नता की समस्या का कारण ईसाई मिशनरियाँ तथा हिन्दुओं से उनका सम्पर्क माना जा सकता है। एक ओर ईसाई मिशनरियों ने जबर्दस्ती जनजातियों को ईसाई बनाया। दूसरी ओर कुछ जनजाति के लोग हिन्दुओं की जातिप्रथा के अन्तर्गत अपने को ले गये-चूंकि सभी लोगों ने ऐसा नहीं किया, परिणामस्वरूप जनजाति के लोगों में परस्पर तनाव, संघर्ष अथवा विरोध हो गया। इस प्रकार अन्य संस्कृति को अपनाने के कारण ये लोग अपने जनजातीय समूह से अलग हो गये और अपनी संस्कृति को नीचा समझने लगे। साथ ही उन संस्कृतियों की भी बराबरी न कर पाने के कारण उनमें सांस्कृतिक और व्यक्तिगत दोनों प्रकार के विघटन उत्पन्न हो गये।

2.2 **भाषा सम्बन्धी समस्या (Problem of Language) -** बाह्य संस्कृति के सम्पर्क के परिणामस्वरूप जनजातियां दूसरी संस्कृति की भाषा को अपनाने लगती हैं और कालान्तर में अपनी भाषा के प्रति उदासीन होने लगती हैं। यहाँ तक कि अपनी भाषा को भूल ही जाती हैं। इसके कारण एक ही जनजाति के लोगों के परस्पर आदान-प्रदान में बाधा उत्पन्न होने लगी है। इससे सांस्कृतिक मूल्यों का भी पतन होने लगा है। सामाजिक विघटन की स्थिति है जो जनजातियों की एक महत्वपूर्ण समस्या है।

2.3 **जनजातीय ललित कलाओं का ह्रास (Decline of the Tribal Fine Arts)**-बाह संस्कृति के सम्पर्क के परिणामस्वरूप जनजातियां अपनी स्वयं की कला, जैसे-नृत्य, संगीत, लकड़ी का कार्य व नक्काशी का कार्य आदि को भूलती जा रही हैं। नृत्य, घर की सजावट व शरीर की सजावट आदि इन जनजातियों का विशेष शौक है। धीरे-धीरे ये लोग अपने खेल आदि को भी भूलते जा रहे हैं अथवा इन रुचियों के विषय में उदासीन होते जा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन जनजातियों की ललित कलाएं समाप्त ही हो जायेंगी। इन कलाओं का पतन भी एक सांस्कृतिक समस्या है।

2.4 **धार्मिक समस्याएं (Religious Problems)**-इन जनजातियों पर हिन्दू व ईसाई धर्म का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। भील, गौंड आदि जनजातियाँ हिन्दू धर्म से प्रभावित हैं। किसी भी समस्या व आपत्ति के समय सभी अपने-अपने धर्म का सहारा लेते हैं। चूंकि इन जनजातियों पर हिन्दू व ईसाई धर्म का प्रभाव पड़ा है। अतः वे इन धर्मों में विश्वास तो करने लगी हैं, लेकिन अपनी समस्याओं को हल करने के साधन उन्हें नहीं मिल सके हैं। परिणामस्वरूप उनमें असन्तोष की भावना व्याप्त हो गयी है। पारिवारिक विघटन, भेद-भाव, लड़ाई-झगड़े आदि भी उनमें असन्तोष की भावना व्याप्त हो गयी है। पारिवारिक विघटन, भेद-भाव, लड़ाई-झगड़े आदि भी उनमें बढ़ने लगे हैं। धर्म से सम्बन्धित समस्या भी बाह संस्कृति के सम्पर्क का ही परिणाम है।

3. **स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं (Problems Relating to Health)**-जनजातियों की समस्या स्वास्थ्या से सम्बन्धित भी है। जहां इन्हें दो वक्त का भोजन की मुश्कित से ही मिल पाता हो, वहां अच्छे व सन्तुलित आहार की तो बात ही अलग है। इसके अतिरिक्त बाहा संस्कृतियों के कारण भी इनके स्वास्थ्य से सम्बन्धित अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं, जिन्हें इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है--

3.1 **खान-पान (Food and Drink)**-निर्धनता के कारण जनजातियां सन्तुलित भोजन नहीं ले पाती, जिसके कारण इनका स्वास्थ्य खराब रहता है। अनेक रोग इन्हें सताते हैं। प्राचीन समय में ये जनजातियां ताड़, महुआ अथवा चावल के द्वारा निर्मित मादक द्रवों का सेवन करती थीं। इस पेय में विटामिन "बी" व "सी" अधिक होता है, अतः तब इनका स्वास्थ्य ठीक रहता था। धीरे-धीरे सरकार ने इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया है, किन्तु बाह संस्कृति के प्रभाव के कारण शराब का प्रचलन इन लोगों में बढ़ गया है, जो नुकसानदेह है। इससे भी इनका स्वास्थ्य बिगड़ रहा है।

3.2 **वस्त्र (Clothes)**-स्वास्थ्य से सम्बन्धित इन जनजातियों की समस्या वस्त्रों की भी है। पहले ये जनजातियां वस्त्र विहीन रहती थीं, किन्तु अब इन लोगों ने बाह संस्कृतियों के प्रभाव में आकर वस्त्र धारण करना प्रारम्भ कर दिया है। चूंकि इनकी आर्थिक स्थिति खराब है, अतः एक से अधिक वस्त्र न होने से ये लोग गन्दे रहने लगे हैं, इससे ये लोग चर्म रोगों के शिकार हो रहे हैं। बरसात में भी कपड़े बदन पर ही भीगते व सूखते हैं, इससे अनेक प्रकार के रोग, गन्दगी आदि हो जाती है। यह बड़ी समस्या है।

3.3 **चिकित्सा का अभाव (Absence of Medical Aid)**-जनजातियों को पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता। परिणामस्वरूप इनमें अनेक प्रकार के रोग, जैसे चेचक, तपेदिक, हैजा, टाइफाइड, अपच व मलेरिया आदि हो रहते हैं। इन रोगों का कारण गन्दगी, गीले वस्त्र पहिनना व इनका प्रदूषित वातावरण होता है। रोगों की अधिकता होने के साथ उनकी चिकित्सा का अभाव पाया जाता है। न तो इन लोगों को बीमारियों व उनके उपचार के सम्बन्ध में विशेष जानकारी होती है, न ही इनका डॉक्टरी इलाज में विश्वास होता है। ये लोग बीमार होने पर झाड़-फूँक, जादू-टोना व जंगली जड़ी-बूटियों का प्रयोग करते हैं। इससे इनकी बीमारी और बढ़ जाती है। डॉक्टरी सहायता भी इन्हें समय रहते उपलब्ध नहीं हो पाती, क्योंकि ये लोग अत्यन्त दुर्गम स्थानों में रहते हैं जहां आवागमन के साधनों का भी अभाव होता है। सारांशतः सफाई की कमी, पौष्टिक आहार की कमी, दुर्गम स्थलों में निवास तथा चिकित्सा का अभाव आदि अनेक समस्याएं इन लोगों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित हैं।

4. **शिक्षा सम्बन्धी समस्याएं (Problems Related to Education)**-जनजातियों की समस्त समस्याओं को मूल कारण उनकी अशिक्षा ही है। समस्त जनजातियां अशिक्षा व अज्ञानता से ग्रसित हैं। अशिक्षा के कारण अनेक कुरीतियों, अन्धविश्वास व कुसंस्कार उनमें व्याप्त हैं। ऋणग्रस्तता व भूमि-स्वामित्व का स्थानान्तरण अशिक्षा का ही परिणाम है। वे सदैव शोषित व उपेक्षित रहे हैं। आज शिक्षा का प्रावधान उनके लिए किया है, किन्तु वे उसके प्रति उत्साही नहीं हैं, क्योंकि यह शिक्षा उनका जीवन निर्वाह करने में अक्षम है, शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर भी वे बेरोजगार ही रहते हैं और जो शिक्षित होकर किसी पद को प्राप्त भी कर लेते हैं, वे अपनी संस्कृति से दूर होते जाते हैं। इस प्रकार शिक्षा उनका बहुत अधिक हित नहीं कर पा रही। इसके अतिरिक्त शिक्षित बेकारी की समस्या भी इन लोगों में उत्पन्न हो रही है। प्रायः जनजातियों के लोग मुश्किल से ही प्राथमिक स्तर पर ही शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं, प्राविधिक, विज्ञान अथवा उच्च शिक्षा में उनकी रुचि नहीं होती और अशिक्षित

रहने के कारण उनका जीवन अन्धकारमय हो रहा है।

5. **सामाजिक समस्याएं (Social Problems)**-शहरी एवं सभ्य समाज के सम्पर्क के कारण जनजातियां अनेक सामाजिक समस्याओं से ग्रसित हो गयी हैं। कुछ सामाजिक समस्याएं निम्नलिखित हैं.....

NOTES

5.1 **बाल-विवाह (Child Marrige)**-प्रायः जनजातियों में युवावस्था में विवाह होते थे किन्तु अब उनमें बाल-विवाह होने लगे हैं, जो हिन्दुओं के सम्पर्क का परिणाम है। यह एक समस्या है, जिससे स्वयं हिन्दू भी अनेक शताब्दियों से पीड़ित हैं और जनजातियों के लिए भी एक बड़ी सामाजिक बन गयी है।

5.2 **कन्या मूल्य (Bride Price)**-पहिले जनजातियों में कन्या मूल्य वस्तुओं के रूप में दिया जाता था, किन्तु वर्तमान समय में अब इसे रूपये के रूप में मांगा जाने लगा है और इसकी मात्रा में भी अब इतनी वृद्धि होने लगी है कि सामन्य आदि व्यक्ति इसे कठिनाई से दे पाता है। यह एक ऐसी समस्या है जो सम्पूर्ण समाज में ही व्याप्त है। इसके परिणामस्वरूप जनजातियों में कन्या-हरण की समस्या भी बढ़ रही है।

5.3 **युवागृहों का पतन (Decline of Dormitories)**-जनजातियों में मनोरंजन के साधन के रूप में पहिले युवागृहों का प्रचलन था, जहां जाकर युवा लड़के-लड़कियां न केवल मनोरंजन व आमोद-प्रमोद में सम्मलित होते थे, अपितु वहां उन्हें सामाजिक, सांस्कृतिक एवं उनके कर्तव्य के विषय भी शिक्षा मिलती थी। यह एक महत्वपूर्ण संस्था थी। वर्तमान समय में सभ्य संस्कृति के सम्पर्क के कारण अब ये लोग युवागृहों को हेय दृष्टि से देखने लगे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि अब जनजातियों के जीवन अनेक हानियां हुई हैं।

5.4 **वेश्यावृत्ति की समस्या (Problem of Prostitution)**-इन जनजातियों की एक समस्या अनुचित यौन सम्बन्ध की भी है। एक ओर ठेकेदार व साहूकार इनका भरपूर शोषण करते हैं और उनकी स्त्रियों के साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित करते हैं दूसरी ओर जो पुरुष खानों व श्रमिक उद्योगों में कार्य करते हैं व घर से दूर रहते हैं, वे वेश्यावरत्ति जैसे प्रलोभन में फँस जाते हैं और अपने गाँव लौटने पर अनेक रोग अपनी स्त्रियों में फैला देते हैं, इससे वे भी अनेक गुप्त रोगों की शिकार हो जाती हैं। अब तो विवहा-विच्छेद की समस्या भी इन लोगों में होने लगी है। यह सभ्य संस्कृति के सम्पर्क का परिणाम है। इस प्रकार अनेक पथायें, परम्परायें, रूढ़ियां आदि भी अब टूट रही हैं, जो आप में एक सामाजिक समस्या कही जा सकती है।

6. **राजनैतिक समस्याएं (Political problems)**-पहले जनजातियों में एक परम्परा राजनैतिक व्यवस्था प्रचलित थी, जिसमें वंशानुगत एक मुखिया होता था, जो समस्त प्रशासनिक कार्यों को करता था, किन्तु अब उन्हें प्रशासन की नवीन व्यवस्था को अपनाना पड़ा है। इसका कारण यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के अनन्तर देश के सभी नागरिकों को सावधान द्वारा प्रजातांत्रिक अधिकार दिये गये हैं। आज पंचायत से लेकर संसद तक चुनाव आम जनता द्वारा किये जाते हैं।

प्रजातन्त्रीय व्यवस्थाओं में राजनैतिक दलों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। जनता अपनी सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के प्रति जागरूक है, अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि पुरानी व्यवस्था तो अब निष्क्रिय हो गयी है और अब जनजाति के लोग जागरूक होकर अपने अधिकारों की मांग करने लगे हैं, अपने लिए अलग राज्य की मांग की है तथा भू-

स्वामियों, गैर जनजाति के लोगों व सरकारी कर्मचारियों से उनके सम्बन्ध तनावपूर्ण हो रहे हैं। अपने प्रति किये शोषण के प्रति उनके मन में आक्रोश है। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक चेतना आने से जनजातियों में कटुता की भावना आ गयी है जो राजनैतिक दृष्टि से एक समस्या है।

NOTES

7. **दुर्गम निवास स्थान की समस्या (Problem of Unaproachable Habitation)**-जनजातियों की एक समस्या यह भी है कि लोग प्राय: पहाड़ी भागों, वनों व दुर्गम स्थलों में निवास करते हैं, जहां न तो सड़कें हैं न यातायात के साधन हैं, न ही कोई डाकखाना, तारघर, टेलीफोन, रेडियो, समाचार पत्रादि की आधुनिक सुविधा उन तक उपलब्ध हो पाती है। यहां तक समाज की अन्य संस्कृतियों से भी अपरिचित हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा के क्षेत्र में तथा वैज्ञानिक आविष्कारों के सम्बन्ध में ये लोग पिछड़े हुए हैं। इसी से इनका आधुनिकीकरण अभी तक नहीं हो सका है और देश से अलग-अलग अपना एक अलग ही समाज बनाये हुए हैं। उनका दृष्टिकोण अति संकुचित है। इस दुर्गम निवास स्थान के परिणामस्वरूप इन जनजातियों में खान-पान, रहन-सहन व वस्त्रादि की भी अनेक समस्याएं उपस्थित हो रही हैं।

8. **सीमा प्रान्त जनजातियों की समस्याएं (Problems of Frontier Tribes)**-जो जनजातियां उत्तर-पूर्व की सीमाओं पर रह रही हैं, उनकी समस्याएं अत्यधिक हैं। उत्तर पूर्व की सीमाओं पर चीन, बंगला देश एवं बर्मा जैसे देशों की सीमाएं भी जुड़ती हैं। चीन व बंगलादेश सदैव से ही भारत शत्रु हैं। इस कारण ये लोग जनजातियों में विद्रोह की भावनाएं भड़काते हैं, उन्हें विविध प्रकार से अस्त्र-शस्त्रादि देकर व अपने क्षेत्रों में नागा आदि को भूमिगतत होने के लिए प्रश्रय देकर इन जनजातियों की सहायता करते हैं और उन्हें युद्ध करने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। अपने लिए स्वायत्त राज्य की मांग करके ये जनजातियां आन्दोलन करती हैं, उसके लिए संघर्ष करती हैं। इस प्रकार आज सीमाप्रान्त जनजातियों की समस्याएं विकट हैं जिनसे निपटना आवश्यक है जिससे राष्ट्रीय प्रगति में उनका सहयोग मिलता रहें।

9. **एकीकरण की समस्या (Problems of Integration)**-जनजातियां देश के विभिन्न भागों से संस्कृति, आर्थिक दृष्टिकोण, राजनैतिक व्यवस्था, भाषा, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में अनेक प्रकार से विभिन्नता लिए हुए हैं। उनके आचार-विचार अलग हैं, इस कारण वे स्वास्थ्य से सम्बन्धित हैं। इन सभी समस्याओं का समाधान तब हो सकता है जब ये जनजातियां स्वयं को पृथक् न समझकर देश की एकता से जुड़े। जब तक ये जनजातियां व्यावहारिक रूप से देश की मुख्य धारा से नहीं जुड़ेगी, तब तक इनका एकीकरण होना सम्भव नहीं है अतः देश की आर्थिक राजनैतिक अर्थ-व्यवस्था में इन जनजातियों की भागीदारी आवश्यक है जिससे एकीकरण की समस्या का समाधान हो सके। इसके लिए सामूहिक स्तर पर प्रयास किये जाने आवश्यक हैं।

10. **सबसे कमजोर कड़ी (The weakest Link)**-जनजातियों को प्रारम्भ से ही समाज में उपेक्षा मिली है, किन्तु उनमें से भी कुछ जनजातियों सर्वाधिक उपेक्षित व निर्धन हैं, जिनकी जानकारी होनी आवश्यक है। उन सर्वाधिक निर्धन एवं उपेक्षित जनजातियों का पता लगाकर उनके विकास और उन्नति के लिए प्रयास करना चाहिए। यह कार्य सन् 1967-68 में जनजाति समूह को नामांकित किया, जिनमें गुजरात के चारण, नारबाड़ा व बरली आदि, मध्य प्रदेश की मारिया, गोंड, बैगा, कमार व मवासी आदि, उत्तर प्रदेश की जॉनसारी, कयास तथा राजस्थान की डामोर व सहरिया सर्वाधिक कमजोर मानी जाती हैं। इन जातियों के अति निर्धन होने के कारण ये अनेक समस्याओं से ग्रसित हैं। अनेक समस्याओं से ये पीड़ित हैं।

1. **बाह्य समाजों से सम्पर्क (Contact with External Societies)**-जनजातियों की समस्यओं का मूल कारण यह है कि लोग अब सभ्य समाज के सम्पर्क में आ गए है। इस सम्पर्क के फलस्वरूप इन पर हिन्दू संस्कृति व साथ ही पाश्चातय संस्कृति का प्रभाव पड़ा हैं। अब ये लोग उनकी चमक से प्रभावित होकर उस सभ्यता को अपनाने का प्रयास करने लगे हैं, किन्तु चूंकि दोनों संस्कृतियों से जनजातियों का रहन-सहन, खान-पान, पूर्णरूप से भिन्नता लिए हुए है अतः इस अन्तर के कारण अनेक समस्याएं उपस्थित हो गयी हैं। इनका अनुकूलन सभ्य समाज के साथ नहीं हो पाता क्योंकि ये दोनों संस्कृतियां जनजातियों के लिए नवीन हैं।

2. **ईसाई मिशनरी से सम्पर्क (Contact with Christian Missionaries)**-जनजातियों का सम्पर्क ईसाई मिशनरियों के साथ होने से अनेक समस्याएं उपस्थित हो गयी हैं। वास्तव में ये मिशनरी लोग जनजातियों के लिए अनेक सेवा के कार्यों का आयोजन करने लगे, जिसके पीछे इन मिशनरी लोगों का उद्देश्य इन जनजातियों का धर्म परिवर्तन करना था। अज्ञामी व भोले जनजाति-लोग इस कूटनीति को समझ नहीं सके। वे तो उनके कार्यों से प्रभावित हो गए थे इस अन्य संस्कृति के ग्रहण से अनेक समस्याओं ने जन्म लिया, जैसे-अंग्रेजी, पोशाक, प्रसाधन के नवीन साधनों का प्रचलन इन्हीं की देन है जिसने इन जनजातियों के परिवारों में तनावे संघर्ष को सृष्टि की है। अपनी ललित कला का ह्रास, ऋणग्रस्तता, आर्थिक शोषण जैसी समस्याएं भी बाह्य संस्कृति-सम्पर्क का ही परिणाम हैं।

3. **न्याय शासन व्यवस्था (New Administrative Set-up)**-इन जनजातियों की समस्या का एक कारण यह भी है कि इनकी स्वयं की शासन व्यवस्था थी, जो अपने ढंग की थी और सभी को मान्य थी। किसी प्रकार की समस्या उस व्यवस्था से किसी को भी नहीं थी, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् लागू इस नव्य शासन-व्यवस्था को अपनाने से अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयीं। अनेक वन अधिकारी व प्रशासक अदालत से सम्बन्धित अधिकारी, पुलिस आदि सभी इन जनजातियों के लिए अपरिचित व अनभिज्ञ शब्द थे। इससे इनमें हीन भावना का उदय हुआ, क्योंकि न तो ये लोग इस नवीन व्यवस्था को आत्मसात् कर सके, न त्याग सके-यह समस्या का गम्भीर कारण रहा।

4. **जनजातीय क्षेत्रों में वन सम्पत्ति एवं खनिज पदार्थों का होना (Existance of Forest-Wealth and Mines in Tribal Areas)**-जनजातीय क्षेत्रों में अनेक प्रकार की वन सम्पत्ति, जैसे-लकड़ी, फल-फूल, जड़ी-बूटियां अथवा खानें आदि हैं, जिनके कारण वहां अनेक उद्योग-धन्धे विकसित हो गए हैं और एक नई नगरीय संस्कृति का विकास हो गया हैं। धीरे-धीरे ये जनजातियां भी इस संस्कृति के सम्पर्क में आने लगी हैं और अपनी संस्कृति को भूलती जा रहीं हैं, किन्तु न तो पूर्णरूप से अपनी संस्कृति को भुला सकी हैं, न ही दूसरी संस्कृति को अपना सकी हैं। अतः एक विघटनात्मक स्थिति आ गयी है। यह भी इनकी समस्या का प्रमुख कारण बन गई है।

5. **पृथक् निवास (Separate Habitation)**-इन जनजातियों की परेशानियों का कारण उनका दुर्गम व पृथक् निवास स्थान हैं, जहां यातायात के साधनों का अभाव है, सड़कें रेल, बस, डाक तार आदि की भी कोई सुविधा न होने से से लोग अनेक कठिनाइयों के शिकार होते हैं। यहां तक कि जीवन-यापन के साधन भी कठिनाई से जुटा पाते हैं। पृथक निवास ने अनेक कठिनाइयों को जन्म दिया है।

6. **बाह्य लोगों द्वारा शोषण (Exploitation by ont-siders)**-जनजातियों की समस्याओं का एक कारण यह भी है कि अनेक साहूकार, व्यापारी, ठेकेदार, प्रशासक व पुलिस अधिकारी वर्ग आदि का सम्पर्क जब इन जनजातियों से हुआ तो उन्होंने इनकी अशिक्षा, अज्ञानता व दलित आर्थिक दशा का लाभ उठाया और विविध रूपों में इनका शोषण करना प्रारम्भ किया। इससे इन जन-जातियों में ऋणग्रस्तता की स्थिति आ गई, ये लोग भूमिहीन हो गए व बीमारियों के शिकार हो गए। यह सब इनकी अशिक्षा के परिणामस्वरूप हुआ। इस प्रकार बाह लोगों के सम्पर्क के कारण इन लोगों में अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं।

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि जनजातियों की अनेक समस्याएं हैं। उदाहरणार्थ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, स्वास्थ्य व सांस्कृतिक आदि। इन सभी समस्याओं के मूल में प्रमुख कारण इनकी अशिक्षा व अज्ञानता को माना जा सकता है। अशिक्षा के परिणामस्वरूप ही इन लोगों का शोषण सदैव होता रहा है।

bdkÃ&8

जनजातियों की समस्याओं के साधन हेतु सुझाव (Suggestion for the Solution of Tribal Problems)

उपर्युक्त पृष्ठों में जनजातियों की समस्याओं और अनके कारणों पर प्रकाश डाला गया है। इनकी मुख्य समस्याएं आर्थिक, सांस्कृति शैक्षिक एवं स्वास्थ्य से सम्बन्धित हैं। इन समस्याओं के निराकरण के लिए उन कारणों पर ध्यान देना होगा, जिनका परिणाम इन समस्याओं की उत्पत्ति है। अनेक प्रयास इस दिशा में किए गए हैं, लेकिन इन क्षेत्र में पूर्ण सफलता अभी तक नहीं मिल सकी है। जनजातीय समस्या समाधान हेतु कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं-

1. आर्थिक समस्याओं से सम्बन्धित सुझाव -

आर्थिक समस्याओं को सुधारने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं-

(i) जनजातियों के परिवारों को कृषि के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध कराई जाए, (ii) कृषि के अत्याधुनिक तरीकों से जनजातियों को अवगत कराया जाए, (iii) स्थानांतरित कृषि की समाप्ति की जाए, (iv) सरकार की ओर से कृषि करने वालों को बीज, बैल व कृषि सम्बन्धी अन्य उपकरण खरीदने हेतु आर्थिक सहायता दी जाए, (v) बेगार, दासता व कम वेतन जैसी दुर्व्यवस्थाओं की कानून द्वारा समाप्ति की जाए, (vi) जहां अधिक संख्या में जनजाति लोग कार्यरत हों, वहां श्रमिक कल्याण कार्य विस्तृत रूप से हो, (vii) दस्तकार या गृह उद्योग जैसे छोटे-छोटे उद्योगों के सम्बन्ध में जनजातियों को उचित प्रशिक्षण दिया जाए, (viii) इन लोगों के लिए अच्छे मकान, कार्य के उचित घण्टे व काम करने की अवस्थाओं आदि पर विशेष ध्यान दिया जाए, तथा (ix) सहकारी समितियों का विकास किया जाये और अधिकाधिक संख्या में इन्हें रोजगार उपलब्ध कराये जाएं।

2. सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित सुझाव

सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु-(i) सबसे प्रमुख कार्य बाल विवाह की प्रथा को समाप्त करना है। यह कार्य जनमत तैयार करके पूर्ण किया जा सकता है, (ii) युवा-गृहों का पुनरूत्थान किया जाए, जो उन्हें शिक्षा देने की भी व्यवस्था करें, (iii) कन्या-मूल्य की प्रथा का जनमत के द्वारा निराकरण किया जाए, (iv) जनजातियों की आर्थिक स्थिति में सुधार किया जाए, जिससे वेश्यावृत्ति जैसी बुराई को समाप्त किया जा सके।

3. सास्कृतिक समस्याओं से सम्बन्धित सुझाव -

सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान हेतु-(i) प्रमुख कार्य यह किया जा सकता है कि सभी सांस्कृतिक आयोजन उन्हीं की भाषा एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुसार किए जाएं, एल्विन के मतानुसार ऐसे विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाए, जो आदिम कलाओं की रक्षा कर सकें, (iii) शिक्षा के द्वारा उन्हें वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया जाए जिससे वे धार्मिक अन्धविश्वास को हटा सकें।

4. शैक्षिक समस्याओं से सम्बन्धित सुझाव

शैक्षिक समस्याओं के हल करने के लिए-(i) जनजातियों को शिक्षा उनकी अपनी भाषा में दी जाए, (ii) शिक्षा के साथ-साथ नृत्य, संगीत, खेल आदि मनोरंजनों का ध्यान रखा जाए, (iii) विद्यालयों के साथ-साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण की सुविधायें उपलब्ध कराई जाएं, कृषि, पशुपालन, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन जैसी व्यावसायिक शिक्षा उन्हें उपलब्ध कराई जाए जिससे वे बेकारी का सामना कर सकें।

5. स्वास्थ्य के समस्याओं से सम्बन्धित सुझाव -

स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के हल के लिए-(i) आदिवासी क्षेत्रों में चिकित्सालय, चिकित्सक व आधुनिक औषधियों की व्यवस्था की जाए, (ii) जनजातीय बालकों के लिए पौष्टिक आहार तथा बियमिन की गोलियां आदि उपलब्ध कराई जाएं, (iii) चेचक, हैजा व अन्य बीमारियों के टीकों की व्यवस्था की जाए तथा जनजातियों को स्वास्थ्य के सामान्य नियमों से अवगत कराया जाए, (iv) चलते-फिरते अस्पतालों की व्यवस्था की जाए, तथा (v) स्कूलों, पंचायत गृहों व युवागृहों में दवाओं आदि का प्रबन्ध किया जाए।

इस प्रकार यदि उपर्युक्त सुझावों को कार्यरूप दिया जा सके तो इन जनजातियों की समस्याएं कम अवश्य की जा सकेंगी।

अभ्यास-प्रश्न

1. भारत की जनजातियों की मुख्य समस्याएं कौन-कौन सी है? व्याख्या करें।
2. भारत की जनजातियों की समस्याओं को कितने वर्गों में बांटा जा सकता है तथा इस वर्गीकरण के क्या आधार है?
3. भारतीय जनजातियों की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए एक समीक्षात्मक टिप्पणी लिखें।
4. जनजातीय समस्याओं के प्रमुख कारण कौन-कौन से है? स्पष्ट करें।

bdkÃ&9 vu|lfpr tutkfr;k dı fy, lo/kkfud lj{kk] tutkrh; uhfr;k] fodkl rFkk dY;k.k dk;Øe

Hkkjr e vkfnokfl;k dk vkfnoklh dgk tkrk gA vkfnoklh 'kCn dk bLreky Hkkjr efofHkUu tutkfr;k dk o.ku dju d fy, fd;k tkrk gA ekuk tkrk g fd ;tutkfr;k æfoM vkj bMk&vk;u l igy Hkkjr d ey fuoklh FkA vkfnoklh fofHkUu tutkrh; legk dk lnfHkr djrk g ftUg Hkkjrh; miegk}hi d çkphu fuoklh ekuk tkrk gA

भारत का जनजातीय समुदाय सामाजिक-आर्थिक कारकों, मौगोलिक पार्थक्य तथा ऐतिहासिक कारणों से अपेक्षाकृत अधिक पिछड़ापन का शिकार रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनजातीय विकास के लिये विभिन्न नियोजित प्रयास किये गये। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने जनजातीय सुरक्षा तथा विकास के लिये संविधान के अन्तर्गत अनेक प्रावधान किये हैं, जो सरकार को न केवल जनजातीय विकास के लिये विशिष्ट योजनायें बनाने अपितु वित्तीय सहायता प्रदान करने का भी विशेष दायित्व सौंपे हैं।

अनुसूचित जनजातियों के लिये संवैधानिक सुरक्षा (Constitutional Safeguard for Scheduled tribes)

अनुसूचित जनजातियों की सुरक्षा तथा विकास के लिये भारतीय संविधान के अन्तर्गत अनेक प्रावधान हैं। संविधान के अनुच्छेद 15 (4), 16 (4), 19 (5), 23, 29, 46, 164, 330, 332, 334, 338, 339 (1) तथा 371 के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों के लिए सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधान हैं। इसके अलावा संवधान की पांचवी तथा छठी अनुसूची के विकास से सम्बन्धित प्रावधान मुख्य रूप से संविधान के अनुच्छेद 275 (1) तथा 339 (2) में अन्तनिहित हैं।

अनुसूचित जनजातियों की सुरक्षा से सम्बन्धित प्रावधान

अनुच्छेद 15 (4) : संविधान का अनुच्छेद 15 धर्म, वंश, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर राज्य द्वारा भेदभाव का निषेध करता है, किन्तु अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की सुरक्षा हेतु इस अनुच्छेद का खण्ड-4 अपवाद के तौर पर राज्य को सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों अथवा अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिये विशेष प्रावधान बनाने का अधिकार प्रदान करता है। यह प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 46 में वर्णित नीति के अनुसार है, जिसके अन्तर्गत राज्य प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 46 में वर्णित नीति के अनुसार है, जिसके अन्तर्गत राज्य सरकार को विशेष तौर पर ध्यान देकर पिछड़े वर्ग के नागरिको की शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों का विकास करने तथा सामाजिक अन्याय से इनकी रक्षा करने का प्रावधान है। इस खण्ड का उद्देश्य, जिसे 1951 में संविधान के अन्तर्गत एक संशोधन के रूप में जोड़ा गया था, अनुच्छेद 15 व 29 को अनुच्छेद

16 (4), 46 व 340 के समरूप लाना तथा पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के नागरिकों के लिये शासकीय शैक्षणिक संस्थाओं में राज्य द्वारा स्थान आरक्षित करना तथा इनकी उन्नति के लिए अन्य आवश्यक प्रावधानों को संवैधानिकता प्रदान करना है।

अनुच्छेद 16 (4)

संविधान का अनुच्छेद 16 का खंड-4 उन पिछड़े वर्गों के नागरिकों के लिए आरक्षण की अनुमति देता है, जिनका सरकारी सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। यह खंड सरकार को सरकारी सेवाओं में किसी भी पिछड़े वर्ग के नागरिकों की नियुक्ति अथवा पदों के आरक्षण हेतु अधिकार प्रदान करता है।

अनुच्छेद19 (5)

संविधान के अनुच्छेद 19 (5) के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के हितों की सुरक्षा के लिए ऐसे कई प्रावधान हैं, जिनमें विशेष परिस्थितियों को छोड़कर उनको स्वयं की सुरक्षा के लिए ऐसे कई प्रावधान है, जिनमें विशेष परिस्थितियों को छोड़कर उनको स्वयं की सम्पत्तियों को भी वे हस्तांतरित नहीं करने का प्रावधान है। इस प्रावधान के अनुसार जनजातियों को भी वे हस्तांतरित नहीं करने का प्रावधान है। इस प्रावधान के अनुसार जनजातियों के स्वयं हित में उनके निजी लाभ के लिए जनजातियों के स्वयं हित में तथा उनके निजी लाभ के लिए जनजातीय क्षेत्रों या अनुसूचित क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से घूमने अथवा बसने या सम्पत्ति अर्जित करने के आम नागरिक के अधिकार को प्रतिबंधित करने के लिए कानून बनाये जा सकते हैं। इस अनुच्छेद में आम नागरिक के हितों के साथ अनुसूचित जनजातियों का विशेष उल्लेख यह इंगित करता है कि अनुसूचित जनजातियों को सुरक्षा के लिए बनाये गये प्रतिबन्धों को खण्ड 5 अनुच्छेद 19 (5) के अन्तर्गत अक्षुण्ण रखा जायेगा, चाहे इस प्रकार का प्रतिबन्ध आम नागरिकों के हित में न हो।

अनुच्छेद 23

संविधान का अनुच्छेद 23 मानव शरीर की सौदेबाजी, बेगार, बंधक मजदूर तथा अन्य प्रकार के बलकृत श्रम (Forced labour) का निषेध करता है। संविधान का यह प्रावधान अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष रूप से महत्वूर्ण है, क्योंकि इसके सदस्य प्रायः बेगार, बंधक तथा बलकृत श्रमिक के रूप में शोषण के शिकार होते रहते हैं।

अनुच्छेद 29

संविधान के अनुच्छेद 29 के अन्तर्गत निहित प्रावधानों के अनुसार सांस्कृतिक अथवा भाषायी अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा अथवा संस्कृति को सुरक्षित बनाये रखने का अधिकार प्राप्त है। यह अनुच्छेद अनुसूचित जनजाति समुदायों को अपनी भाषाओं, बोलियों तथा संस्कृतियों को अक्षुण्य बनाये रखने हेतु सुरक्षा प्रदान करता है। सरकार कानून द्वारा कोई दूसरी संस्कृति अथवा भाषा इन अल्पसंख्यकों पर थोप नहीं सकती।

अनुच्छेद 46

सविधान के अनुच्छेद 46 के अन्तर्गत निहित प्रावधानों के अनुसार राज्य अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों के विकास के लिए विशेष रूप से कदम उठाने के लिए प्राधिकृत है, परन्तु यह अनुच्छेद मूलभूत अधिकारों द्वारा लागू बंदिशों से प्रतिबंधित

है। इस अनुच्छेद को प्रभावी बनाने के लिए मूलभूत अधिकारों सम्बन्धी 15 व 29 को संवैधानिक अधिनियम 1951 द्वारा संशोधित किया गया था।

अनुच्छेद 164

संविधान का अनुच्छेद 164 देश के बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश राज्यों में जनजातीय कल्याण हेतु एक प्रभारी मंत्री की नियुक्ति का अधिकार प्रदान करता है, क्योंकि इन राज्यों में जनजातियों को पर्याप्त जनसंख्या है।

अनुच्छेद 320 (4)

संविधान के अनुच्छेद 320 (4) में यह प्रावधान है कि संविधान के अनुच्छेद 16 (4) में संदर्भित किसी प्रावधान के सम्बन्ध में या अनुच्छेद 335 में उल्लेखित प्रावधानों को प्रभावी रूप दिये जाने के सम्बन्ध में लोक सेवा आयोग से सलाह लेने की आवश्यकता नहीं है।

अनुच्छेद 330, 332 तथा 334

संविधान के अनुच्छेद 330 के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए लोक सभा में स्थानों के लिए आरक्षण का प्रावधान है, जबकि अनुच्छेद 332 के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य के विधान सभाओं के लिए अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों के आरक्षण का प्रावधान है।

संविधान के अनुच्छेद 334 के अनुसार संविधान के आरम्भ होने के 40 वर्षों की अवधि में अर्थात 1990 में इस प्रकार के आरक्षण समाप्त हो जाने का प्रावधान था। प्रारम्भ में यह प्रावधान संविधान के लागू होने से 10 वर्ष की अवधि के लिए था, किन्तु अनुच्छेद 334 में किये गये संशोधन के आधार पर इसे अगले 30 वर्ष की अवधि के लिए था, किन्तु अनुच्छेद 334 में किय गये संशोधन के आधार पर इसे अगले 30 वर्षों के लिए अर्थात 1990 के अंत तक बढ़ा दिया गया था। इसके बाद पुनः संविधान द्वारा अगले 10 वर्षों के लिए इसे बढ़ाया जाता रहा, जो अब तक लागू है।

अनुच्छेद 335

संविधान के अनुच्छेद 335 के अन्तर्गत प्रशासन की क्षमता के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए के व राज्य सरकारों के सेवाओं तथा पदों पर नियुक्तियों के मामले में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों पर किये जाने का प्रावधान

अनुच्छेद 338

संविधान के अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रपति द्वारा एक विशेष पदाधिकारी नियुक्ति किये जाने का प्रावधान है, जिस संविधान के अन्तगर्त अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को सुरक्षा प्रदान करने सम्बन्धी सभी मामलों की जाँच करने का दायित्व है। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की सुरक्षा के क्रियान्वयन के विषय में राष्ट्रपति को देना होगा, जिसे राष्ट्रपति संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष पटल पर रखवायेंगे। इस प्रकार के विशेष पदाधिकारी को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए आयुक्त के रूप में नियुक्ति की गई है।

अनुच्छेद 239 (1)

संविधान के अनुच्छेद 339 (1) के अन्तर्गत राष्ट्रपति को राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण सम्बन्धी प्रतिवेदन प्राप्त करने हेतु एक आयोग नियुक्त करने का अधिकार है, जिसके आलोक में अब तक एकमात्र आयोग-अनुसूचित क्षेत्र एवं अनुसूचित जनजाति आयोग 28 अप्रैल 1960 को नियुक्त किया गया था, जिसने अपना प्रतिवेदन अक्टूबर 1961 में प्रस्तुत किया था। इसके बाद अभी तक इस तरह का कोई अन्य आयोग नियुक्त नहीं किया जा सका है।

अनुच्छेद 340

संविधान के अनुच्छेद 340 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो के सम्बन्ध में जांच के लिए आयोग नियुक्त करने का प्रावधान है।

अनुच्छेद 342

संविधान के अनुच्छेद 342 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल से परामर्श लेकर अनुसूचित जनजातियों को सूचि निर्दिष्ट करने का प्रावधान है।

अनुच्छेद 371 (क) - नागालैंड

सविधान के अनुच्छेद 371 (क) के अन्तर्गत निहित प्रावधानों के अनुसार नागालैंड राज्य पर निम्न लिखित मामलों में संसद का कोई भी अधिनियम लागू नहीं होगा जब तक कि नागालैंड विधान मंडल के विशेष संकल्प द्वारा इसे अनुमोदित न किया गया हो। ये मामले हैं :

1. नागाओं की धार्मिक अथवा सामाजिक प्रथायें,
2. नागाओं का प्रथागत कानून तथा कार्य प्रणाली
3. असैनिक तथा आपराधिक न्याय का संचालन, जिसके अन्तर्गत नागा जनजाति के प्रथागत कानून के अनुसार निर्णय अन्तर्निहित है, और
4. जमीन का स्वामित्व तथा हस्तांतरण तथा इसके स्रोत्र

नागालैंड राज्य में कानून तथा व्यवस्था का विशेष उत्तरदायित्व राज्यपाल का हैं। तुएनसांग जिले में शांति, प्रगति तथा अच्छे प्रशासन के लिए विनियम बनाने का अधिकार राज्यपाल के पास है। इस जिले में नागालैंड विधानमंडल द्वारा पारित कोई भी अधिनियम तब तक लागू नहीं होगा, जब तक कि क्षेत्रीय परिषद की अनुशंसा पर राज्यपाल इसे जन अधिसूचना के द्वारा लागू नहीं करते। .

अनुच्छेद 37 (ख) असम

राष्ट्रपति छठी अनुसूची में विनिर्दिष्ट जनजातीय क्षेत्रों से चुने गये विधानसभा के सदस्यों तथा विधानमंडल के अन्य सदस्यों, जैसा कि आदेश में विनिर्दिष्ट है, कि एक समिति के गठन का प्रावधान कर सकते हैं, जिसका उत्तरदायित्व राज्य स्तर पर जनजातीय क्षेत्रों के हितों की देखभाल करना होगा।

अनुच्छेद 371 (ग) मणिपुर

अनुच्छेद 371 (ग) के अन्तर्गत राष्ट्रपति के आदेश एक समिति के गठन तथा प्रकार्य का प्रावधान है। इस

समिति में राज्य (हिल) क्षेत्रों से चुने गये विधान सभा सदस्य होंगे। राज्यपाल को मणिपुर राज्य के हिल क्षेत्रों के प्रशासन के विषय में एक वार्षिक प्रतिवेदन राष्ट्रपति को सौंपना होगा। संघ कार्यकारिणी को उक्त क्षेत्रों के प्रशासन के सन्दर्भ में सम्बन्धित राज्य को निर्देश देने का अधिकार प्राप्त है।

NOTES

अनुसूचित जनजाति विकास से सम्बन्धित प्रावधान

अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक विकास सम्बन्धी प्रावधान प्रमुख रूप से संविधान के अनुच्छेद 271 (1) तथा 339 (2) में अंतर्निहित है। अनुच्छे 275 (1) का प्रथम उपबंध, भारत सरकार के अनुमोदन से कोई भी राज्य सरकार द्वारा अपने क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए या अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासनिक स्तर को राज्य के अन्य क्षेत्रों के सामान्य प्रशासन स्तर तक ऊपर उठाने के लिए संचालित विकास योजनाओं के व्यय की पूर्ति के लिए अनुदान का प्रावधान करता है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत इन राज्यों को विशेष केन्द्रीय सहायता प्रदान किये जाने का प्रावधान है, जहाँ अनुसूचित जनजाति अधिवासित विशेष केन्द्रीय सहायता प्रदान किये जाने का प्रावधान है, जहाँ अनुसूचित जनजाति अधिवासित है। इस प्रावधान के अनुसार अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु आवश्यक विशेष योजनाओं के लिए अनुदान की भी व्यवस्था है, बशर्ते कि ये योजनायें केन्द्र सरकार के पूर्व अनुमोदन से प्रभावी रूप से संचालित की जानी चाहिये।

अनुच्छेद 339 (2) के अन्तर्गत केन्द्रीय कार्यपालिका द्वारा राज्यों को अनुसूचित जनजाति कल्याण से सम्बन्धित निर्देश जारी करने का प्रावधान है। यह केन्द्रीय कार्यपालिका को राज्य में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए निर्देश में विनिर्दिष्ट ऐसी योजनायें बनाने तथा कार्यान्वयन करने सम्बन्धी दिशा निर्देश जारी करने का अधिकार प्रदान करता है।

अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन
(Administration of Scheduled areas and Tribal areas)

भारतीय संविधान के खंड-X के अन्तर्गत अनुच्छेत 244 तथा 244 (क) में "अनुसूचित क्षेत्रों" तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन से सम्बन्धित प्रावधान हैं। "अनुसूचित क्षेत्र" संविधान की पांचवी अनुसूची में निहित प्रावधानों के द्वारा नियंत्रित होता है, इसीलिए इन्हें "पांचवी अनुसूची क्षेत्र" भी कहा जाता है। "जनजातीय क्षेत्र" छठी अनुसूची के प्रावधानों के द्वारा नियंत्रित होता है।

अनुसूचित क्षेत्र

संविधान की पांचवी अनुसूची के खण्ड "सी" के पैरा 6 के अनुसार-"अनुसूचित क्षेत्रों" का आशय उन क्षेत्रों से है, जिन्हें राष्ट्रपति के आदेशानुसार अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया गया है। राज्य के राज्यपाल के साथ परस्पर विचार विमर्श करने के बाद राष्ट्रपति अनुसूचित क्षेत्रों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए अधिकृत हैं। संसद को अनुसूची में किसी भी प्रकार का संशोधन करने का अधिकार प्राप्त है।

यद्यपि, अनुसूचित क्षेत्रों की अनुसूची में संशोधन करने वाले इस प्रकार के कानून को अनुच्छेद 368 के उद्देश्य से संविधान का संशोधन नहीं समझा जायेगा।

अनुसूचित क्षेत्र के इतिहास की शुरुआत "अनुसूचित जिला अधिनियम, 1874 से मानी जा सकती है, जिसके अंतर्गत असैनिक तथा आपराधिक न्याय दिलाने हेतु विशेष पदाधिकारियों की नियुक्ति करने, लोक राजस्व का निर्धारण व संग्रह तथा लगान सम्बन्धी मामलों का संचालन करने तथा साथ ही अनुसूचित

जिलों के अंतर्गत प्रशासन कायम रखने के प्रावधान थे। इसमें ब्रिटिश शासित भारत के किसी भी हिस्से में लागू कानूनों को समुचित विशेष प्रतिबंधों तथा संशोधनों के साथ, अधिसूचना के द्वारा अनुसूचित जिलों में विस्तार करने की व्यवस्था थी। इन व्यापक वैधानिक शक्तियों को कार्यपालिका द्वारा सामान्य कार्यकारी आदेश के द्वारा निपटाया गया। भारत सरकार अधिनियम 1919 के अनुसार अनुसूचित जिला अधिनियम के अंतर्गत आवृत्त जनजातीय क्षेत्रों को विधायी सीमा से विमुक्त कर दिया गया। इन क्षेत्रों को दो वर्गों में विभाजित किया गया-(1) पूर्णत वर्जित क्षेत्र, तथा (2) संशोधित वर्जन क्षेत्र, किन्तु वर्जन की सीमा के अन्तर्गत मात्रा व परिणाम में भिन्नता थी। भारत सरकार अधिनियम 1935 के अनुसार इन क्षेत्रों को "वर्जित क्षेत्र" तथा "आशिक रूप से वर्जित क्षेत्र" घोषित किया गया। अधिनियम की धारा 91 में इन क्षेत्रों से सम्बन्धित विशेष प्रावधान रखे गये थे।

भारत सरकार अधिनियम 1935 के अतंर्गत यह प्रावधान था कि राज्यपाल के दिशानिर्देश को छोड़, जिन्हें आवश्यकतानुसार इस प्रकार के वर्जन व संशोधन करने का अधिकार प्राप्त था, इन क्षेत्रों पर संघीय विधानमंडल या प्रान्तीय विधानमंडल के नियम लागू नहीं होते थे। इन क्षेत्रों में अच्छी सरकार के लिए विनियम बनाने के लिए भी राज्यपाल को अधिकार प्राप्त था। यद्यपि इस प्रकार के सभी विनियमों के लिए गवर्नर जनरल की सहमति आवष्यक थी। मद्रास, बम्बई, बिहार (अविभाजित), मध्य प्रान्त, असम तथा उड़ीसा से स्थानीय विधानमंडलों में भी आदिवासी क्षेत्रों के लिए स्थानों के आरक्षण का प्रावधान था।

संविधान सभा द्वारा जनजातीय परिस्थितियों की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा जनजातीय समुदायों तथा जनजातीय क्षेत्रों की समस्याओं के समबन्ध में विस्तार से जानकारी की प्राप्ति के लिए उत्तर-पूर्वी सीमांत (असम) जनजाति व वर्जित क्षेत्रों तथा वर्जित व आंशिक रूप से वर्जित क्षेत्रों (असम को छोड़कर) के लिए दो उप-समितियाँ गठित की गयीं। वर्जित व आंशिक रूप से वर्जित क्षेत्रों (असम को छोड़) की उप-समिति द्वारा जनजाति परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर पाया गया कि प्रान्तीय विधान मंडलों के कानूनों, अधिकांश जनसंख्या की आवश्यकताओं के लिए जारी किये जाने की संभावना थी, का कम से कम कुछ विनिर्दिष्ट विषयों पर कुछ क्षेत्रों में स्वतः लागू हो, के प्रावधान का होना आवश्यक है। यह भी पाया गया कि सुझाव के कार्यान्वयन के लिए क्षेत्रों को अस्सूचित करना होगा और उन्होंने सिफारिश की कि इन क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्र कहा जाना चाहिए। संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार "अनुसूचित क्षेत्र" वर्जित व आशिक रूप से वर्जित क्षेत्र का ही दूसरारा नाम था। उप-समिति ने भी अपना मंतव्य दिया कि कुछ विषयों के सम्बन्ध में प्रान्तीय विधान मंडलों द्वारा जारी कानूनों को अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू नहीं किया जाना चाहिए, यदि जनजाति सलाहकार परिषद इन्हें उन क्षेत्रों के लिए समीचीन नहीं मानता। इस प्रकार यह अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विधानों को संवीक्षा की प्रक्रिया का प्रावधान देता है। पांचवी अनुसूची राज्यपाल को यह निर्णय लेने का अधिकार देती हैं कि किस प्रकार के मामलों को जनजाति सलाहकार परिषद को उनकी सलाह के लिए भेजा जा सकता है।

उद्देश्य : अनुसूचित क्षेत्रों का निर्माण निम्न लिखित दो उद्देश्यों के लिए किया गया है :

1. संक्षिप्त प्रक्रिया के द्वारा दूसरों द्वारा पहुँचाये गये बिना किसी बाधा के उन्हें प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग के लिए अनुसूचित जनजातियों को सहायता प्रदान करना।

2. अनुसूचित क्षेत्रों का विकास करना तथा अनुसूचित जनजातियों के हितों को सुरक्षा प्रदान करना एवं प्रोत्साहन देना।

अनुसूचित क्षेत्रों का प्रशासन (Administration of Scheduled areas)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से राष्ट्रपति द्वारा दो आदेश जारी किये गये हैं-(1) अनुसूचित क्षेत्र (खंड-क-राज्य) आदेश, 1950 तथा (2) अनुसूचित क्षेत्र (खंड-ख-राज्य) आदेश 1950 (यथा संशोधित)। इन आदेशों के आलोक में आंध्र प्रदेश, बिहार (अविभाजित) क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्र के रूप में घोषित किया गया है।

पांचवी अनुसूची में प्रमुख तत्व निम्नवत् हैं

(क) राज्यपाल का विशेष विधान अधिकार,

(ख) राष्ट्रपति को राज्यपाल का प्रतिवेदन तथा

(ग) जनजाति सलाहकार परिषद 454746

(क) राज्यपाल का विशेष विधान अधिकार

अनुसूचित क्षेत्र वाले राज्य के राज्यपाल को निम्नलिखित दो प्रकार से विधान को विशेष शक्तियाँ प्रदान की गई हैं-(1) अधिसूचना द्वारा विधान, तथा (2) विनियमन द्वारा विधान।

अधिसूचना द्वारा विधान

अनुसूचित क्षेत्रों वाले राज्य के राज्यपाल यह निर्णय लेने के लिए सक्षम हैं कि अनुसूचित क्षेत्रों के लिए संसदीय अथवा विधान मंडलीय अधिनियम उपयुक्त है अथवा नहीं। पांचवी अनुसूची के खण्ड-5 के अन्तर्गत जन-अधिसूचना के द्वारा राज्यपाल निर्देश दे सकते हैं कि संसद अथवा विधान मंडल की कोई भी अधिसूचना के द्वारा राज्यपाल निर्देश दे सकते हैं कि संसद अथवा विधान मंडल को कोई भी अधिसूचना राज्य के अनुसूचित क्षेत्र अथवा इसके किसी भाग में लागू नहीं होगा या यह उन पर लागू हो सकता है बशर्ते कि इस प्रकार के अपवाद व संशोधन हो, जैसा कि वे अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किये हों। वे वैसे कानूनों के अमल पर रोक लगा सकते है अथवा संशोधन कर सकते हैं, जो इस क्षेत्र विशेष के लिए उपयुक्त न हों। वह विधान स्वतः ही प्रभावी हो जाता है, जब तक कि राज्यपाल की अधिसूचना के द्वारा पूर्ण अथवा आंशिक रूप से इसे प्रतिबंधित नहीं किया जाता। जनजाति सलाहकार परिषद, राष्ट्रपति या किसी से भी संपर्क किये बिना राज्यपाल द्वारा अधिसूचना जारी की जा सकती है।

विनियम द्वारा विधान

राज्यपाल को अनुसूचित क्षेत्रों में शांति तथा कुशल प्रशासन के गठन के लिए विनियमों की संरचना का अधिकार प्रदान किया गया है। विशेष रूप से इस प्रकार के विनियमः

1. अनुसूचित जनजातियों के द्वारा इनके सदस्यों के बीच अनुसूचित क्षेत्र की भूमि के हस्तांतरण को रोक अथवा प्रतिबंधित कर सकता है।
2. अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को अनुसूचित क्षेत्र की भूमि के आवंटन को नियंत्रित कर सकता है।
3. उन व्यक्तियों के साहूकारी के व्यापार को चलाये जाने को नियंत्रित कर सकता है, जा इस प्रकार के अनुसूचित क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को पैसा उधार देते हैं।

अनुसूचित क्षेत्रों के कुशल प्रशासन के लिए राज्य की विनियम निर्माण की शक्ति व्यापक है, किन्तु उक्त तीन परिस्थितियों का विशेष उल्लेख संविधान निर्माताओं द्वारा जनजातियों की भूमि सम्बन्धी हितों की

सुरक्षा तथा साहूकारों द्वारा किये जाने वाले शोषण के विरुद्ध विशेष चिन्ता को दर्शाता है।

राज्यपाल के विनियम बनाने के अधिकार पर पैरा (5) पांचवी अनुसूची के उप मद 4 व 5 में उल्लिखित निम्नलिखित दो सीमायें हैं :

1. इस प्रकार का विनियम सलाहकार समिति से पूर्व परामर्श कर बनाया जाना चाहिए।
2. विनियम राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाना चाहिए तथा यह तब तक पभाव में नहीं आयेगा, जब तक कि उनके द्वारा स्वीकृति न दी गई हो।

राज्यपाल राज्य के प्रशासनिक प्रमुख होते हैं, किन्तु वे मंत्री परिषद की सलाह में बंधे हुए होते हैं, जिन्हें अनुच्छेद 163 के तहत उनकी सहायता एवं सलाह के लिए गठित किया गया है। न तो इस अनुच्छेत में और न ही संविधान के किसी अन्य प्रावधान में, संविधान की पांचवी अनुसूची के तहत उन्हें प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करने में "राज्यपाल के विवेक" का कोई उल्लेख है। अनुसूची में उल्लिखित अपनी शक्तियों को प्रयोग में लाने के लिए राज्यपाल द्वारा किसी प्रकार के पहल किये जाने का भी कोई प्रावधान नहीं है। यहाँ तक कि संसद अथवा विधान मंडलों द्वारा लागू किये गये विधानों की संवीक्षा करने के लिए भी राज्यपाल को अपने मंत्री परिषद तथा सम्बन्धित प्रशासनिक विभागों पर भी निर्भर करना पड़ता है।

(ख) राज्यपाल का प्रतिवेदन

अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करने हेतु संघ सरकार उत्तरदायी है। पांचवी अनुसूचि के मद 3 में जनजातीय क्षेत्रों की स्थिति के विषय में संघ सरकार को सूचित किये जाने सम्बन्धी प्रक्रिया का प्रावधान है। इसके अंतर्गत यह प्रावधान है कि अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को प्रत्येक वर्ष अथवा जब कभी भी राष्ट्रपति मांगे, प्रतिवेदन देना होगा। राज्यपाल को प्रत्येक वर्ष अथवा जब कभी भी राष्ट्रपति मांगे, प्रतिवेदन देना होगा। राज्यपाल द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का उद्देश्य संघ सरकार को जनजातियों के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करने में मदद करना है, जिसके आधार पर संघ सरकार राज्य को अनुसूचित क्षेत्रों के कुशल प्रशासन के लिए दिशा-निर्देश जारी कर सकती है।

अब तक जिन समितियों, आयोगों तथा कार्यकारी दलों ने अनुसूचित जनजातियों की समस्याओं पर विचार किया है-जैसे अनुसूचित क्षेत्र व अनुसूचित जनजाति आयोग (देबर जनजातियों के विकास के लिए कार्यकारी दल (1969) तथा सातवीं योजना के दौरान अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए कार्यकारी दल (1969) तथा सातवीं योजना के दौरान अनुसूचित जनजातियों नेमी कार्य के रूप में मशीनी तरीके से तैयार किया जाता है, जिसके कारण इसके मुख्य उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती। इन प्रतिवेदनों से सरकार को अनुसूचित क्षेत्रों के विकास तथा अनुसचूति जनजातियों के कल्याण के लिए उठाये गये कदमों की प्रगति का जायजा लेने का अवसर मिलता है। इन प्रतिवेदनों को तैयार करने के लिए जनजाति सलाहकार परिषद, अनुसूचित जातियों / अनुसूचित जनजातियों के लिए आयुक्त, विधान मंडलों के जनजाति सदस्यों, गैर सरकारी सदस्यों इत्यादि द्वारा व्यक्त विचारों सहित विभिन्न स्त्रोतों से उपलब्ध प्रचुर सामग्री सरकार प्राप्त कर सकती है। इन सभी सामग्रियों का सही उपयोग कर जनजातीय विकास तथा उनकी समस्याओं के निराकरण हेतु सार्थक प्रयास किया जाना चाहिए।

(ग) जनजाति सलाहकार परिषद

विधान सभा की सलाहकार समिति की वर्जित एवं आंशिक रूप से वर्जित क्षेत्र उप-समिति, जिन्होंने जनजातियों की समस्याओं पर विचार किया था, राज्य सरकारों को अपने-अपने राज्य में जनजातीय

क्षेत्रों की आवश्यकताओं से बराबर सम्पर्क बनाये रखने तथा विकास योजनाओं के कार्यान्वयन हेतु विशेष पर्यवेक्षी कार्यों को प्रयोग में लाने के लिए जनजाति सलाहकार परिषद के गठन की सिफारिश की थी। इस उप-समिति की सिफारिशों को संविधान की पांचवी अनुसूची में समुचित रूप से शामिल किया गया है। संविधान की पांचवी अनुसूची के खण्ड-4 में अनुसूचित क्षेत्र वाले प्रत्येक राज्य में जनजाति सलाहकार परिषद के गठन के प्रावधान हैं। इसके अलावा, राष्ट्रपति के निर्देशानुसार देश के उन आठ राज्यों में भी इसका गठन किया जा सकता है, जहाँ अनुसूची क्षेत्र नहीं है। देश के अनुसूचित क्षेत्र वाले महाराष्ट्र, गुजरात, हिमालय प्रदेश, आंध्रप्रदेश, झारखंड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान तथा उड़ीसा में जनजातीय सलाहकार परिषदों की स्थापना की गई है। इसके अलावा जनजाति सलाहकार परिषद की स्थापना तमिलनाडू तथा पश्चिम बंगाल राज्यों में भी की गई है, जहाँ अनुसूचित क्षेत्र नहीं है।

संरचना

जनजाति सलाहाकार परिषद के अन्तर्गत अधिक से अधिक 20 सदस्यों का प्रावधान है। इनमें से तीन-चौथाई को राज्य के विधान मंडल में अनुसूचित जनजाति का प्रतिनिधि होना चाहिए। यदि राज्य विधान सभा में अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधियों के प्रतिनिधियों की संख्या जनजाति सल्लाहकार परिषद के सीटों की संख्या से कम हो तो सीटों को राज्य में जनजातियों के अन्य सदस्यों द्वारा भरे जाने का प्रावधान है। जनजातीय सलाहकार परिषद् में उन व्यक्तियों को शामिल किये जाने का प्रावधान है, जिन्हें जनजातीय समस्याओं का भली-भांति ज्ञान हो तथा जनजातियों से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर भली-भांति अपना विचार व्यक्त कर सकें।

राज्यपाल को जनजातीय सलाहाकार परिषद के सदस्यों की नियुक्ति की विधि तथा उसकी कार्यप्रणाली इत्यादि के विषय में नियम बनाने का अधिकार है। देश के सभी राज्यों में जनजातीय सलाहकार परिषद के प्रमुख मुख्यमंत्री होते हैं। वर्ष में काम से कम दो बार जनजातीय सलाहकार परिषद की बैठक आयोजित किये जाने का प्रावधान है।

सलाहकार परिषद का कार्य

पांचवी अनुसूची के पैरा 4 के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि जनजाति सलाहकार परिषद ऐसे सभी मामलों में जो राय की अनुसूचित जनजातियों के कल्याण तथा प्रगति से सम्बन्धित हो, राज्यपाल द्वारा भेजे जाने पर अपना मंतव्य देगा। जब तक राज्यपाल जनजाति सलाहकार परिषद से विचार-विमर्श न कर ले, राज्यपाल द्वारा किसी भी प्रकार का विनियम नहीं बनाये जाने का प्रावधान है। संविधान में जनजाति सलाहकार परिषद का कार्य बहुत ही व्यापक है। वैधानिक प्रक्रियाओं के अलावा नीति निर्माण, योजना व विकास, योजनाओं के पर्यवेक्षण तथा अनुसूचित क्षेत्रों के प्रभावी प्रशासन के लिए इसे प्रभावी रूप से लागू किये जाने की आवश्यकता है।

जनजातीय क्षेत्र

छठी अनुसूची असम, मेघालय, मिजोरम तथा त्रिपुरा राज्यों के जनजातीय क्षेत्रों के लिए लागू होती है। छठी अनुसूची में जनजातीय क्षेत्रों को परिभाषित किया गया है तथा यह केवल उन क्षेत्रों को समाविष्ट करती है, जिसे उस अनुसूची में विनिर्दिष्ट किया गया है।

संसद को कानून के तहत इस अनुसूची में शामिल क्षेत्रों में परिवर्तन करने का अधिकार है।

संसद द्वारा जुलाई, 1986 से छठी अनुसूची के प्रावधानों को त्रिपुरा के लिए भी लागू किया गया है। अधिनियम में जनजातीय बाहुल्य वाले तहसीलों व गाँवों से परिपूर्ण एक स्वायत जिले की स्थापना का प्रावधान है। छठी अनुसूची के अन्तर्गत जिला परिषदों की योजना में उल्लिखित शक्तियों इन्हें प्रदान की गयी हैं। त्रिपुरा में स्वायत्त क्षेत्रों को कोई प्रावधान नहीं है

जनजातीय क्षेत्रो की प्रमुख विशेषतायें

1. जनजातीय क्षेत्रों को अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले मामलों के सम्बन्ध में पूर्ण स्वायत प्राप्त है। इन क्षेत्रों को किसी राज्य के भीतर प्रांत कहा जा सकता है।
2. यह जनजातियों को स्वायत जिलों तथा स्वायत क्षेत्रों के माध्यम से स्व--व्यवस्था की शक्ति प्रदान करती है।
3. संसद अथवा राज्य विधान मंडल का शासन अपने आप नहीं चलता, जब तक कि राज्यपाल को अधिसूचना के द्वारा अधिनियमों को पूर्ण अथवा आंशिक रूप से जनजातीय क्षेत्रों पर विशेष रूप से लागू नहीं किया जाता।

स्वायत्त जिले तथा स्वायत्त क्षेत्र

देश के चार राज्यों के जनजातीय क्षेत्रों में नौ स्वायत्त जिले है, यथा-असम में दो, मेघालय में तीन, मिजोरम में तीन तथा त्रिपुरा में एका आरम्भ में मेघालय तथा मिजोरम में स्वायत्त जिले अविभाजित असम के हिस्से थे। छठी अनुसूची के उद्देश्य के अनुसार प्रत्येक जिले को स्वायत्त जिला के रूप में विनिर्दिष्ट किया गया है। सामान्य तौर पर एक स्वायत्त जिला किसी विशेष अनुसूचित जनजाति का प्रतिनिधित्व करता है। किसी एक स्वायत्त जिले में एक से अधिक अनुसूचित जनजाति होने की स्थिति में राज्यपाल द्वारा अधिसूचना जारी करके उनके रहवास वाले क्षेत्र अथवा क्षेत्रों को स्वायत्त क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है। किसी स्वायत्त जिले में स्वायत्त क्षेत्र भी सरजित किये जा सकते हैं। त्रिपुरा के विषय में स्थिति भिन्न है, जहाँ एक स्वायत्त जिले का गठन किया गया है, जिसके अन्तर्गत जनजातीय बाहुल्य क्षेत्र आते हैं, जिसमें तीन राजस्व जिले शामिल हैं और जिसके अन्तर्गत कई जनजातियाँ निवास करती हैं। राज्यपाल को स्वायत्त जिलों अथवा अंचलों के क्षेत्र को बढ़ाने/घटाने अथवा इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त है।

जिला परिषदों तथा क्षेत्रीय परिषदों का गठन

प्रत्येक स्वायत्त जिले प्रशासन के लिए एक जिला परिषद होती है। जिला परिषद के अन्तर्गत सदस्यों की संख्या 30 से अधिक नहीं होती। इनमें से अधिक से अधिक चार सदस्यों को राज्यपाल द्वारा नामित किया जाता है तथा शेष सदस्यों का चयन वयस्क मताधिकार के आधार पर किये जाने का प्रावधान है। जिला परिषद के अन्तर्गत क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्र होते हैं तथा इनमें से प्रत्येक एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होता है। परिषद के सदस्यों की कुल संख्या का निर्धारण राज्यपाल द्वारा किया जाता है। मतदाताओं की संख्या का निधार्रण भी कर सकते हैं। वे सभी चुनाव क्षेत्रों को जनजातियों के लिए आरक्षित कर सकते है तथा गैर-जनजातियों को इन क्षेत्रों से चुनाव लड़ने से वर्जित कर सकते हैं। संविधान सभा की असम उप-समिति ने सिफारिश की थी कि पहाड़ियों में स्थायी रूप से निवास करने के बावजूद गैर-जनजातियों को पहाड़ी (Hil) निर्वाचन क्षेत्र से प्रान्तीय विधानसभा चुनाव लड़ने आवश्यक भी है, क्योंकि गैर-जनजातीय लोग अपनी वित्तीय शक्ति के बल पर मतों को खरीदकर जनजातीय बाहुल्य निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव जीत सकते है।

NOTES

नियमावली की संरचना

संविधान की छठी अनुसूची के पैरा 2 के उप-पैरा 6 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्यपाल द्वारा जिला परिषदों तथा क्षेत्रीय परिषदों के गठन के लिए नियम बनाये जाने का प्रावधान है। इन नियमों के अन्तर्गत जिला / क्षेत्रीय परिषदों का संगठन, क्षेत्रीय चुनाव, क्षेत्रों के सीमा निर्धारण के लिए अधिकारी की नियुक्ति, सीमा निर्धारण की प्रक्रिया, सदस्यों के कार्यालय की शर्तें, सदस्यों की योग्यता/अयोग्यता, सदस्यों का चुनाव, विवादों एवं चुनाव आयोजित किये जाने, जिला परिषद के अध्यक्ष, मुख्य कार्यकारी तथा सदस्यों का चुनाव किये जाने इत्यादि का भी प्रावधान है।

जिला क्षेत्रीय परिषदों का संस्थापन

प्रत्येक जिला परिषद तथा प्रत्येक परिषद से सम्बन्धित जिला या क्षेत्र के नाम पर संस्था संस्थापित किये जा सकते हैं।

स्वावत जिलों / क्षेत्रों का प्रशासन

स्वायत्त जिलों/क्षेत्रों के प्रशासन का दायित्व परिषदों को सौंपा गया है, जिसके पास स्वायत्त जिला/ क्षेत्रीय परिषदों के प्राधिकार के तहत क्षेत्रों के सम्बन्ध में केवल वहीं शक्तियाँ होगी, जोकि राज्यपाल द्वारा विनिर्दिष्ट हों। राज्यपाल को परिषद के सदस्यों में से एक मुख्य कार्यकारी पार्षद तथा आवश्यकता होने पर इन्हीं सदस्यों में से कार्यकारी पार्षदों की नियुक्ति करने का अधिकार है। कार्यकारी परिषद स्वायत्त जिले के लिए मंत्रिमण्डल के समान है, जो नीति का निर्धारण कर उसके निष्पादन को सुनिश्चित करती है।

कानून बनाने के लिए जिला परिषदों तथा क्षेत्रीय परिषदों की शक्तियाँ

जिला परिषदों तथा क्षेत्रीय परिषदों को अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत सभी क्षेत्रों के लिए निम्न लिखित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है:

(क) सुरक्षित वन भूमि को छोड़कर अन्य भूमि का आवंटन, कब्जा अथवा उपयोग।

(ख) सुरक्षित वन के अलावा अन्य किसी भी वन का प्रबन्धा

(ग) कृषि कार्य के लिए किसी भी नहर अथवा जल स्रोत्र का उपयोग।

(घ) "झूम" अथवा परिवर्तनीय खेती के अन्य तरीकों के प्रयोग पर नियंत्रण।

(ङ) ग्राम अथवा नगर समितियों या परिषदों तथा उनके पर्षदों की स्थापना।

(च) ग्राम अथवा नगर पुलिस तथा लोकं स्वास्थ्य व स्वच्छता सहित ग्राम या नगर प्रशासन से सम्बन्धित कोई अन्य मामले।

(छ) मुखियों या प्रमुखों की नियुक्ति अथवा अनुक्रमण।

(ज) संपत्ति का उत्तराधिकार।

(झ) विवाह एवं तलाक तथा

(ञ) सामाजिक प्रथायें।

उपर्युक्त संदर्भ में बनाये गये सभी कानूनों को राज्यपाल की स्वीकृति के बिना प्रभाव में लाया नहीं जा सकता।

NOTES

स्वायत्त जिलों एवं स्वायत्त क्षेत्रों में न्यायिक प्रशासन

स्वायत्त जिला परिषदें / क्षेत्रीय परिषदें अपने नियंत्रण के अधीन क्षेत्रों में भारतीय दण्ड सहिंता या अन्य कोई लागू कानून के तहत मृत्युदंड, आजीवन कारावास अथवा कम से कम पांच वर्ष का कारावास वाले अपराध सम्बन्धी प्रकरणों अथवा मुकदमों के अलावा अनुसूचित जनजातियों के दलों के बीच सभी मुकदमों तथा प्रकरणों के फैसले के लिए ग्राम परिषदों अथवा न्यायालयों का गठन कर सकती हैं। इस प्रकार की शक्तियों का प्रयोग राज्य के किसी न्यायालय द्वारा नहीं किया जायेगा। जिला परिषद/ क्षेत्रीय परिषद न्यायिक प्रशासन के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को इन ग्राम परिषदों के सदस्यों के रूप में अथवा अन्य न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों सहित आवश्यकतानुसार अन्य अधिकारियों की नियुक्ति कर सकता है। ग्राम परिषद अथवा न्यायालय द्वारा विचारणीय मुकदमा व प्रकरणों के सम्बन्ध में अपील न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग भी इस प्रकार के न्यायालय करेंगे। उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के अलावा किसी अन्य न्यायालय के पास इन मुकदमों अथवा प्रकरणों के लिए न्याय क्षेत्र नहीं होगा। राज्यपाल के. विनिर्दिष्टानुसार मुकदमा व प्रकरणों पर उच्च न्यायालय का न्याय क्षेत्र होगा।

राज्यपाल के पूर्व अनुमोदन पर क्षेत्रीय परिश्जद अथवा जिला परिषद निम्न लिखित विषयवस्तुओं से सम्बन्धित नियम बना सकती है

(क) ग्राम परिषदों तथा न्यायालयों का गठन और इनके द्वारा प्रयुक्त शक्तियाँ।

(ख) अपनायी जाने वाली प्रक्रिया।

(ग) इस प्रकार की परिषदों व न्यायालयों के निर्णयों एवं आदेशों का लागू किया जाना।

(घ) न्याय दिलाने के लिए आवश्यक समझ जाने वाले अन्य सभी सहायक मामले।

भारतीय दंड संहिता अथवा लागू अन्य किसी कानून के तहत मृत्युदंड, आजीवन कारावास अथवा कम से कम 5 वर्ष की अवधि के लिए कारावास वाले अपराधों की सुनवाई के लिए किसी स्वायत्त जिले अथवा क्षेत्र में लागू किसी कानून से उत्पन्न वाद अथवा प्रकरणों के विचार के लिए राज्यपाल को विशेष शक्तियाँ प्रदान करने का अधिकार है।

प्राथमिक शालाओं इत्यादि की स्थापना हेतु जिला परिषदों की शक्तियाँ

जिला परिषद जिले में प्राथमिक शालाओं, औषधालयों, बाजारों, कांजी हाऊसों, नौका प्रबन्ध कर सकती है। राज्यपाल का पूर्व अनुमोदन प्राप्त कर यह इनके विनियम तथा नियंत्रण के लिए विनियम बन सकती है। विशेष रूप से यह जिले में प्राथमिक शालाओं में पढ़ाये जाने वाली प्राथमिक शिक्षा की भाषा तथा नीति निर्धारण कर सकती है। जिला परिषद के अनुमोदन पर राज्यपाल द्वारा उस परिषद अथवा इसके अधिकारियों को पूर्ण रूप से सशर्त अथवा बिना किसी शर्त के कृषि, पशुपालन, सामुदायिक परियोजनायें, सहाकारी समितियाँ, समाज कल्याण, ग्राम योजना या अन्य कोई क्षेत्र, जिस पर राज्य सरकार का कार्यकारी अधिकार लागू होता है।, सम्बन्धित कार्य सौंपा जा सकता है।

राज्यपाल के दायित्व

स्वायत्त जिलों में राज्यपाल को महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। उनके पद की तुलना राज्यों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति के समतुल्य की जा सकती है। उनके द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में प्रशासन सम्बन्धी किसी भी प्रकार का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को भेजना आवश्यक नहीं है।

जिला तथा क्षेत्रीय कोष

प्रत्येक जिला और क्षेत्रीय परिषद के पास अपने कोष का प्रावधान है। प्राप्त सभी राशियों को उस कोष में जमा किया जाता है। राज्यपाल को कोष की व्यवस्था के लिए नियम बनाने का अधिकार है। जिला क्षेत्रीय परिषद के खाते को इस प्रकार से रखे जाने का प्रावधान है, जैसा कि राष्ट्रपति के पूर्व अनुमोदन से भारत के लेखा महानियंत्रक द्वारा निर्धारित हो। वे इस प्रकार के कोष की लेखा-परीक्षा करने की विधि भी निर्धारित कर सकते हैं तथा इसका प्रतिवेदन राज्यपाल के समझ प्रस्तुत करना होगा जो कि सम्बन्धित परिषदों के समक्ष प्रस्तुत करेंगा।

भू-राजस्व निर्धारण तथा संग्रह तथा करारोपण को शक्तियाँ

राज्य सरकार द्वारा अपनाये जाने वाले सिद्धान्तों के अनुसार जिला तथा क्षेत्रीय परिषदों को अपने नियंत्रण के अधीन भूमि के सम्बन्ध में राजस्व के निर्धारण तथा संग्रह करने का अधिकार प्राप्त है। परिषदों को अपने नियंत्रण के अधीन क्षेत्र की जमीनों तथा भवनों पर कर लगाने तथा संग्रह करने तथा इन क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों परकर लगाने का भी अधिकार है। परिषदों को अपने न्यायक्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित सभी अथवा कोई भी कर को लगाने तथा वसूलने का अधिकार प्राप्त है

(क) व्यवसायों, व्यापारों, धंधों तथा रोजगारों पर कर।

(ख) पशुओं, वाहनों तथा नावों पर करा

(ग) बाजार में बिक्री के लिए लाये जाने वाले माल के प्रवेश पर कर तथा नौकायानों पर होने वाले यात्रियों व सामानों पर कर।

(घ) पाठशालाओं, औषधालयों तथा सड़कों के रख-रखाव पर कर।

परिषद को कर लगाने तथा वसूलने के लिए विनियम बनाने का अधिकार है, किन्तु इन विनियमों को प्रभाव में लाने के पहले राज्यपाल की स्वीकृति अनिवार्य है।

खनिजों के सर्वेक्षण या खनन कार्य करने के लिए अनज्ञा (Licence) अथवा पट्टा (Lease) जारी करना।

राज्य सरकार तथा सम्बन्धित जिला परिषद के बीच सहमति से किसी स्वायत्त जिले के अंदर किसी भी क्षेत्र के सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत प्रत्येक वर्ष खनिजों के सर्वेक्षण तथा खनन के लिए जारी अनुज्ञा या पट्टा से प्राप्त हिस्सा (Share) अथवा राजशुल्क (Roylaty) को उक्त जिला परिषद को सौंप दिये जाने का प्रावधान है।

विनियमों को बनाने का अधिकार

जिला परिषद को जिले में निवास कर रहे गैर-अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों द्वारा जिले के अंदर किये जाने वाले साहूकारी अथवा व्यापार के विनियम तथा नियंत्रण के लिए विनियम बनाने का अधिकार है। प्रमुख रूप से विनियम :

(क) यह निर्धारित कर सकती है कि अनुज्ञाधारी (Licence holder) व्यक्ति के अलावा अन्य कोई भी व्यक्ति साहूकारी का धंधा नहीं करेगा।

(ख) साहूकार द्वारा लिए जाने वाले व्याज की अधिकतम दर को निर्धारित कर सकती है

(ग) साहूकारों के खाते की देखे रेख तथा इन खातों की जाँच जिला परिषद द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त अधिकारियों द्वारा कराये जाने का प्रावधान बना सकती है।

(घ) यह निर्धारित कर सकती है कि कोई भी गैर-जनजाति किसी भी वस्तु का थोक अथवा फुटकर व्यापार नहीं कर सकता, जब तक कि उसके नाम जिला परिषद द्वारा इस कार्य के लिए अनुज्ञा जारी न किया गया हो।

इस विषय पर बने सभी विनियमों की वैधता के लिए इसे जिला परिषद के कुल सदस्यों के कम से कम तीन चौथाई बहुमत द्वारा पारित किया जाना आवश्यक है। ऐसे सभी विनियमों को प्रभाव में लाने से पूर्व राज्यपाल की स्वीकृति की आवश्यकता है।

छठी अनुसूची के तहत कानूनों, नियमों तथा विनियमों का प्रकाशन

जिला परिषद अथवा क्षेत्रीय परिषद द्वारा इस अनुसूची के अन्तर्गत बनाये गये सभी कानूनों, नियमों तथा अधिनियमों को राज्य के सरकारी गजट में प्रकाशित किये जाने तथा इसके प्रकाशित होने पर ही कानून को लागू किये जाने का प्रावधान है।

स्वायत्त जिला/स्वायत्त क्षेत्रों के प्रशासन की जाँच करने तथा इसका प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए आयोग की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा प्रदेश में स्वायत्त जिलों/क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में उनके द्वारा विनिर्दिष्ट किसी भी विषय पर किसी भी समय आयोग नियुक्त किये जाने का प्रावधान है।

इन आयोगों द्वारा स्वायत्त जिलों/क्षेत्रों के प्रकाशनों की समय-समय पर जाँच किया जा सकता है तथा प्रतिवेदन मांगा जा सकता है, जो निम्नलिखित मदों के सन्दर्भ में हो सकते है।

(क) जिलों व क्षेत्रों में शैक्षणिक एवं चिकित्सा सुविधाओं तथा संचार का प्रावधाना

(ख) किसी नये अथवा विशेष विधान की आवश्यकता।

(ग) जिला / क्षेत्रीय परिषदों द्वारा बनाये गये कानूनों/नियमों तथा विनियमों का प्रयोग।

आयोग के इस प्रतिवेदन को राज्यपाल की सिफारिशों के साथ सम्ब) मंत्री द्वारा उस पर प्रस्तावित कार्रवाई दर्शाते हुए राज्य विधानसभा के पटल पर रखे जाने का प्रावधान है।

राज्यपाल को जिला/क्षेत्रीय परिषदों के किसी भी अधिनियम अथवा संकल्प को देश जिला अथवा क्षेत्रीय परिषद का भंग किया जाना जन-अधिसूचना द्वारा नियुक्त आयोग की सिफारिश पर राज्यपाल को किसी जिला अथवा क्षेत्रीय परिषद को भंग करने का अधिकार है तथा परिषद के गठन के लिए उन्हें नये सिरे से आम चुनावों के लिए निर्देश देने का अधिकार है। संविधान में यह प्रावधान है कि जिला अथवा क्षेत्रीय परिषद को राज्य विधान मंडल के समक्ष अपने विचार रखने का अवसर दिये बिना राज्यपाल द्वारा भंग करने की कार्रवाई नहीं की जा सकती। भंग होने की स्थिति में वे जिला अथवा क्षेत्रीय परिषद को प्रदत्त सभी अथवा किसी भी क्रिया-कलापों या शक्तियों का भार छः माह की अवधि के लिए, जिसे प्रत्येक अवसर पर अधिकतम छ: माह की अवधि के लिए बढ़ाया जा सकता है, स्वयं अपने ऊपर ले सकते हैं। इस प्रकार के प्रत्येक आदेश को राज्य विधान मंडल के समक्ष कारणों के साथ रखे जाने का प्रावधान है। इन आदेशों के जारी होने के पश्चात् राज्य विधान मंडल की पहली बैठक की तारीख से 30 दिनों की समाप्ति पर यह कार्य करना बंद कर देगा, जब तक कि विधान मंडल द्वारा उक्त अवधि समाप्त होने के पूर्व अनुमोदित नहीं कर दिया जाता।

जिलों में निर्वाचन क्षेत्रों के गठन के लिए स्वायत्त जिलों से क्षेत्रों से क्षेत्रों का अपवर्जन

असम अथवा मेघालय इत्यादि में विधान सभा चुनावों को ध्यान में रखते हुए राज्यपाल को आदेशात्मक घोषणा करने का अधिकार है कि स्वायत्त जिले के भीतर किसी भी क्षेत्र में इन जिलों के लिए सुरक्षित विधान सभा सीट को भरने के लिए किसी भी प्रकार के निर्वाचन क्षेत्र का गठन नहीं किया जा सकेगा, बल्कि विधान सभा की सीट भरने के लिए अब तक सुरक्षित न किये गये निर्वाचन क्षेत्र का एक भाग का गठन किया जायेगा।

छठी अनुसूची की संरचना जनजातियों को उनके अपने मामलों के प्रशासन में प्रभावी सहभागिता सुनिश्चित करती है। जैसा कि पूर्व में ही उल्लेख किया गया है कि एक ओर जहाँ पांचवी अनुसूची पैतृकवादी है तो वहीं दूसरी ओर छठी अनुसूची में सहभागितावादी है। यह प्रगति के लिए बेहद प्रभावकारी है और प्रशासन के प्रशिक्षण के लिए बेहतर आधार प्रदान करता है।

पांचवी अनुसूची तथा छठी अनुसूची में तुलना

पांचवी अनुसूची अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू होती है, जो देश के आठ राज्यों में विनिर्दिष्ट है, जबकि छठी अनुसूची जनजातीय क्षेत्रों पर लागू होती है, जो देश के चार राज्यों में विनिर्दिष्ट है। पांचवी अनुसूची के अंतर्गत संसद या राज्य विधान सभा द्वारा पारित कानून अनुसूचित क्षेत्रों पर स्वतः ही लागू हो जाते हैं, जब तक कि राज्यपाल द्वारा उक्त कानून अथवा उसके किसी अंश के लिए कोई विपरित घोषणा नहीं की जाती। छठी अनुसूची के तहत स्थिति बिल्कुल ही भिन्न है। संसद या राज्य विधान मंडल द्वारा जनजातीय क्षेत्रों के लिए बनाये गये कानून तब तक लागू नहीं होता, जब तक कि राज्यपाल उक्त कानून को उन क्षेत्रों के लिए विस्तारित नहीं करते। पहली स्थिति में तो कानून स्वतः लागू होता है, जब तक कि इस अपवर्जित न किया जाय, तो दूसरी स्थिति में कानून जब जक लागू नहीं होता तब तक विस्तारित न किया जाय।

पांचवी अनुसूची राज्यपाल को महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्रदान करती है, जो व्यावहारिक रूप से मंत्रिपरिषद की सहायता एवं सलाह से प्रयोग में लाया जाता है। अधिसूचना द्वारा या विनियम द्वारा वे कानून बना सकते हैं।

राज्यपाल संसद के अधिनियम या राज्य सरकार के अधिनियमों को किसी अनुसूची क्षेत्र में लागू होने से वर्जित कर सकते हैं अथवा संशोधन के अनुसार ही उसे लागू किया जा सकता है, किन्तु जब तक राज्यपाल इस प्रकार का कोई संशोधन नहीं करते, संसद अथवा राज्य विधान सभा के आम अधिनियम पांचवी अनुसूची में उल्लिखित क्षेत्रों पर लागू होगा। राज्यपाल को शांति एवं अच्छी सरकार के लिए तथा विशेष तौर पर अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों द्वारा इनके बीच भूमि के हस्तांतरण को रोकने के लिए अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि के आवंटन तथा साहूकारों के व्यापार चलाने को नियंत्रित करने के लिए विनियम बनाने की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। राज्यपाल को यह शक्ति सातवीं अनुसूची थी। ये सूचियाँ, अर्थात संघ सूची तथा सहयोगी सूची सभी प्रविष्टियों पर लागू होती है। इस शक्ति के प्रयोग का एकमात्र प्रतिरोध यह है कि जनजाति सलाहकार परिषद से पूर्ण परामर्श तथा राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति के बाद ही विनियम बनाया जाना चाहिए।

छठी अनुसूची जनजातीय क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों को स्वप्रशासन का विशेष प्रशासनिक ढांचा प्रदान करती है। संसद अथवा राज्य विधान मंडल द्वारा बनाये गये कानून इन क्षेत्रों में स्वतः ही लागू नहीं हो जाते, जब तक राज्यपाल की अधिसूचना द्वारा इन्हें लागू न किया गया हो। कानून या तो जिला परिषदों के द्वारा बनाये जाते हैं या उनके द्वारा लागू किये जाते हैं।

न्याय का संचालन जिला एवं क्षेत्रीय परिषदों के द्वारा उनके अपने अभिकरणों के द्वारा किया जाता है। उच्च

न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय का न्याय क्षेत्र जिला एवं क्षेत्रीय परिषदों पर वर्जित नहीं है। जनजातीय क्षेत्रों के वादों तथा प्रकरणों के निष्पादन हेतु उच्च न्यायालय का अधिकार राज्यपाल के आदेश के विनियमन पर आधारित होता है।

जिला एवं क्षेत्रीय परिषदों का अपना कोष (Fund) होता है। इन्हें कारारोपण तथा कुछ स्थानीय संस्थानों की स्थापना तथा प्राथमिक शालाओं, औषधालयों इत्यादि को संचालित करने का अधिकार प्राप्त है। जहाँ तक उनके अधिकारों तथा न्याय क्षेत्र का प्रश्न है, उन्हें पूर्ण स्वायत्ता प्राप्त है। हालांकि राज्यपाल द्वारा मतों का प्रयोग किया जाता है, जो उनके अधिनियमों या संकल्पों को निरस्त अथवा रद्द या उसे भंग कर उनका संचालन अपने हाथों में ले सकते हैं.

संक्षेप में, पांचवी अनुसूची पैतृकवादी है, तो छठी अनुसूची सहभागितावादी है। इसकी संरचना जनजातियों, उनके अपने मामलों के संचालन में उनकी प्रभावी सहभागिता तथा स्वायत्ता सुनिश्चित करती है। पांचवी अनुसूची के मामले में यद्यपि राज्यपाल को उनकी सुरक्षा तथा कुशल प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए कुछ शक्तियाँ प्राप्त हैं फिर भी ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है, जिसके द्वारा इन प्रावधानों को व्यवहारिक रूप से राज्य सरकार के ऊपर छोड़ दिया गया है।

नागालैंड, असम तथा मणिपुर के जनजातीय क्षेत्रों तथा पहाड़ी क्षेत्रों के लिए विशेष प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 371 (क), 371 (ख) तथा 371 (ग) के अनतर्गत क्रमशः नागालैण्ड राज्य, असम के जनजातीय क्षेत्रों तथा मणिपुर राज्य में विशेष प्रावधान निहित हैं।

जनजातीय नीतियाँ (Tribal Policiesaa)

भारत में विकास के लिए समय समय पर अनेक नीतियाँ परीक्षण के तौर पर अपनायी गयीं। इस सन्दर्भ में पृथक्करण, सात्मीकरण तथा एकीकरण की नीतियों की प्रमुख भूमिका रही हैं। ब्रिटिश शासन के दौरान सरकार जनजातियों के प्रति पृथक्करण की नीति का पालन किया करती थीं। भारत की अधिकांश जनजातियाँ सुदूर अरण्यक तथा पर्वतीय क्षेत्रों में निवास किया करती थीं। इन क्षेत्रों में प्रशासन का खर्च बहुत अधिक हो सकता था। दूसरी बात ब्रिटिश शासक जनजातीय समुदायों को भारतीय जीवन की मुख्य धारा में नहीं आने देना चाहते थे। कुछ ब्रिटिश अधिकारी सच्चे तौर पर यह मानते थे कि जनजातीय लोग तथाकथित भारतीयों से बेहतर तथा सुखमय जीवन जी रहे थे। अतएवं वे उन्हें सामान्य लोगों से दूर ही रखा जाना बेहतर समझते थे। ब्रिटिश शासकों ने वर्जित क्षेत्र (Eccluded area) तथा आंशिक वर्जित क्षेत्र (artially eccluded area) का सृजन किया तथा उन्हें पृथक राजनैतिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया, जो अंततः 1960 ई. में एक पृथक नागालैंड राज्य के निर्माण के रूप में सामने आया। वास्तव में क्षेत्रवार पृथक्करण की शुरुवात भारत सरकार के 1870 ई. के एक्ट को लागू करने के बाद प्रारम्भ हुआ तथा कुछ भू-भाग (ज्तंबज) अनुसूचित भू-भागजजैसे-हिमालय क्षेत्र में असम, दार्जिलिंग, कुमाऊ तथा गढ़वाल तथा मध्य भारत में छोटानागपुर तथा संथाल परगना, छत्तीसगढ़, कुमाँऊ तथा गढ़वाल तथा मध्य भारत में छोटानागपुर तथा संथाल परगना, छत्तीसगढ इत्यादि के रूप में विशेषरूप में रखा गया। 1874 में पारित अनुसूचित जिला अधिनियम (Scheduled District Act) भारत सरकार के 1870 अधिनियम को प्रभावित किया। 1919 ई0 तक अनेक अधिनियम समय समय पर लागू किये गये। भारत सरकार के 1919 अधिनियम के अन्तर्गत कुछ क्षेत्रों को पिछड़ा भू-भाग (Backward tracts) घोषित किया गया, जो कम या वेश अनुसूचित भू-भाग तथा अनुसूचित जिलों के कुछ जोड़ तथा घटाव का रूपान्तरण था। इन पिछड़े भू-भागों में प्रमुख रूप से आदिम जनजाति के लोग रहा करते थे। जनजातियों को इन सीमांकित क्षेत्रों में

विशेष संरक्षण देने की यह नीति आगे भी जारी रही। 1336 ई0 में पुनः भारत सरकार के अधिनियम (Act) 135 के 91 तथा 92 अनुच्छेद (Section) के तहत वर्जित क्षेत्र (Excluded area) तथा आंशिक वर्जित क्षेत्र (Partial Excluded area) सृजित किये गये। भारत सरकार के वर्जित तथा आंशिक वर्जित क्षेत्र आदेश 1336 के अनुसार क्षेत्रों की सूची जारी की गयी। राज्यपाल को मंत्रियों के मंत्रणा से कार्य करने का प्रावधान था।

1939 ई. में वेरियर एल्विन ने जनजातियों के राष्ट्रीय उद्यान (Nationsal Park) की स्थापना की वकालत की तथा उन्हें बाहरी दुनिया के साथ कम से कम सम्पर्क रखने का परामर्श दिया। 1941 ई0 में वेरियर एल्विन ने पुनः पृथक्करण (Isolation) के विचारों का समर्थन किया।

स्वतंत्रा प्राप्ति के बाद प्रारंभिक वर्षों के दौरान भारत सरकार ने कुछ संशोधनों के साथ पृथक्करण की नीति को अंगीकार किया। देश के बहत जनजातीय क्षेत्रों में विशेष कल्याण युक्तियाँ लागू की गयीं। यह कदम उन्हें अलगाववादी आंदोलनों के साथ आगे बढ़ाने में मददगार साबित हुआ। उदाहरणार्थ इस दौरान स्वतंत्र नागा राज्य तथा स्वायत झारखंड की मांग प्रबल हो उठी।

वेरियर एल्विन जो तत्कालिन असम सरकार के जनजातीय मामलें के सलाहकार थे, ने कुछ चरम मामलों में जनजातीय समूहों के पृथक्करण की अनुशंसा की। उनका जनजातियों को संग्रहालय के नमूने (Museum specimen) के रूप में राष्ट्रीय उद्यान (Ntional Park) में रखने की नीति को प्रशासन का नमूना (Midel) बनाया गया। यद्यपि बाद में चलकर 1959 ई0 में वेरियर एल्विन ने अपना स्पष्टीकरण देते हुए कहा था कि हमलोग जनजातियों को संग्रहालय के नमूने के तौर पर परिरक्षित रखना नहीं चाहते तथा इनकी प्रगति को सुई को रोकना भी नहीं चाहते, किन्तु इसके लिए सही समय की हमें प्रतीक्षा करनी चाहिये। वेरियर एल्विन के शब्दों में "हम उदात्त जंगली (ccZj) के मिथक में विश्वास नहीं कर सकते, किन्तु हमें अधर्मो (Ignoble) का एक वर्ग भी सृजित करना नहीं चाहते।

कालान्तर में जनजातीय संकेन्द्रन के कुछ खास क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्र (Scheduled Area) तथा जनजातीय क्षेत्र (Tribal Assembly) द्वारा ए0बी0 ठक्कर के नेतृत्व में गठित उप समिति ने जनजातियों को कृषि भूमि से बेदखल किया जाना तथा सूदखोरों द्वारा उनके शोषण से उनकी सुरक्षा पर विशेष बल दिया गया था। इस उप समिति ने भोले भाले व कमजोर जनजातियों से लोगों में फायदा उठाने की लालच तथा विगत अनुभवों को ध्यान में रखते हुये जनजातीय भूमि की सुरक्षा के लिए वैधानिक सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक समझा। संविधान सभा ने कुछ क्षेत्रों को विशिष्ट क्षेत्र के रूप में पृथक रखने हेतु कभी भी सिफारिश नहीं की, किन्तु वह जनजातियों के शोषण की समाप्ति चाहती थी। इस सुरक्षा (Safeguard) का क्रियान्वयन कुछ क्षेत्रों को जनजातीय क्षेत्र (Tribal Area) तथा अनुसूचित क्षेत्र (Scheduled area) के रूप में चिन्हित कर किया गया। भारतीय संविधान के खंड X के अन्तर्गत अनुच्छेद 244 तथा 244 (क) में अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन का प्रावधान है। अनुसूचित क्षेत्र संविधान की पांचवी अनुसूची के अन्तर्गत निहित प्रावधानों के द्वारा नियंत्रित है। इन्हें पांचवी अनुसूचित क्षेत्र भी कहा जाता है। जनजातीय क्षेत्र संविधान की छठी अनुसूची के प्रावधानों द्वारा नियंत्रित होता है। यह प्रावधान भी सामान्य जनसंख्या तथा जनजातीय जनसंख्या के बीच संवैधानिक खाई पैदा किया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों को सूचीबद्ध किया जाना तथा उन्हें एक विशेष कानून के अन्तर्गत रखा जाना पृथकता का प्रभाव पैदा किया।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत जनजातीय विकास हेतु पृथक रूप में वित्तीय प्रावधान किया जाना भी पृथक्करण नीति का समर्थन करता है। जनजातीय कल्याण हेतु निधि जनजातीय विकास के लिए

सुरक्षित रखे गये तथा सामान्य निधि जनजातियों के विकास कायक्रमों के लिए उपयोग में नहीं लाये गये। जनजातियों को सामान्य लोगों के हिस्सों के रूप में सामान्य लाभ नहीं प्रदान किये गये। अनुसूचित क्षेत्र तथा अनुसूचित जनजाति आयोग के प्रतिवेदन के उस कथन से जनजातीय पृथककता की तीव्रता अनुभव की जा सकती है-शताब्दियों की पृथककता से यह समस्या उत्पन्न हुई है। इसी कारण जनजातीय समस्यायें भारतीय समाज के अन्य वर्गों की समस्याओं से भिन्न हैं। यह आशाजनक बात है कि जनजातीय लोग स्वयं अपनी समस्याओं के समाधान के लिए जागरत हुए हैं तथा उसके प्रति जबाबदेह होने लगे हैं।

सात्मीकरण (Assimilation)

भारत में जनजातीय समुदायों का गैर जनजातीय समुदायों के साथ सात्मीकरण एक निरन्तर प्रक्रिया के रूप में जारी रही है। क्रोबर (Kroeber) ने सात्मीकरण के विषय में अपना विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि "आमतौर पर हमलोग सात्मीकरयर की अपेक्षा केवल उस स्थिति में कर सकते हैं, जब एक समाज का दृष्टिकोण (inclusive) हो तथा जब यह समाज निश्चित रूप से सशक्त हो तथा इसकी संस्कृति अपेक्षाकृत ज्यादा विकसित हो। भारत में जनजातीय आबादी के हिन्दू तथा अन्य गैर जनजातीय लोगों के सम्पर्क में निवास के कारण इसके विभिन्न हिस्सों में सांस्कृतिक सम्पर्क के भिन्न-भिन्न अंश सात्मीकरण के अन्तर्गत अस्तित्व में रहे हैं। कुछ जनजातियाँ धीरे-धीरे हिन्दू जीवन शैली को अंगीकार कर चुकी हैं तो कुछ जनजातियाँ ईसाई धर्म के अंतर्गत दीक्षा प्राप्त कर ली हैं। इस सांस्कृतिक सम्पर्क ने जनजातियों के विभिन्न प्रकारों को जन्म दिया है तथा सात्मीकरण के स्तर पर विभिन्न प्रकार के जनजातीय वर्गों का उद्भव हो चुका है। जी०एस० घुरिये ने इस आधार पर भारत की जनजातियों को तीन वर्गों के अंतर्गत वर्गीकिश्त किया है-(1) हिन्दू समाज के अन्तर्गत उच्च प्रस्थिति के सदस्य जैसे-राम गोंद, (2) आशिक हिन्दूकरत, तथा (3) पहाड़ी शाखा। डी.एन. मजुमदार ने जनजातियों के बीच हिन्दू प्रभाव को उत्तरदायी मानते हुये जनजातियों के तीन वर्गों की चर्चा की है-(1) Real primitive, (2) Privmitive tribe with a degree of association with Hindu caste rFkk (3) Hinduized tribesaa osfj;u,fYou us bl lanHkZ esaaa pkj izdkj dh tutkfr;ksa dk o.kZu fd;k gS& (1) Most Primitive (2) Individualisstic and used to otuside.life (3) Detribaliszed rFkk (4) Tibal aristocarate 1952 esaaa lkekftà di: Z ds Hkkjrh; IEesaayu (Indian conference of social work) esaaa pkj izdkj dh tutkfr;ksa dk mYys[k fd;kx;k FkkA & (1) Tribal communitesaa, (2) Semi-tribal communitiesaa, (3) Acculturated com-munitiesaas RkFkk (4) Totaly assimilated tribe. ";kek pj.k nqes us lkRehdj. k ds lUnHkZ esaaa ikap izdkj dh tutkfr;ksa dk mYys[k fd; k gS & (1) Aboriginals living in seclusion (2) Tribal grou[with some village folk association (3) Tribals living (4) Tribals, who have been foreced to live as untoouchaplesaa rFkk (5) Tribals enjoying a high social status.

उपर्युक्त वर्गीकरण भारतीय जनजातीय संस्कृति के बीच सात्मीकरण की प्रक्रिया को विभिन्न रूपों में व्याख्या की है। एम0एन0 श्रीनिवास ने सांस्कृतिकरण, सूरजीत सिन्हा ने भूमिजों के लिए जनजाति-जाति निरंतरता तथा सच्चिदानन्द ने गोंद जनजाति पर सात्मीकरण की प्रघटना का विशेष उल्लेख किया है।

झारखण्ड के चेरो, खरवार तथा भूमिज जनजातियों पर हिन्दू राजपूत जाति के सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण उनके बीच क्षत्रीयता जैसी अवधारणा विकसित हुई है। झारखंड की मुंडा तथा उराँव जनजातियों पर हिन्दू जातियों का प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन जनजातियों द्वारा हिन्दू पदाधिकारियां तथा ब्राह्मणों की सेवा लेना प्रारम्भ किया गया। झारखण्ड की हो जनजाति के लोग

भी अपने पड़ोसी हिन्दुओं से काफी कुछ सांस्कृतिक स्तर पर स्वीकार किया है। इनके बीच प्रचलित दिकू आंदी विवाह के अंतर्गत हिन्दू ब्राह्मणों द्वारा कर्मकांड सम्पादित किये जाते हैं।

जी.एस. घुरिये तथा अक्षय देसाई जनजातीय समस्याओं के निदान हेतु सात्मीकरण (पउपसंजपवद) का सुझाव दिया है। इसे स्पष्ट करते हुए जी. एस. बुरिये ने कहा है कि भारत में अधिकांश जनजातियों परिवार, विवाह, धर्म तथा आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में अपने पड़ोसी हिन्दुओं के ही समान हैं। इस दृष्टि से उन्हें बाहरी समूहों से पृथक करके नहीं, बल्कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में उनका सात्मीकरण करके ही जनजातीय समस्याओं का समाधान किया जा सकता हैं। इस दृष्टि से उन्हें बाहरी समूहों से पृथक करके नहीं, बल्कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में उनका सात्मीकरण करके ही जनजातीय समस्याओं समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। इस अर्थ में जनजातीय समूहों को पिछड़े हिन्दुओं की तरह मानकर उनका विकास किया जाना चाहिए। ए. आर. देसाई भी जनजातियों की समस्याओं का समाधानं सात्मीकरण के आधार पर करना उचित मानते हैं, किन्तु उन्होंने यह सात्मीकरण हिन्दू समाज से करने के बजाय "भारतीय जीवन की राष्ट्रीय धारा" के साथ करने का सुझाव दिया है।

स्वतंत्रता पूर्व काल के दौरान जनजातियों के सन्दर्भ में बनाय गयी नीतियाँ पृथक्करण सात्मीकरण विवाद के इर्द-गिर्द घुमती रही। ब्रिटिश प्रशासन विभिन्न कारणों से जनजातीय क्षेत्रों तक नहीं पहुंच पाता था। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने जनजातियों को स्वतंत्रता संघर्ष के प्रति विलगावं उत्पन्न करने का भी प्रयास किया। कुछ ब्रिटिश प्रशासकों का यह भी मानना था कि परमानन्द की स्थिति में जीवन यापन कर रहे जनजातियों को बाधित नहीं करना चाहिये। दूसरी ओर सामाजिक कार्यकर्ताओं व कुछ सामाजिक वैज्ञानिकों का मानना था कि जनजातीय लोग भारतीय सभ्यता के एक भाग का प्रतिनिधित्व करते थे यथा वे भी सिर्फ पिछड़े हुए हिन्दू थे। उनका यह मानना था कि इन्हें जितनी जल्दी देश की मुख्य आबादी के साथ स्वांगीकृत (Assimitate) किया जाय, दोनों के लिए उतना ही बेहतर होगा। परन्तु स्वतंत्रता के बाद इस विवाद को छोड़ दिया गया। जनजातीय आबादी के इतने बड़े भाग को देश की मुख्य धारा से पृथक नहीं रखा जा सकता था। जनजातीय क्षेत्र एवं वहाँ के निवासियों का विकास अतिआवश्यक था। सरकार देश के सभी वर्गों का सम्पूर्ण विकास की नीति के प्रति समर्पित थी। विशेष रूप से, उनके लिए जिनकी अब तक उपेक्षा की गयी थी। इस पृथक्करण की नीति को अंगीकारर करना न संभव था, न वांछनीय। कुछ सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने पृथक्करण की स्थिति का प्रतिकार किया, जिसका वास्तव में कोई औचित्य नहीं था। उन्होंने इस कार्य के लिये मानवशास्त्रियों को जिम्मेदार ठहराया। वे इस बात से अनभिज्ञ थे कि स्वतंत्रता पूर्व काल के दौरान "अजायबघर" सिद्धान्त के प्रवर्तक वेरियर एल्विन ने भी स्वतंत्रता के बाद जनजातीय क्षेत्रों में सुनियोजित हस्तक्षेप का समर्थन किया था, जैसा कि उनकी पुस्तक "नेफा दर्शन" में वर्णित है।

एकीकरण (Integration)

जनजातीय विकास के सन्दर्भ में पृथक्करण तथा सात्मीकरण की नीतियों संबन्धित विगत अनुभव तथा उनका परिणाम सामाजिक चिन्तकों तथा सुधारकों को मध्यम मार्ग अपनाया जाना ज्यादा उचित प्रतीत हुआ। भारतीय संस्कृति का आधार विभिन्नता में एकता (Unity in Diversity) एक बार पुनः सार्थक साबित हुआ। सामाजिक सुधारकों, राजनीतिज्ञों, मानवशास्त्रियों तथा अन्य विशेषज्ञों ने जनजातीय विकास के लिए एकीकरण उपागम (Unity in diversity) एक बार पुनः सार्थक साबित हुआ। सामाजिक सुधारकों, राजनीतिज्ञों, मानवशास्त्रियों तथा अन्य विशेषज्ञों ने जनजातीय विकास के लिए एकीकरण उपागम (Integrated approaxch) को स्वीकार करने पर बल दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान के अंतर्गत प्रदत सर्वो को समानता के अधिकार के आधार पर प्रशासन द्वारा जनजातीय विकास के

लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये। स्वतंत्र देश के नागरिक होने के नाते जनजातियाँ भी वयस्क मताधिकार के हकदार थीं तथा वे राष्ट्रीय नीतियों को प्रभावित करने में समक्ष थीं। देश के खनिज बाहुल्य क्षेत्रों में जहाँ जनजातीय आबादी का मुख्य संकेन्द्रण था, राष्ट्रीय आर्थिक विकास हेतु प्रवेश की आवश्यकता महसूस की गई। अन्य क्षेत्रों में भी ग्रामीण विकास की बाध्यता से संचार व्यवस्था के एक बड़े जाल का निर्माण हुआ। सीमा सुरक्षा के कारणों ने इस दिशा के विशेषरूप से उत्तरी-पूर्व भारत में प्रयासों को गति प्रदान की।

अतः पृथक्करण की नीति को छोड़ते हुए जनजातीय कल्याण के लिए एक साकारात्मक कार्यक्रम निर्माण की आवश्यकता महसूस की गयी। प्रारम्भ में जनजातीय तथा गैर जनजातीय क्षेत्रों में सामान नीतियाँ (Community Development Block) लागू की गयी, जिसके विनाशकारी परिणाम सामने आये। ऐसा अनुभव किया गया कि सात्मीकरण से जनजातियों की समस्याओं का हल नहीं निकल सकता। अतएवं एक राष्ट्रीय जनजातीय नीति पंचशील का उद्भव हुआ। पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा घोषित "आदिवासी पंचशील" पर आधारित कार्यक्रम प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत जनजातीय विकास हेतु समाविष्ट किये जाते रहे हैं। परन्तु यह "आदिवासी पंचशील" वेरियर एल्विन की पुस्तक "Philosohhy for NEFA " के आमुख में पंडित नेहरू द्वारा उल्लिखित जनजातीय विकास के पांच सूत्रों में रखा गया एक दार्शनिक संकेत मात्र है, न कि कोई विस्तृत नीतिगत विवेचना। आदिवासी पंचशील के तहत जनजातियों को अपने स्वयं की प्रतिभाओं की दिशा में विकसित होने के अवसर तथा भूमि एवं वनों के सम्बन्ध में जनजातीय अधिकारों को देने की बात की गयी। राष्ट्रीय नेताओं द्वारा यह अनुमान लगाया गया कि भारत का उद्देश्य अनेकता में एकता के सिद्धान्त में सन्निहित है। यह वास्तव में एकीकरण की वह नीति है, जिसमें प्रत्येक संघटक ईकाई अपनी सांस्कृतिक पहचान एवं स्वायतत्ता बरकरार रखती है, जिसमें प्रत्येक संघटक इकाई अपनी सांस्कृतिक पहचान एवं स्वायतत्ता बरकरार रखती है, किन्तु प्रत्येक इकाई के अंतर्गत कुछ आधार भूत मूल्यों, व्यवहारों व रूचियों की समानता है, जो हमारे संविधान में निहित है। भारतीय समाज में जनजातियों का एकीकरण राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारतीय समाज में जनजातियों का एकीकरण राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत का उत्तरी पूर्व खंड विदेशी प्रभाव-के घुसपैठ के प्रति बहुत ही सुरक्षित है और इस दिशा में जितना कारगर कदम उठाया जाय उतना ही बेहतर है। वयस्क मताधिकार की शुरुआत तथा संचार सम्पर्क के विकास के परिणामस्वरूप राजनैतिक नागरिकता एवं क्षेत्रीय स्वयत्तता की गांग बढ़ती जा रही हैं। यह औपनिवेशिक शासन से उत्पन्न सभी विकसित राष्ट्रों के लिए एक समस्या ही हैं। यह औपनिवेशिक शासन से उत्पन्न सभी विकसित राष्ट्रों के लिए एक समस्या ही है। स्वायत्तता के लिए विभिन्न परिणामों में की गई मांगे असंतोष की अभिव्यक्ति है, जो सांस्कृतिक पहचान खो देने के डर से तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न समूहों द्वारा शोषण के कारण उत्पन्न होती हैं। इस लम्बी दौड़ में मांगें रूचियों को जोड़ने में सहायक होती हैं। इससे समूहों का अधिक प्रभावकारी एकीकरण होता है।

जनजातीय विकास के योजना तथा कार्यक्रम
(Planning and Programmsesaa of Tribal devvelopment)

देश में जनजातीय आबादी के विकास के लिए सरकार द्वारा कई योजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं:

1. **जनजातीय उप-योजना के लिए विशेष केंद्रीय सहायता (एस.सी.ए. से टी.एस.एस.)**

   जनजातीय उप-योजना के लिए विशेष केंद्रीय सहायता (एस.सी.ए. से टी.एस.एस.) भारत सरकार से 100% अनुदान है (1977-78 से)। इसे भारत की समेकित निधि (पूर्वोत्तर राज्यों के लिए अनुदान

को छोड़कर, एक मत मद) से लिया जाता है और यह राज्य योजना निधि और जनजातीय विकास के प्रयासों के लिए एक अतिरिक्त है। इस अनुदान का उपयोग एकीकृत जनजातीय विकास एजेंसी (आई.टी.डी.ए.), एकीकृत जनजातीय विकास परियोजना (आई.टी.डी.पी.), संशोधित क्षेत्र विकास दृष्टिकोण (एम.ए.डी.ए.) पॉकेट्स और क्लस्टर्स, पी.वी.टी.जी. और बिखरी हुई जनजातीय आबादी के आर्थिक विकास के लिए किया जाता है।

2. संविधान के अनुच्छेद 275(1) के तहत सहायता अनुदान

भारत के संविधान के अनुच्छेद 275(1) के प्रावधान के तहत सहायता अनुदान भारत सरकार से राज्यों को 100% वार्षिक अनुदान है। यह भारत की संचित निधि (पूर्वोत्तर राज्यों के लिए अनुदान को छोड़कर, एक मत प्राप्त मद) से लिया जाता है और यह राज्य योजना निधि और जनजातीय विकास के प्रयासों के लिए एक अतिरिक्त राशि है। निधि का उपयोग एकीकृत जनजातीय विकास एजेंसी (आईटीडीए), एकीकृत जनजातीय विकास परियोजना (आईटीडीपी), संशोधित क्षेत्र विकास दृष्टिकोण (एमएडीए) पॉकेट्स और क्लस्टर्स तथा पीवीटीजी के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए किया जाता है।

अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए काम करने वाले स्वैच्छिक संगठनों को अनुदान सहायता की योजना यह योजना 1953-54 में शुरू की गई थी और इसे अंतिम बार 1 अप्रैल 2008 से संशोधित किया गया था। इस योजना का मुख्य उद्देश्य सरकार की कल्याणकारी योजनाओं की पहुँच को बढ़ाना और स्वैच्छिक संगठनों के प्रयासों के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, कृषि-बागवानी उत्पादकता, सामाजिक सुरक्षा जाल आदि जैसे क्षेत्रों में सेवा की कमी वाले जनजातीय क्षेत्रों में अंतराल को भरना है, और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के सामाजिक-आर्थिक उत्थान और समग्र विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करना है। स्वैच्छिक प्रयासों के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास या आजीविका सृजन पर प्रत्यक्ष सकारात्मक प्रभाव डालने वाली किसी अन्य नवीन गतिविधि पर भी विचार किया जा सकता है। यह योजना केंद्रीय क्षेत्र की योजना है। गैर-सरकारी संगठनों को संबंधित राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन की बहु-विषयक राज्य स्तरीय समिति द्वारा विधिवत अनुशंसित निर्धारित प्रारूप में आवेदन करने पर अनुदान प्रदान किया जाता है। आम तौर पर सरकार द्वारा 90% तक निधि प्रदान की जाती है। स्वैच्छिक संगठन से अपेक्षा की जाती है कि वह शेष 10% शेष राशि अपने स्वयं के संसाधनों से वहन करे।

3. कम साक्षरता वाले जिलों में अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के बीच शिक्षा को मजबूत करने की योजना

इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के लिए शिक्षा के लिए आवश्यक माहौल बनाकर, पहचाने गए जिलों या ब्लॉकों में, विशेष रूप से नक्सल प्रभावित क्षेत्रों और विशेष रूप से कमजोर आदिवासी समूहों (पीवीटीजी) के निवास वाले क्षेत्रों में सामान्य महिला आबादी और आदिवासी महिलाओं के बीच साक्षरता के स्तर में अंतर को पाटना है। यह एक केंद्रीय क्षेत्र की लिंग विशिष्ट योजना है और मंत्रालय 100% वित्त पोषण प्रदान करता है। संबंधित राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन की बहुविषयक राज्य स्तरीय समिति द्वारा विधिवत अनुशंसित आवेदन (निर्धारित प्रारूप में) पर पात्र गैर सरकारी संगठनों को अनुदान प्रदान किया जाता है। इस योजना को 1.4.2008

से संशोधित किया गया है। इसे 54 चिन्हित कम साक्षरता वाले जिलों में लागू किया जा रहा है, जहाँ 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 25% या उससे अधिक है और अनुसूचित जनजाति की महिला साक्षरता दर 35% से कम है।

4. जनजातीय क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण की योजना

इस योजना का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जनजाति के युवाओं को विभिन्न प्रकार की नौकरियों के साथ-साथ स्वरोजगार के लिए कौशल विकसित करना और उनकी आय में वृद्धि करके उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार करना है। इस योजना में सभी राज्य और केंद्र शासित प्रदेश शामिल हैं। यह एक क्षेत्र-विशिष्ट योजना नहीं है, शर्त यह है कि मुफ्त व्यावसायिक प्रशिक्षण सुविधाएँ केवल आदिवासी युवाओं को दी जाती हैं, इस योजना के तहत 100% अनुदान राज्यों, केंद्र शासित प्रदेशों और योजना को लागू करने वाले अन्य संघों को प्रदान किया जाता है। इस योजना के अंतर्गत प्रत्येक व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र (वीटीसी) क्षेत्र की रोजगार क्षमता के आधार पर पारंपरिक कौशल में पाँच व्यावसायिक पाठ्यक्रम प्रदान कर सकता है। 2018-19 से इस योजना को बंद करने का निर्णय लिया गया है और इस हस्तक्षेप को जनजातीय उप-योजना (एससीए से टीएसएस) के लिए विशेष केंद्रीय सहायता योजना के अंतर्गत शामिल किया जाना है।

5. विशेष रूप से कमज़ोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) का विकास

1998-99 में, पीवीटीजी के विशेष विकास के लिए 100% केंद्रीय क्षेत्र की योजना शुरू की गई थी। इसे और अधिक प्रभावी बनाने के लिए 1.4.2015 से योजना को संशोधित किया गया। इस योजना में केवल 75 चिन्हित विशेष रूप से कमज़ोर जनजातीय समूहों को शामिल किया गया है। यह योजना बहुत लचीली है और यह प्रत्येक राज्य को पीवीटीजी के लिए किसी भी विकासात्मक गतिविधि पर ध्यान केंद्रित करने में सक्षम बनाती है, जैसे कि आवास, भूमि वितरण, भूमि विकास, कृषि विकास, मवेशी विकास, कनेक्टिविटी, प्रकाश के उद्देश्य के लिए ऊर्जा के गैर-पारंपरिक स्रोतों की स्थापना, सामाजिक सुरक्षा या व्यापक सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए कोई अन्य अभिनव गतिविधि।

जनजातीय आन्दोलन
(Tribal Movement)

bdkÃ&10
tutkrh; vkUnksyu dk vFkZ ,oa fo'ks"krk,¡

आन्दोलन सामूहिक व्यवहार का स्वरूप है। यह उद्विकास प्रगति और विकास की भांत ही परिवर्तन का एक ढंग भी है। मानव अपने व्यवहार की अभिव्यक्ति दो प्रकार से कर सकता है, व्यक्तिगत तौर पर और सामूहिक तौर पर सामूहिक तौर पर व्यक्त किया गया व्यवहार या तो समाज व्यवस्था का पोषक होता है या उसका विरोधी आन्दोलन का संचालन समाज तथा संस्कृति में नवीन परिवर्तन लाने अथवा नवीन परिवर्तनों का विरोध करने के लिए होता है। आन्दोलनों का उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में आंशिक अथवा आमूल-चूल परिवर्तन लाना हो सकता है। अन्य शताब्दियों की तुलना में बीसवीं शताब्दी में सर्वाधिक आन्दोलन हुए हैं। इसी शताब्दी में रूस और चीन में बड़े पैमाने पर क्रान्तियां हुई, इटली में फासीवाद तथा जर्मनी में नाजीवाद का उदय हुआ। कई राष्ट्रों ने साम्राज्यवाद से मुक्ति पाने तथा स्वतन्त्र होने के लिए आन्दोलन किए। आधुनिक समाज अधिक चेतन व गतिशील होने के लिए आन्दोलन की ओर अधिक आकश्ष्ट होते हैं। वर्तमान समय में अनेक मजदूर आन्दोलन भी हुए हैं। फ्रांस, रूस व चीन की क्रान्तियों का उद्देश्य राजनीतिक सत्ता में परिवर्तन लाना था। भारत में ब्रह्मा समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकश्ष्ण मिशन आदि द्वारा चलाए गए आन्दोलनों का उद्देश्य धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में परिवर्तन एवं सुधार लाना था। भारत में ब्रह्मा समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकरष्ण मिशन आदि द्वारा चलाए गए आन्दोलनों का उद्देश्य धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में परिवर्तन एवं सुधार लाना था। असम में छात्रों द्वारा संचालित आन्दोलनों का उद्देश्य धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में परिवर्तन एवं सुधार लाना था। असम में छात्रों द्वारा संचालित आन्दोलनों का उद्देश्य वहा से विदेशियों को निकालना रहा है। मध्य प्रदेश की जनजातियों में हुए बिरसा आन्दोलन तथा भगत आन्दोलन, वीरसिंह आन्दोलन व राजस्थान के भीलों में हुए भगत आन्दोलन का उद्देश्य जनजातियों के सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन लाना तथा कुप्रथाओं से मुक्ति पाना था। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारतीयों में राष्ट्रीय एकता का संचार किया और देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने के लिए देशवासियों में चेतना जाग्रत की। उसी के परिणामस्वरूप 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ। कबीर नानक तुकाराम राजा राममोहन राय एवं गांधीजी द्वारा चलाए गए आन्दोलनों का उद्देश्य भारतीय समाज में प्रचलित रूढ़ियों, बुराइयों, अन्धविश्वासों को दूर कर एक स्वस्थ एवं सुद्रढ़ समाज की स्थापना करना था। .

किसी भी समाज में आन्दोलन तब पैदा होता हैं, जब वहाँ के लोग वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट हों और उसमें परिवर्तन लाना चाहते हैं। कई बार आन्दोलन किसी परिवर्तन का विचारधारा अवश्य होती है। किसी भी आन्दोलन का प्रारम्भ पहले असगठित रूम में होता है। धीरे-धीरे उसमें व्यवस्था तथा संगठन पैदा हो जाता है। आन्दोलनों में प्रारम्भिक समाज शास्त्रियों की रूचि परिवर्तन के एक प्रयास के रूप में रही जबकि

वर्तमान समाजशास्त्री आन्दोलनों को परिवर्तन उत्पन्न करने या उसे रोकने के प्रयास के रूप में देखते हैं।

हार्टन एवं हण्ट, "आन्दोलन को परिभाषित करते हुए लिखते है, आन्दोलन समाज अथवा उसके सदस्यों में परिवर्तन लाने अथवा उसका विरोध करने का सामूहिक प्रयास है।"

थियोडोरसन लिखते हैं, "आन्दोलन सामूहिक व्यवहार का एक महत्वपूर्ण स्वरूप है, जिसमें परिवर्तन लाने अथवा इसका विरोध करने में सहयोग देने के लिए लोगों को बहुत बड़ी संख्या में संगठित अथवा जागरूक किया जाता है।"

कैमरान के अनुसार, "आन्दोलन तब होते हैं, जब एक बड़ी संख्या में लोग विद्यमान संस्कृति या सामाजिक व्यवस्था के किसी भाग को परिवर्तित करने अथवा उसके स्थान पर दूसरे को स्थापित करने के लिए एक साथ बंध जाते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि आन्दोलन का उद्देश्य समाज अथवा संस्कृति में कोई आंशिक पूर्ण परिवर्तन लाना अथवा परिवर्तन का विरोध करना होता है। आन्दोलन में कोई व्यक्ति अनौपचारिक रूप से सम्मिलित होते हैं। अतः यह एक सामाजिक क्रिया एवं सामूहिक प्रयास है। प्रत्येक आन्दोलन एवं विशिष्ट परिस्थिति की देन होता है।

आन्दोलन की विशेषताएं (तत्व) (CHARACTERISTICS OF MOVEMENT)

आन्दोलन की अवधारणा को और अधिक स्पष्टता से समझने के लिए यहाँ हम उसकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करेंगे :

(1) **सामाजिक परिवर्तन का एक स्वरूप**-आन्दोलन सामाजिक परिवर्तन का ही एक ढंग या स्वरूप है। आन्दोलन का उद्देश्य समाज में परिवर्तन लाना या परिवर्तनों का विरोध करना होता है। जब कोई आन्दोलन सफल हो जाता है, तो वह अपने लक्ष्यों के अनुरूप समाज में परिवर्तन लाता है।

(2) **निश्चित उद्देश्य**-प्रत्येक आन्दोलन का कोई न कोई निश्चित उद्द्येय होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ही लोग संगठित एवं जागरूक होकर प्रयत्न करते हैं।

(3) **संकट अथवा समस्या**-प्रत्येक आन्दोलन का जन्म किसी न किसी संकट अथवा समस्या के कारण हो होता है। जब समाज में कोई ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है, जिसे लोग और अधिक सहन नहीं कर सकते तो उसे हटा देने और उसके स्थान पर नई व्यवस्था लाने के लिए आन्दोलन करते है।

(4) **सामूहिक प्रयत्न -** किसी भी आन्दोलन को आन्दोलन उसी समय कहा जायेगा जब उसमें समाज के अनेक व्यक्ति सम्मिलित हो, आन्दोलन में अधिक से अधिक लोगों का सहयोग प्राप्त करने के लिए असन्तुष्ट लोगों का एकत्रित किया जाता है और उन्हें सामूहिक व्यवहार के लिए प्रेरित किया जाता है।

(5) **अनौपचारिक संगठन**-प्रत्येक आन्दोलन का एक अनौपचारिक संगठन होता है। इस संगठन के द्वारा ही आन्दोलन के प्रयासों को प्राप्त करने की योजना बनायी जाती है।

(6) **नियोजित प्रयत्न**-आन्दोलन को विभिन्न चरणों में पूरा करने के सामूहिक प्रयास किए जाते हैं। अनियोजित प्रयत्नों के आधार पर आन्दोलन को अधिक समय तक संचालित नहीं किया जा सकता।

NOTES

(7) **अवैधता या समाज विरोधी प्रकृति**-चूँकि अधिकांश आन्दोलनों का उद्देश्य वर्तमान व्यवस्था में आंशिक या पूर्ण परिवर्तन वाला होता है जिसे प्रचलित व्यवस्था अथवा सत्ता मान्यता नहीं देती। अतः आन्दोलन अवैध माने जाते है, और उन्हें समाज या व्यवस्था विरोधी करार दे दिया जाता है।

(8) **वैचारिकी**-प्रत्येक आन्दोलन के पीछे कोई न कोई वैचारिकी या विचारधारा अवश्य होती है, वैचारिकी विश्वास, मूल्यों मतों एवं प्रवरत्तियों का एक संगठन होता है, जिसमें मानव के भूतकाल के अनुभव मौजूद होते हैं, और इसका प्रयोग वह वर्तमान की किसी घटना की व्याख्या करने अथवा उसे उचित साबित करने के लिए करता

(9) **सुधासत्मक प्रवृत्ति**-आन्दोलन की प्रकृति प्रचलित व्यवस्था अथवा संस्कृति में पूर्ण या आंशिक सुधार लाने की होती हैं, आन्दोलन का उद्देश्य प्राचीन रूढ़ियों, अन्धविश्वासों एवं शोषणकारी व्यवस्था को समाप्त करना होता है।

(10) **विकास**-प्रत्येक आन्दोलन का धीरे-धीरे विकास होता है, अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले शोषण एवं अत्याचार तथा स्वतन्त्रा पाने की लालसा ने राष्ट्रीय आन्दोलन को उग्र एवं संगठित बनाया। असन्तोष के बढ़ने और सचित होने के साथ-साथ आन्दोलन भी विकसित होता है, और उग्र रूप धारण करता है। कभी-कभी आन्दोलन को दबाने का प्रयास भी किया जाता है, तब कई बार वह छिन्न-भिन्न भी हो जाता है।

bdkÃ&11
tutkrh; vkUnkyu dk dkj.k ,oa lgk;d fn'kk,

आन्दोलन वैसे ही जन्म नहीं लेते, वे वहीं जन्म लेते हैं, जहाँ परिस्थितयां इनके अनुकूल होती हैं। ये परिस्थितियाँ ही आन्दोलन को प्रेरित करती हैं, एवं आन्दोलन के लिए लोगों में इच्छा जाग्रत करती हैं। किसी भी आन्दोलन में सहायक परिस्थितियां निम्नाकित हैं

(1) **सांस्कृतिक स्रोत्र**-जब संस्कृति में नए मूल्य जन्म लेते हैं और लोगों की जीवन विधि में परिवर्तन या संशोधन होते हैं, तब आन्दोलन के जन्म लेने के अवसर मौजूद रहते है।

(2) **सामाजिक विघटन**-जब समाज में विघटन की स्थिति होती है, तब भी आन्दोलन जन्म लेते हैं। संगठित समाजों में आन्दोलन नहीं होते है, क्योंकि वहाँ लोग सुरक्षित होते हैं, अतः वे असन्तोष महसूस नहीं करते और परिवर्तन में रूचि नहीं रखते। जब समाज में असुरक्षा, भ्रम एवं बेचैनी बढ़ जाती है तो निराशा पैदा हो जाती है और आन्दोलन जन्म लेते हैं। इसी प्रकार जब गरीबी, भ्रष्टाचार, सामाजिक अन्याय एवं सामाजिक असमानता बढ़ती है तब भी आन्दोलन होते है।

(3) **सामाजिक अन्याय**-जब किसी समाज में लोगों की प्रगति के अवसर उपलब्ध नहीं हों, लोगों पर अन्याय और अत्याचार किया जाता हो, उनका शोषण होता है, उन्हें अधिकारों से वंचित किया जाता हों, समाज में अत्यधिक असमानता व्याप्त हो तो ऐसी स्थिति लोगों को आन्दोलन के लिए प्रेरित करती है।

(4) **सीमान्तता -** सीमन्त व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को कहा जाता है, जिसे किसी समूह से पृथक कर दिये जाते हैं, आन्दोलन में अधिक भाग लेते हैं, क्रान्तिकारी आन्दालनों में तो अधिकांश ऐसे व्यक्ति ही भाग लेते हैं जो समाज द्वारा पृथक कर दिए गए हों।

(5) **व्यक्तिगत कुसमायोजन**-ऐसे व्यक्ति जो समाज में पूरी तरह से समायोजित नहीं हो पाए हैं, जो

सामाजिक जीवन में असन्तुष्ट हैं, जिन्हें उचित पद प्राप्त नहीं हो पाए हैं, भी आन्दोलनकारी होते हैं। उपर्युक्त सभी दशाएं आन्दोलन में सहायक हैं, किन्तु मात्र सहायक दशाओं से ही आन्दोलन नहीं होते जब तक कि समाज में व्यापक पैमाने पर असन्तोष व्याप्त न हो।

NOTES

जनजातीय आन्दोलनों के कारणों की विवेचना करते समय हमें इस बात को भली-भांति ध्यान में रखना होगा जनजातीय लोग निर्धनता, अज्ञानता, बिमारियों तथा सब प्रकार के शोषण से ग्रस्त हैं। सदियों तक भारतीय जनजातीय जनसंख्या भौगोलिक पृथक्करण में रही है। हमें इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि जनजातीय लोग प्रारम्भिक संघर्षकर्ता हैं, जिन्होंने विदेशी शासकों के विरुद्ध न केवल आवाज उठाई बल्कि उनके साथ संघर्ष भी किए। वास्तव में उन्होंने स्वतन्त्रा के लम्बे संघर्ष में अपना काफी योगदान दिया है। संथाल आन्दोलन विदेशी शासकों और उनके स्थानीय हमदर्दी अर्थात भूस्वामियों, साहूकारों तथा स्थानीय अधिकारियों के विरुद्ध एक जन आन्दोलन था। इसी प्रकार के आन्दोलन मुण्डा लोगों, नागाओं तथा मिजों लोगों के द्वारा समय-समय पर किए गए। इनके अलावा अनेक अन्य जनजातियों के द्वारा भी आन्दोलन किए गए। इन आन्दोलनों का प्रमुख कारण जनजातीय क्षेत्रों में असन्तोष तथा बेचैनी थी जो कि अनेक सहायक कारकों का संचित परिणाम था।

जनजातीय आन्दोलन के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं

(1) वनों से सम्बन्धित कानून तथा नियम काफी कठोर थे और उन्हें समझने व लागू करने में सहानुभूति "की अभाव था।

(2) जनजातीय ऋणग्रस्ता का मुकाबला करने के लिए साख सुविधाएं बहुत ही अपर्याप्त थीं।

(3) जनजातीय भूमि का अजनजातीय लोगों के नाम हस्तान्तरण रोकने के लिए बनाए गए अधिनियमों की अक्षमता।

(4) सिंचाई, बिजली तथा अन्य परियोजनाओं के लिए जनजातीय लोगों की भूमि प्राप्त कर ली गई परन्तु ऐसे जनजातीय लोगों को जो अपने घरों एवं खेतों से बेदखल कर दिए गए थे, बसाने के लिए उठाए गए कदम अपर्याप्त थे।

(5) समय-समय पर जनजातीय लोगों की स्थिति को सुधारने की दृष्टि से बनाई गई समितियों की महत्वपूर्ण सिफारिशों को लागू करने में आवश्यक देरी।

"जनजातीय अर्थव्यवस्था में भूमि और वनों का काफी महत्व है और अनेक कारणों से जनजातीय लागों को अजनजातीय लोगों द्वारा भूमि से बेदखल कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि जनजातीय लोगों में विद्रोह की भावना बढती गई।

जनजातीय लोग अपने जीवन के तौर तरीकों तथा मूल्यों और परम्पराओं को बनाए रखना चाहते हैं। भूमि जनजातीय लोगों को न केवल आर्थिक सुरक्षा करती है, बल्कि उसके पूर्वजों के साथ शक्तिशाली सम्बन्ध भी बनाए रखती है। भूमि उसकी आध्यात्मिक और साथ ही उसकी आर्थिक विरासत का एक अंग है।

मुण्डा आन्दोलन से प्रमाणित होता है कि उनमें व्याप्त शोषण और उन पर किए गए अत्याचार आन्दोलन के प्रमुख कारण थे। इन पर भूमिकर का मार तथा भू-स्वामियों और साहूकारों के अन्याय और अत्याचार बढ़ते गए। ब्रिटिश शासकों ने पुलिस के सभी अधिकार भू-स्वामियों को दे दिए। अतः ऋणग्रस्ता और भूमि से पृथक्करण आन्दोलन का एक प्रमुख कारण बना।

bdkÃ&12 Hkkjrh; tutkfr;ksa esa vkUnksyu% dkykfu;u rFkk Lor=rk i'pkr dh vof/k

भारत में विभिन्न संस्कृति वाली जनजातियां निवास करती हैं। पृथक निवास करने पर भी भारतीय सभ्यता के इतिहास में उनका विशिष्ट स्थान है। उन्होंने समय-समय पर प्रदेश एवं देश के सामाजिक राजनीतिक जीवन में अपना योगदान दिया है। यद्यपि कई बार ऐसा भी कहा जाता है कि जनजातीय संस्कृति एक पश्थम पूर्ण संस्कृति (Isolated Cultural whole) है। कर्वे का मत है कि भारतीय जनजातियों का स्थानीय एवं प्रादेशिक राजनीति में सारे इतिहास के दौरान और विशिष्ट रूप से मध्यकाल में दवदवा रहा है। पिछले डेढ़ सौ दो सौ वर्षों से जनजातियों के सामाजिक राजनीतिक जीवन में बाह्य सम्पर्क के कारण अनेक परिवर्तन हुए हैं, परिणामस्वरूप उनमें अनेक आन्दोलनों का जन्म हुआ। इन आन्दोलनों की उत्पत्ति के कारणों, उद्देश्यों, संगठनों एवं परिणामों में पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है। समाज वैज्ञानिकों को इन आन्दोलनों में विशेष रूचि नहीं रही है। उनकी रुचि के अभाव के लिए स्टीफेन फचूस (Stephen Fuchs) आन्दोलन से सम्बन्धित स्रोत्रों के अभाव, मानवशास्त्रियों की इतिहास में रूचि न होना तथा अपने को राजनीति, जन-विरोध, विवाद एवं सरकार की नीति से पृथक रखने की प्रवत्ति आदि कारणों को "उत्तरदायी ठहराते हैं। इन आन्दोलनों का उल्लेख प्रशासकीय रिकार्ड में विद्रोह तथा राजनीतिक व कानूनी समस्या के रूप में किया गया है। फच्स, धुरिये, विद्यार्थी, सच्चिदानन्द, एडवर्ड रॉय, नायक, बेली, चौहान, भौमिक मुखर्जी, एच० के० बोस, कमलेश्वर सिन्हा, कालिया, महापात्र, देसाई, रेड्डी, मानकेकर, जोशी, आनन्द, नायडू आदि विद्वानों ने जनजातियों के सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलनों का अध्ययन किया है। भारतीय जनजाति आन्दोलन के उद्देश्य आदि के आधार पर किया जा सकता है। हम यहाँ क्षेत्रीय आधार पर जनजातियों के आन्दोलनों का उल्लेख करेगे।

(1) **पूर्वी क्षेत्र की जनजातियों में आन्दोलन (Movement Among the Tribesaa of the Eastern Region)**-इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियों नागा, खासी, मिजो, मिकिर, कूकी, कचारी, डफला आदि है। भारत के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा इस क्षेत्र की जनजातियों में सांस्कृतिक एवं राजनीतिक चेतना अधिक रही है। यहाँ की जनजातियों की भौगोलिक एवं मानवशास्त्रीय पष्ठभूमि समान होते हुए भी सांस्कृतिक एवं भाषायी विशेषताएं भिन्न-भिन्न हैं। इस क्षेत्र में पिछले डेढ़ सौ वर्षों में धार्मिक व राजनैतिक आन्दोलन साथ साथ चले है। इसाई मिशनरियों के प्रभाव के कारण कई जनजातियों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है। अंग्रेजों से पूर्व स्थानीय राजा के विरुद्ध एवं अंग्रेजी शासनकाल में भी उनके विरुद्ध विद्रोह के रूप में यहाँ राजनीतिक आन्दोलन हुए हैं। ईसाई धर्म के प्रभाव एवं राजनीतिक जागति के करण यहाँ की जनजातियों में हिन्दूवाद, बुद्धवाद एवं इस्लाम के प्रति अभिनति (bias) पैदा हुई है। वे भारतीय जीवन की मुख्य धारा से पृथक रहकर अपनी सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्वायत्तता एवं नागा राष्ट्रवाद के लिए यहाँ अनेक आन्दोलन हुए हैं जिनका संचालन नागा क्लब, नागा नेशनल कौंसिल, नागा यूथ मूवमेंण्ट तथा नागा वूमन सोसाइटी द्वारा किया गया। सन् 1929 में नागा क्लब ने साइमन कमीशन से कहा, आपने हमें जीता है, आप भारत से जायं तो हमें पहले की भांति ही स्वतन्त्र कर दें। नागाओं ने इस क्षेत्र की राजनीतिक प्रक्रिया में मुख्य भूमिका निभायी है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से स्वायत्तता की मांग में कोई कमी नहीं आयी है। नागा राष्ट्रीय परिषद, असम-हिल ड्राइव यूनियन, ईस्टर्न इण्डियन ट्राइवल यूनियन, ऑल पार्टी हिल कौंसिल आदि ने

स्वायत्तता की मांग को त्रीव ही किया है और इसके लिए उन्होंने कई बार हत्या, आगजनी, तोड़फोड़ आदि का सहारा भी लिया है। चीन, म्यांमार, पाकिस्तान पास होने के कारण आक्रमण के बाद वे इन देशों में भूमिगत हो जाते हैं। कई बार तो चीन और पाकिस्तान ने इन्हें भड़काया है, चोरी-छिपे अस्त्र-शस्त्र और पैसा भी दिया है। इनकी समस्या को शान्तिपूर्वक हल करने के लिए अशोक मेहता कमीशन, पाटस्कर कमीशन तथा जय प्रकाश पीस मिशन ने प्रयास किये हैं। इन आन्दोलनों के परिणामस्वरूप ही फरवरी 1961 में नागालैण्ड राज्य की स्थापना की गयी, त्रिपुरा एवं मणिपुर को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया और जनवरी 1972 में मेघालय राज्य की स्थापना की गयी। प्रश्न उठता है कि क्या यह प्रक्रिया यहीं समाप्त हो जायेगी अथवा क्या ये जनजातियाँ सरकार के इस रुख से सन्तुष्ट है और भविष्य में कुछ भी नहीं करेंगी और वे भारतीय जीवन की मुख्य धारा से अपने को जोड़ लेंगी। किन्तु ऐसा सब करना सन्दहास्पद ही लगता है और किसी भी निर्णय पर पहुँचने से पूर्व हमें इन्तजार करना होगा।

(2) **छोटा नागपुर की जनजातियों में आन्दोलन (Movemetnt among the Tribesaa of Chota Nagpur)**-इस क्षेत्र में अनेक सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक आन्दोलन हुए हैं। इन आन्दोलनों का सम्बन्ध चमत्कारिक नेताओं से रहा है। सभी आन्दोलनों की परष्ठभूमि लगभग समान रही है। ये सभी आन्दोलन स्थानीय शासकों एवं भू-स्वामियों के विरुद्ध थे। सभी आन्दोलनों का कारण विद्रोही जनजाति नेताओं द्वारा समय समय पर रखी गयी मांगों को पूर्ण नहीं करना रहा है। इस क्षेत्र के आन्दोलन क्रान्तिकारी एवं सुधारवादी रहे है। इस क्षेत्र के कुछ आन्दोलन इस प्रकार से हैं।

बिरसा आन्दोलन - इसका संचालन मुण्डा जनजाति के एक व्यक्ति बिरसा द्वारा किया गया जिसका उद्देश्य सामाजिक-आर्थिक स्वतन्त्रता एवं धार्मिक सुधार था। मुण्डा लोग बिरसा को भगवान का अवतार मानते थे। सन् 1870 में सरदार नामक व्यक्ति के नेतृत्व में सरकार के विरुद्ध मुण्डा लोगों ने आक्रमक कार्यवाही की थी। उनका सैनिक विद्रोह और सामान्य असन्तोष सन् 1890 तक चलता रहा। इस आन्दोलन को सरदार आन्दोलन भी कहते हैं। बिरसा ने मुण्डा लोगों को लगान न देने के लिए खुला विद्राह करने को कहा। बिरसा का धर्म मुण्डा विश्वासों, हिन्दुवाद और ईसाइयत का सम्मिश्रण था। इस आन्दोलन ने कुछ समय तक छोटा नागपुर में अंग्रेजी शासन को हिला दिया था।

तनाभगत आन्दोलन-1913-14 में ओरांव जनजाति में जात्रा नामक व्यक्ति ने आन्दोलन का संचालन किया जिसका उद्देय बदलते समय के साथ उरांव लोगों के समाज में सुधार लाना था। उसने शराब एवं मांस के प्रयोग का निषेध किया और कहा कि जादू-टोने और भूत-प्रेत की अपेक्षा ईश्वर में विश्वास करें। सभी तनाभगत खादी पहनते थे और उन्होंने भूमि का लगान न देकर आन्दोलन में भाग लिया था।

वीरसिंह आन्दोलन-सन 1854 में संथालों में वीरसिंह नामक व्यक्ति ने स्थानीय भू-स्वामियों के विरुद्ध एक खुला विद्रोह किया। 1871 में भागी द्वारा भागीरथ आन्दोलन चलाया गया। सन् 1930 में गांधीजी के विचारों पर आधारित बेनगाम आन्दोलन चला।

सन् 1822 में "हो" लोगों में बुद्धों तथा भूमिज लोगों ने गंगानारायण के नेतृत्व में स्थानीय राजाओं एवं जमींदारों के विरुद्ध संघर्ष किया। असुर जनजाति में भी अनेक धार्मिक आन्दोलन हुए जो जनजाति विश्वासों और हिन्दू धर्म के मिश्रित्र रूप थे।

इस प्रकार इस क्षेत्र के आन्दोलन भूमि पर स्वामित्व, वनों का उपयोग एवं धार्मिक सांस्कृतिक सम्पर्क की समस्याओं को लेकर हुए। घुरिये इन आन्दोलनों का उद्देश्य जनजातियों का हिन्दूकरण मानते हैं। एडवर्ड रॉय

NOTES

इन्हें "पुनर्जीवित (Revival) आन्दोलन तथा सच्चिदानन्द सुधारवादी आन्दोलन कहते है। एडवर्ड रॉय का मत है कि इन आन्दोलनों ने विघटित समूहों को एकत्रित और संगठित किया, उन्हें नैतिक व्यवस्था प्रदान की, भारत की महती एवं लघु परम्पराओं के बीच कड़ी का काम किया और संस्कृति ग्रहण में उत्प्रेरक की भूमिका निभायी। उन्होंने एक नयी समाज व्यवस्था के निर्माण में योग दिया जो हिन्दू व जनजातीय समाज का मिश्रण है। सच्चिदानन्द का मत है कि ये आन्दोलन फीके पड़ गये, किन्तु जनजातियां आज पुनः अपनी प्राचीन संस्थाओं, सांस्कृतिक गौरव एवं मूल्यों को प्राप्त करने का प्रयास कर रही है।

मध्य भारत की अन्य जनजातियों में आन्दोलन (Movements among other Central Indian Tribesaa)--मध्य भारत की अन्य जनजातियों में गोंड एवं भील जनजातियां प्रमुख हैं। गोंड लोगों में "हुए आन्दोलनों का उद्देश्य हिन्दूकरण रहा है। सन् 1929 में भाऊसिंह तथा राजनेगी ने सुधारवादी आन्दोलन चलायें। सन् 1945 में महुआदेव ने भी ऐसा ही आन्दोलन चलाये। सन् 1945 में महुआदेव ने भी ऐसा हो आन्दोलन चलाया जिसका उद्देय गोंड लोगों में शराब का निषेध करना था। 1951 में सरगुजा अकाल से प्रेरित होकर राजमोहनी देवी ने गोंड लोगों को संगठित किया। इसने अपने आन्दोलन के संचालन के लिए गोविन्दपुर में आश्रम बनाया। ये महात्मा गांधी की अनुयायी थीं।

राजस्थान, गुजरात तथा मध्य प्रदेश के भीलों में अनेक स्थानीय आन्दोलन हुए हैं जिनका उद्देश्य भी हिन्दूकरण ही था। कई आन्दोलनों का नामकरण लसोडिया, गोविन्दगिरि, गुलिया, विश्वनाथ तथा मावजी के आधार पर हुआ। खानदेश में गुलिया महाराज तथा रेवकन्या में धार्मिक आन्दोलनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने 1933 में भीलों द्वारा सरकार ने सेना द्वारा दमन किया। इसके अतिरिक्त, अभील नेता मोतीलाल तेजावत एवं मामा बालेश्वर दयाल ने भी भीलों के सामाजिक-राजनीतिक मुक्ति के आन्दोलनों का संचालन किया।

अन्य स्थानों पर जनजाति आन्दोलन बेली ने उड़ीसा की गोंड जनजाति में राष्ट्रीयकरण एवं संस्कृतिकरण के आन्दोलनों का उल्लेख किया है। महापात्र ने पूर्वी भारत और विशेष रूप से उड़ीसा की जनजातियों में सामाजिक आन्दोलनों का उल्लेख किया है जिनका उद्देश्य जनजातियों का संस्कृतिकरण, राजनीतिक दलों की रामया विद्रोह का उल्लेख किया है जिसके कारण सन् 1802 से 1870 तक आन्ध्र के जनजातीय क्षेत्र में असन्तोष रहा।

वर्तमान स्थिति उपर्युक्त सभी आन्दोलन आजादी के पूर्व के हैं। स्वतन्त्रा प्राप्ति के बाद जनजातीय भारत कोसामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आया है। कई नये आन्दोलन हुए हैं जिनमें कुछ का उद्देश्य तो सकारात्मक और निर्माणकारी रहा है, किन्तु कुछ का संगठित विरोध एवं विद्रोह। जनजातियों ने या तो अपने को राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ मिला लिया या वे अपने साथ अच्छा बर्ताव करने एवं पृथक राज्य की मांग के बीच झूलती रही हैं। आज उनमें अपनी गिरी हुई आर्थिक सामाजिक दशा के प्रति निरन्तर जागरूकता में वृद्धि हो रही है। समकालीन भारत में जनजाति असन्तोष के लिए सच्चिदानन्द पृथक सांस्कृतिक विशिष्टा बनाये रखने की इच्छा एवं कृषि सम्बन्धी कारकों को प्रमुख मानते हैं। असम और पूर्वी राज्यों की अपनी समस्याएं हैं। सरकार के सहयोगी रुख के बावजूद भी वहाँ की जनजातियों में असन्तोष समाप्त नहीं हुआ है। छोटा नागपुर की जनजातियों ने पृथक राज्य "झारखण्ड " की मांग की। सन् 1960 में छत्तीसगढ़ एवं मध्य प्रदेश के गोंडवाना क्षेत्र की जनजातियों ने भी पृथक राज्य की मांग की। मध्य प्रदेश के बस्तर क्षेत्र में भी जनजाति आन्दोलन हुए हैं। भीलों ने भी भूतकाल में स्वायत्त शासन की मांग की। दक्षिणी गुजरात की जनजातियों ने भी पृथक राज्य बनाने के लिए आन्दोलन किये

सन् 1962 के महाराष्ट्र के भण्डारा जिले की जनजातियों ने भी स्वायत्तता की मांग की थी।

आन्ध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम जिले में हुए नक्सलवादी आन्दोलन ने भी भारतीय जनजातियों के असन्तोष को नई दिशा दी है। नायडू ने श्रीकाकुलम में जनजाति असन्तोष के लिए कुशल प्रशासन का अभाव, राज्य एवं केन्द्र द्वारा संवैधानिक सुरक्षा प्रदान करने के प्रति उपेक्षा, पुलिसी उदासीनता, अफसरों द्वारा शोषण, जनजातियों के भूमि अधिकारों की रक्षा न करना, अवैधानिक रूप से लगान की वसूली, जनजातियों की भूमि अधिकारों की रक्षा न करना, अवैधानिक रूप से लगान की वसूली, जनजातियों की भूमि को गैर कानूनी रूप से छीनना, भूस्वामियों एवं व्यापरियों द्वारा कृषि एवं वन उपज को जनजातियों से ठग लेना तथा गैर जनजाति राजनेताओं द्वारा जनजातियों का शोषण, आदि को उत्तरदायी माना है।

जनजातीय आन्दोलन

छोटा नागपुर (वर्तमान झारखण्ड) में अंग्रेजों का प्रवेश 1767 ई0 से प्रारम्भ हुआ। नींव पड़ने के साथ कम्पनी के विरुद्ध असन्तोष व्याप्त हो गया, क्योंकि लोग विदेशी शासन को उखाड़ना चाहते थे।

कम्पनी शासन के विरुद्ध व्याप्त असन्तोष के कई कारण थे। मराठा “आक्रमणों, विभिन्न राजाओं एवं जमींदारों द्वारा फैलाई गई गड़बड़ियों और बार-बार सैनिकों के आवागमन से अधिकांश क्षेत्र उजड़ गए। 1770, 1777, 1800 ई0 के अकाल एवं प्राकृतिक आपदा ने लोगों का कष्ट दुगना कर दिया। आर्थिक कठिनाई एवं अन्नाभाव के कारण जनता का विद्रोह स्वाभाविक था।

व्यापक असन्तोष का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण बकाया मालगुजारी के नाम पर किसानों की जमीन और जमींदारों की जमींदारी छीनना था। राजस्व वसूली के लिए बार-बार फौज का उपयोग रैयतों एवं जमींदारों के क्रोध का कारण बनता जा रहा था। प्रशासनिक पदों पर गैर छोटा नागपुरी पदाधिकारियों की नियुक्ति, धीमी सरकारी न्याय प्रक्रिया तथा सरकारी आदेश अनुपालन हेतु फौज का उपयोग असन्तोष का कारण बन गए थे। जनजातियों में असन्तोष का कारण उनकी सभ्यता एवं संस्कृति पर अस्मिता का खतरा था। संथालों के आर्थिक शोषण ने सभी सीमाएं पार कर दी तथा वह असहनीय हो गया। ऐसे समय में स्थितियों की मांग को देखते हुए कान्हु तथा सिद्धू मुर्मू जैसे दो साहसी व्यक्ति सामने आए। अपेक्षित एवं आवश्यक नेतृत्व की सहायता से संथाल विशाल आन्दोलन के लिए तैयार हो गए। जून 1855 में हजारों संथालों ने एकत्र होकर अपने आपको शोषण के बोझ से मुक्ति दिलाने की शपथ ली। सभी बाहरी तत्वों विशेषतया सरकारी कर्मचारियों, जमींदारों, साहूकारों तथा अंग्रेजों को तुरन्त उनके क्षेत्रों से चले जाने तथा अपनी जान “बचाने की चेतावनी दी गई।

संथाल आन्दोलन

1855-56 में घटित संथाल आन्दोलन मुख्य रूप से आर्थिक कारणों के चलते हुआ। बहावी तथा अन्य जनजातीय आन्दोलन से प्रेरणा ग्रहण कर संथाल परगना जिला की संथाल जाति ने अंग्रेजों तथा उनके पिठुओं (दोकुओं) को अपने गुस्से का निशाना बनाया। इस विद्रोह से वीरभूमि, भागलपुर, राजमहल (दामिनकाह), सिंहभूम, बांकुरा और मुंगेर के क्षेत्र प्रभावित हुए। इस विद्रोह का केन्द्र भगिनीडीह नामक गांव रहा।

इस उत्पीड़न और अत्याचार का विरोध करते हुए चार संथाल भाइयों-सिद्ध, कान्हू, चांद तथा भैरव ने आदिवासियों का आहवान किया कि वे अपने प्रदेश को अपने हाथों में ले लें और अपनी सरकार स्थापित करें। इनके नेतृत्व में 10 हजार से भी अधिक संथाल एकत्रित हो गए। संथाल आन्दोलनकारियों ने भागलपुर और राजमहल के बीच डाक और रेल सेवाएं काट दीं। सूदखोरों, जमींदारों, गोरे बागान मालिकों; रेलवे इंजीनियरों और अंग्रेज अधिकारियों के घरों पर हमले किए। यह विद्रोह 1856 तक चलता रहा।

NOTES

अंग्रेजों के साथ इस खुली जंग का अंत आन्दोलनकारी नेताओं के पकड़ में आने के बाद ही हुआ और साम्राज्यवादी ब्रिटिश शक्ति ने संथाल आन्दोलन को निर्मतापूर्वक कुचल दिया। इस क्रूरतापूर्ण दमनात्मक ब्रिटिश कार्यवाही में अंग्रजों को स्थानीय जमींदारों, सूदखोरों (महाजनों) व राजे-रजवाड़ों का पूरा सहयोग मिला। इस विद्रोह के परिणामस्वरूप 1855 का रेगुलेशन, पारित हुआ। 1858 के पुलिस नियमों द्वारा ग्राम के मुखिया लोगों की पुलिस की शक्तियाँ प्रदान की गयी।

इस आन्दोलन के पहले चरण में बहुत से साहूकारों तथा पुलिस अफसरों की मारा गया। इसके पश्चात बाहरी लोगों की दुकानों की तोड़-फोड़ की गई तथा उन्हें लूटा गया। रोके जाने पर संथालों ने अपनी तलवारें शस्त्रों तथा जहरीले तीरों का प्रयोग किया। स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए प्रशासन शान्तिपूर्ण ढंग से समस्या का समाधान करने लगा। संथालों ने अंग्रेजी सरकार के कार्यालयों में तोड़-फोड़ की। अंग्रेज तथा बच्चों को चुन-चुन कर मारा तथा अंग्रेज सरकार की भारतीय कठपुतलियों के सभी संस्थानों पर आक्रमण किया गया। अन्ततः इस विद्रोह को दबाने का कार्य सेना को सौपा गया। सेना ने अनेक संथाल गांवों को लूटा व उनमें आग लगा दी। इन लोगों ने उन सभी चीजों पर हमला किया जो दिकू (गैर-आदिवासी) और उप निवेशवादी सत्ता के शोषण के माध्यम थे। कुछ समय पश्चात् संथाल आन्दोलन के सभी महत्वपूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिए गए तथा 1856 ई0 के अन्त तक यह आन्दोलन लगभग समाप्त हो गया।

बिरसा मुण्डा आन्दोलन

सभी प्रकार के शोषणों तथा अत्याचारों के विरुद्ध मुण्डा आन्दोलन भी जनजातीय आक्रोश का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। मुण्डा जनजाति छोटा नागपुर क्षेत्र की मुख्य जनजातियों में से एक है जो जनसंख्या के दृष्टिकोण से में भारत को महत्वपूर्ण जनजातियों में गिनी जाती है। बिरसा मुण्डा आन्दोलन के कई कारण थे।

बढ़ती हुई जनसंख्या में कृषि योग्य भूमि की अधिक आवश्यकता हुई जिसके फलस्वरूप राजस्व भी बढ़ गया। ऐसी स्थितियों ने साहूकारों ने इस विवशता का अधिक से अधिक लाभ उठाया। 1806 ई0 में अंग्रेज प्रशासकों ने जमीदारों को पुलिस के सभी अधिकार दे दिए जिससे उनका शोषण और अत्याचार बढ़ गया। 1881-1895 के मध्य ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कई छोटे बढ़े आन्दोलन हुए। सरकार द्वारा इनका दमन कठोरता के साथ कर दिया गया। फिर भी आदिवासी समुदाय का असन्तोष समाप्त नहीं हुआ। बिरसा मुण्डा के नेतृत्व वाले मुण्डा आन्दोलन के रूप में अंग्रेजों को सबसे असरकारी और संगठित आन्दोलन का सामना करना पड़ा।

अंग्रेजों को मुंडा आन्दोलन के रूप में सबसे असरकारी और संगठित आन्दोलन का सामना करना पड़ा। 1855 से 1901 ई0 के बीच चला यह आन्दोलन रांची जिले के दक्षिणी क्षेत्र खूंटी से शुरु हुआ इस आन्दोलन का नायक रांची जिलान्तर्गत तमार थाना के जलकद गांव का युवक विरसा मुंडा था।

बिरसा के नेतृत्व में मुंडाओं ने आन्दोलन का बिगुल फूंक दिया मुंडा आन्दोलन से घबराकर ब्रिटिश सरकार ने 24 अगस्त, 1885 को साए में बिरसा को गिरफ्तार कर लिया। दो वर्ष की सजा भुगतने के बाद महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में 30 नवम्बर, 1897 को बिरसा को कैद से मुक्ति मिली। अंग्रेजों का विश्वास था कि जेल में रहने के पश्चात बिरसा का प्रभाव और विद्रोही तेवर खत्म हो जायेगा। लेकिन जेल से विरसा और अधिक कट्टर और साम्राज्यवाद विरोधी बनकर बाहर निकले। अब आदिवासियों के दुश्मनों के विरुद्ध जन-जागरण बिरसा मुण्डा के जीवन का लक्ष्य बन गया।

1898 में डोम्बारी पहाड़ी से ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफल संघर्ष का एलान हुआ। बिरसा ने धर्मानुसार राज्य करने और उसके लिए ब्रिटिश अधिकारियों के खिलाफ आन्दोलन का विचार रखा।

दिसम्बर 1899 में सिंहभूम के कोटागरा स्थान में एक विशेष सभा हुई, जिसमें 60 प्रमुख गुरु एकत्र हुए। इसी सभा में हिंसात्मक रूप से जमींदारों, अंग्रेजों के पिदुओं तथा सरकारी कर्मचारियों का सफाया करने की योजना बनी। अंग्रेजों के विरुद्ध यह संघर्ष क्रिसमस की पूर्व संध्या पर 1899 ई0 में आरम्भ हुआ। इस संघर्ष का पहला शिकार उन ईसाई आदिवासियों को बनाया गया, जिन पर अंग्रेजपरस्त होने का सन्देह था। रांची तथा सिंहभूम जिले इस आन्दोलन से सर्वाधिक प्रभावित हुए।

9 जनवरी 1900 ई0 में शैल रकाब (रांची) पहाड़ी पर लड़े गए एक युद्ध में विरसा को पराजित होना-पड़ा और 3 फरवरी को सैंतरा के पश्चिमी जंगल के भीतर बिरसा मुण्डा पुनः बन्दी बना लिया गया। उनके खिलाफ गोपनीय ढंग से मकदूमें की कार्यवाही की गई। सरकार से बगावत करने और आतंक व हिंसा फैलाने के आरोप में उनको रांची जेल में कैद कर लिया गया। मुकदमें में पैरवी के लिए इनकी ओर से किसी प्रतिनिधि को इजाजत नहीं मिली। हैजा होने के कारण 9 जून, 1900 को जेल में ही उनकी मृत्यु हो गई। लगभग 350 मुण्डा आन्दोलनकारियों पर मुकदमें चलाए गए, जिनमें से तीन को फांसी और 44 अन्य को आजीवन कारावास की सजा दी गई। 47 अन्य को भी कठोर दण्ड मिला और जल्दी ही इस आन्दोलन का अन्त हो गया।

बिरसा नाम के एक बीस वर्षीय साहसी व उत्साही मुण्डा युवक ने नेतृत्व सम्भाला। इस युवक की शिक्षा एक मिशन स्कूल में हुई थी। तथा बाद में विरता वैष्णव धर्म के अनुयायी एक मुनि के साथ रहने लगा था। मुण्डा जनजाति को बाहरी तत्वों से मुक्ति दिलाने तथा उनके उत्थान के लिए उसे भगवान ने भेजा है। इस मिथक के प्रचार में बिरसा के कुछ मित्रों ने भी उसका सहयोग दिया। उसने सम्पूर्ण छोटा नागपुर क्षेत्र में इस प्रकार की घोषणाएं की। उसके व्याख्यानों तथा भाषणों में हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म तथा मुण्डा राजनीति, तीनों का मिश्रण था। उसने मुण्डा लोगों को परम्पराओं तथ रीति-रिवाजों को तिलांजलि देकर ईश्वर में विश्वास करने की बात समझाई। अधिकतर मुण्डाओं को यह बात समझ में आ गई, क्योकि वह लोग अपनी परम्पराओं को निभाने में पशुओं की बलि देने जैसी महंगी रीतियों से ग्रस्त थे। मिशनरियों की ही भांति बिरसा ने प्रार्थना सभाओं का भी आयोजन किया। इन सभाओं में वह अपनी जनजाति के लोगों से न डरने तथा साहस का परिचय देने की अपील करता था। बिरसा उन्हें समझाता था कि उसकी मानवेतर शक्तियों की कारण कोई भी लौकिक शस्त्र उन्हें नहीं मार सकता।

1895 तक अपने अथक प्रयासों से बिरसा ने छः हजार समर्पित मुण्डाओं का एक दल तैयार कर लिया। अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व को समाप्त करना, सभी बाहरी तथा विदेशी तत्वों को बाहर निकालना, स्वतन्त्र मुण्डा राज्य की स्थापना करना तथा विदेशी राज के समर्थक जमीदारों से मुक्ति पाना उसके मुख्य उद्देश्य थे। विद्रोह का एक प्रारम्भ एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार साहूकारों, मिशनरियों, अधिकारियों तथा सभी बाहरी लोगों पर आक्रमण द्वारा किया गया।

ताना भगत आन्दोलन

महत्व की दृष्टि से बिरसा आन्दोलन के बाद दूसरी श्रेणी में "ताना भगत आन्दोलन" आता है, क्योकिं इसका महत्व न केवल बहुआयामी था वरन् इसके निहितार्थ भी दूरगामी परिणामों के परिचायक थे। इस आन्दोलन की शुरुआत अप्रैल 1914 ई0 में हुई।

ताना भगतों का स्वतन्त्रता आन्दोलन केवल "मात्रभूमि की राजनीतिक मुक्ति का संघर्ष ही नहीं था, बल्कि पुरानी सड़ी-गली व्यवस्था को तोड़कर नयी न्यायपूर्ण व्यवस्था कायम करने की उनकी प्रबल आकांक्षा का भी प्रतीक था।

ताना भगत आन्दोलन की परष्ठभूमि ब्रिटिश शासन काल की असंतोषप्रद कृषि व्यवस्था के कारण तैयार हुई थी। परिणामस्वरूप एक नया धार्मिक आन्दोलन उरांवों द्वारा प्रारम्भ किया गया, जिसे "कुरुखों" का धर्म कहा गया। इस नये मत के नेता ने अपने अनुयायियों को आश्वासन दिया कि धर्मेश की आराधना द्वारा वे अपनी वर्तमान क्षीण अवस्था को ऊँचा उठा सकते हैं। इसीलिए ताना भगत आन्दोलन का शुभारम्भ अप्रैल, 1914 ई0 में गुमला जिले के विशुनपुर प्रखण्ड के चिंगरी नावाटोली गांव के एक युवक जतरा भगत द्वारा किया गया। जब जतरा भगत तथा अन्य जनजातीय पैगम्बरों ने बाद में चल कर इस सम्प्रदाय को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान करने का प्रयास किया। धीरे-धीरे ताना भगत आन्दोलन जंगल में आग की भांति पूरी उरावं क्षेत्र में फैल गया।

1915 तक ताना भगत आन्दोलन रांची जिले के दक्षिण-पश्चिमी भाग से पश्चिमी तथा मध्य भाग होते हुए उत्तरी भाग विशेषकर देड़ों, कुंडू तथा मांडर थाना क्षेत्र में फैल गया। यह आन्दोलन उत्तर में पलामू जिले तक फैल चुका था। ताना भगत आन्दोलन के पहले चरण में पुराने प्रेतों एवं देवताओं को अपनी जमीन से उखाड़ फेंका गया।

अनुयायियों के प्रति प्रेम तथा शुभ इच्छाएं, सभी जीवों के प्रति दया, आदतों तथा भोजन की शुद्धता ताना भगतों के प्रमुख संस्कार बन गए। रात्रि में इस नये धर्म के अनुयायियों के जमाव ने जमींदारों के बीच आतंक फैला दिया। बहुत से ताना भगतों ने अपने जमींदारों को लगान देना बन्द कर दिया तथा उनकी जमीन जोतना बन्द कर दिया। इस प्रकार स्थानीय जमींदार तथा सूदखोर अपने विरुद्ध उरांव लोगों को उभरते देखकर भयभीत हो गए तथा पुलिस में इस बात की सूचना दे दी।

इस आन्दोलन के तीसरे चरण के अन्तर्गत ताना भगतों ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया। 1921 ई0 में जब देशभर में महात्मा गांधी द्वारा नागरिक अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया गया तो ताना भगतों ने पहली बार सिद्ध भगत के नेतृत्व में स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया।

इस प्रकार ताना भगत आन्दोलन जिसकी शुरुआत एक आर्थिक आन्दोलन के रूप में हुई थी, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ तादात्म्य स्थापित कर राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में परिवर्तित हो गया। 1992 ई० में ताना भगतों ने कांग्रेस के गया अधिवेशन में भाग लिया तथा वे उससे काफी प्रभावित हुए। इसके अलावा वे रामगढ़, नागपुर तथा लाहौर कांग्रेस सम्मेलनों में भी शामिल हुए। ताना भगतों ने चरखा चलाना, खादी वस्त्र धारण करना स्वीकार किया तथा इन लोगों ने विदेशी सामानों का बहिष्कार भी किया।

1930 में जब बारदोली में पहली बार कर न देने का अभियान प्रारम्भ किया गया, तो इससे ताना भगत भी प्रभावित हुए तथा सरकार को लगान का भुगतान करना बन्द कर दिया। जिसके फलस्वरूप जमींदारों द्वारा उनकी जमीनों की नीलामी कर दी गई और इन में से अधिकांश भूमिहीन होकर बटाईदार या श्रमिक के रूप में जीविकोपार्जन के लिए विवश हो गये।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में ताना भगतों ने तन-मन धन से हिस्सा लिया था। कालान्तर में, रीति रिवाज में भिन्नता के कारण ताना भगतों में कई शाखाएं पनप गई। स्वतन्त्रता आन्दोलन में ताना भगतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जिसमें हर क्षेत्र ने योगदान एवं बलिदान किया है।

चेरो आन्दोलन

यह आन्दोलन किसानों द्वारा अंग्रेजपरस्त चेरो राजाओं के विरुद्ध शुरु किया गया था। 1800 ई0 में बिहार के पलामू क्षेत्र में चेरो जनजातीय राजा के खिलाफ उसके किसानों ने राजवंश की सत्ता काफी बढ़ गई थी।

सनत सिंह उसका दीवान था। किसी कारणवश अनबन होने पर राजा ने दीवान की हत्या करवा दी। इससे राजपूत सामन्त भड़क गए। उन्होंने सेना एकत्र कर राजा पर चढ़ाई कर दी। उस युद्ध में राजा मारा "गया। जयकृष्ण राय के पुत्र और सुगन्ध राय के साथ शेरघाटी की तरफ भागे और अखौरी उदयन्त राय नामक कानूनगो के यहाँ शरण ली। दीवान सनत सिंह का भतीजा जगन्नाथ सिंह छत्रपति राय का राजा बनाकर स्वयं दीवान बन गया। उदयन्त राय गोपाल राय को लेकर पटना आया और अंग्रेजों की मदद से राजा बनने की कोशिश करने लगा। अंग्रेजों ने छत्रपति स्या को पलामू का दुर्ग सौंपने का हुकुम दिया। दीवान जगन्नाथ सिंह इसके लिए तैयार नहीं था। कम्पनी ने कूटनीति चलाई और 20 फरवरी 1771 में विद्रोही सदाना सरदारों ने गोपाल राय को अपने पक्ष में कर लिया और उदयन्त राय को मार दिया। अंग्रेजों ने गोपाल राय को गिरफ्तार कर पटना जेज में डाल दिया। जेल में ही 1784 में उनकी मृत्यु हो गई। 1783 ई 0 चूड़ामन राय राजा बना। उसने अपने आपको अंग्रेजों के रहमो करम पर छोड़ दिया कम्पनी का आक्रोश आन्दोलन के रूप में फूट पड़ा। 1800 ई0 में हुए इस आन्दोलन के दमन के लिए अंग्रेज सेना बुलाई गई। कर्नल जोन्स के नेतृत्व में दो बटालियन सेना ने चेरो आन्दोलनकारियों का दमन करना शुरु किया। दो वर्षो तक यह आन्दोलन चलता रहां आखिकर कार विद्रोही चेरों नेता भूषण सिंह पकड़े गए और 1802 ई० में उन्हें फांसी दे दी गई।

तमाड़ आन्दोलन

1789 में छोटा नागपुर के उरांव जनजाति के लोगों के द्वारा जमींदारों के शोषण के खिलाफ आन्दोलन की शुरुआत हुई। यह विद्रोह लगभग 1794 ई0 तक चलता रहा लेकिन जमींदारों ने अंग्रेजों की सहायता से इसे कुचल दिया। इतिहास में यह आन्दोलन तमाड़ आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप 1809 ई0 में ब्रिटिश सरकार ने छोटा नागपुर (झारखण्ड तत्कालीन) में शांति व्यवस्था की। लेकिन इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। पुनः 1881, 1817 एवं 1820 ई0 में जनजातीय किसानों की भूमि अवैध तरीकें से छीन लिए जाने के कारण छोटा नागपुर के जनजातीय लोगों ने खाकर मुण्डा एवं उरांव के लोगों ने दिकुआ एवं जमींदारों के खिलाफ आन्दोलन शुरु कर दिया।

हो आन्दोलन

छोटा नागपुर के "हो" लोगों ने 1820 1821 ई0 में जबरदस्त आन्दोलन किया। यह विद्रोह सिंहभूम के क्षेत्र में हुआ। उस समय सिंहभूम का राजा जगन्नाथ सिंह था। उसने अंग्रेजों का संरक्षण स्वीकार कर लिया और सालाना 101 रुपया कर देना मंजूर किया अंग्रेज इसके संरक्षक बने। राजा ने अंग्रेजों की मदद से अपनी स्थिति को मजबूत करना चाहा और साथ ही जनजातीय लागों की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षा का दमन करना चाहा। अंग्रेजों ने उसकी मदद के लिए रफसेज को भेजा। इस शोशण के विरुद्ध "हो" लोगों ने अपने को बड़ी संख्या में सेना हताहत हुई। दूसरे दिन रफसेज ने अपनी सेना की एक टुकड़ी को गुटियालोर गांव भेजा जहां "हो" लोगों ने इसका डटकर मुकाबला किया। 1821 ई0 में उनके विद्रोह को शान्त करने के लिए कम्पनी की बड़ी भारी सेना आई। "हो" लोगों ने लम्बे समय तक डटकर मुकाबला किया, लेकिन अन्ततः समझौता करना पड़ा।

कोल आन्दोलन

छोटा नागपुर के मुण्डा एवं "हो" लोगों ने 1821-32 ई0 में जमीदारों एवं दिकुओं के शोषण एवं अत्याचार के खिलाफ जबरदस्त आन्दोलन किया। यह विद्रोह "कोल आन्दोलन" के नाम से जाना गया। इस

आन्दोलन से जमींदार थर-थर कांपने लगे और थोड़ी देर के लिए अंग्रेज शासकगण चिन्ता में पड़ गये। इस आन्दोलन का मूल कारण भूमि सम्बन्धी असंतोष था। कृषि और शिकार जनजातियों की जीविका के मुख्य साधन थे। कम्पनी सरकार ने इस अंचल की जमींदारी विभिन्न राजाओं को दे रखी थी। इन राजाओं और इनके अधिकारियों ने इन लोगों से बे-हिसाब कर वसूलना शुरु कर "दुकुओं" एवं सदानों को दी जाने लगी और इनकी जिन्दगी तबाह होने लगी। इन लोगों ने राजा के पास अपनी फरियाद पहुंचाई, लेकिन राजा ने उस पर कोई सुनवाई नहीं की।

कोल विद्रोह छोटा नागपुर में अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव को खुली चुनौती था। थॉर्नटन तथा मिल के अनुसार, आदिवासी इस विद्रोह के माध्यम से जंगल का कानून पुनर्स्थापित करना चाहते थे। उनके अनुसार ब्रिटिश भारत में अधिकांश निवासी नियम कानून के विरोधी थे। एस०सी० राय तथा एस0 बी0 चौधरी के अनुसार यह आन्दोलन कई प्रकार के शिकायतों की परिणति था, जैसे करों में वृद्धि, जबरन बेकारी तथा साहूकारों पर भारी सूद की वसूली, आदि को लेकर व्यापक असंतोष आन्दोलन का मूल कारण था।

कुछ स्थानीय घटनाएं आन्दोलन का तात्कालिक कारण बनीं। जफर अली नाम के एक दिकु ने बांहगांव, के मुण्डा सुर्गा पर अत्याचार किया, साथ ही उसकी पत्नी को उठा ले गया उसकी इज्जत लूटी। अपमानित एवं उत्पीड़ित सिगराय एवं सुगा ने अपने लोगों की सभा बुलाई और कुछ समय बाद सात सौ कोलों ने उनके नेतृत्व में उत्पीड़कों पर आक्रमण किया।

आन्दोलन का तात्कालिक कारण छोटा नागपुर के महाराजा के भाई हरना शाही द्वारा इनकी भूमि को छोड़कर अपने प्रिय मुसलमानों और सिखों को दिया जाना रहा। जंगल में आग की तरह यह आन्दोलन सारे रांची जिले में और हजारीबाग, पलामू के टोरी पसाने तथा मानभूम के पश्चिमी हिस्से में फैल गया। अनुमानतः 800 से 1000 आदमी उस आन्दोलन में मारे गये।

जनजातीय समाजशास्त्र आन्दोलन को दबाने के लिए रामगढ़ से सेना की एक टुकड़ी बुलाई गई। जमींदारों ने भी अपनी सेना भेजी। आन्दोलनकारियों ने उनका मुकाबला दो महीनों तक इटकर किया, लेकिन अंग्रेजों के अत्याधुनिक अस्त्र-शस्त्र के सामने उनके तीर-धनुष एवं भाले बरछे अधिक नहीं टिक पाए। वे कुछ सैनिकों को हताहत करने में सफल जरूर हुए। विद्रोहियों का एक प्रमुख नेता बुद्ध भगत था। इस युद्ध में उसके साथ उसका बेटा, भतीजा एवं एक सौ पचास अनुयायी भी मारे गये। विद्रोहियों के नेता सिंगराय एवं सूर्गा अन्त तक लड़ते रहे। उन्होंने 1832 ई० में "हो" लोगों के खिलाफ फौजी कार्यवाही शुरू हुई और फरवरी 1837 ई0 तक कर्नल रिचर्ड ने उन्हें घुटने टेकने को बाध्य किया।

भूमिज आन्दोलन

भूमिज आन्दोलन की शुरुआज सन् 1832 ई० में हुई। कम्पनी ने अधिक राजस्व वसूली के लिए अत्यधिक कर लाद दिया था। सभी किसान एवं जमींदार बाहरी साहूकारों के कर्ज के बोझ से दबे जा रहें थे और इस स्थिति को समाप्त करना चाहते थे। इसलिए जमींदार गंगा नारायण का आन्दोलन जोर पकड़ा और जन-समर्थन हासिल किया। यह आन्दोलन चतुर्दिक व्याप्त निराशा और शोषण की देन था। भूमिज आन्दोलन का सीधा सम्बन्ध आदिवासी उत्पीड़न से था। गंगा नारायण बड़ाभूम के राजा बेलाक नारायण का पोता था। उसके भाई माधव सिंह ने उसकी जागीर को हड़पना चाहा। दीवान के रूप में उसने कई तरह के करों को लादकर जनता को तबाह कर दिया था। 2 अगस्त, 1832 ई० को गंगा नारायण ने माधवसिंह पर प्रहार किया। आगे उसकी टक्कर कम्पनी के फौज के साथ हुई। कम्पनी ने फौज का नेतृत्व ब्रीडन एवं लेफ्टिनेंट

टिमर ने किया। गंगानारायण ने सिंहभूम के लड़ाकू कोल तथा हो का समर्थन प्राप्त किया, लेकिन उनके दुश्मन खरसांवा के ठाकुर से लड़ते हुए गंगानारायण मारा गया। ठाकुर ने उसका सिर काट कर अंग्रेज अधिकारी कैप्टन विलकिन्सन के पास भेज दिया। गंगानारायण की मृत्यु के बाद यह आन्दोलन शीघ्र ही समाप्त हो गया।

छत्तीसगढ़ : जनजातीय आन्दोलन

स्वतन्त्रता का महासमर-1857-सन् 1857 ई0 के भारतीय स्वतन्त्रा आन्दोलन में छत्तीसगढ का भी महत्वपूर्ण योगदान है, जमींदारों में से कुछ ने अंग्रेजों की सत्ता को चुनौती दी थी तथा तीसरी देशी पैदल सेना (थर्ड नेटिव इन्फेन्ट्री) के सैनिकों ने बगावत कर दी।

सोनाखान के जमींदार नारायण सिंह का विद्रोह-1830 ई0 में रामराय की मृत्यु के बाद नारायण सिंह सोनाखान के जमींदार हुए। अगस्त 1856 ई0 में सोनाखान जमींदारी में भीषण अकाल पड़ा। कसडोल में एक साहूकार ने काफी मात्रा में अनाज एकत्रित कर रखा था। नारायण सिंह ने उक्त साहूकार का अनाज अपनी भूमि प्रजा में बटवा दिया तथा इस बात की सूचना अंग्रेज अधिकारियों को भी दे दी। 24 अक्टूबर 1856 ई में नारायण सिंह को लूटपाट और डकैती के आरोप में पकड़ कर रायपुर की जेल में डाल दिया गया।

अगस्त 1857 ई0 में तीसरी देशी पैदल सेना की मदद से नारायण सिंह जेल से भागने में सफल हुए, सोनाखान में नारायण सिंह ने संघर्ष के लिए 500 सैनिकों की एक सेना इकट्ठा की और गांव के निकट ही एक पहाड़ी को अपना केन्द्र बनाया। नारायण सिंह को पुनः गिरफ्तार करने के लिए लेफ्टिनेन्ट स्मिथ नवम्बर 1857 ई0 सोनाखान रवाना हुए। शुरू में स्मिथ को पराजित होना पड़ा, किन्तु अतिरिक्त सेना आ जाने से तथा भटगांव, बिलाईगढ एवं देवरी के जमींदारों से मदद मिलने के कारण वह नारायण सिंह को गिरफ्तार करने में सफल हुआ। तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर इलियट ने राजद्रोह का आरोप लगाकर नारायण सिंह को फांसी की सजा सुना दी। 10 दिसम्बर, 1857 को रायपुर के जय स्तम्भ चौक पर नारायण सिंह को सार्वजनिक रूप से फांसी दे दी गई। इस प्रकार छत्तीसगढ़ के प्रथम शहीद नारायण सिंह हुए। सम्बलपुर के सुरेन्द्र साय का विद्रोह सम्बलपुर के सुरेन्द्र साय ने अक्टूबर 1857 को हजारीबाग जेल से भागकर अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी गतिविधियां सक्रिय करें। वे रायपुर जिले में अंग्रेजों से मुकाबला करते रहे और बस्तर में अंग्रेजों की प्रभुसत्ता को चुनौती दी। 24 जनवरी, 1864 को साथियों व परिवारीजनों के साथ गिरफ्तार और असीरगढ़ के किले में कैद करके उन्हें यातना दे देकर मारा गया।

रायपुर में सैन्य विद्रोह-18 जनवरी, 1858 समय सात बजकर तीस मिनट, रायपुर में अंग्रेजी फौज के तीसरी टुकड़ी के सार्जेन्ट मंजर सिडवेल की हत्या कर मैगजीन लश्कर के अभाव में यह विद्रोह मात्र कुछ घण्टे ही जीवित रह सका और हनुमान सिंह तो अंग्रेजों के हाथ नहीं आ सके मगर उनका साथ दे रहे, तीसरी सेना के 17 विदेशी सिपाहियों की गिरफ्तार कर 22 जनवरी, 1858 को सार्वजनिक तौर पर फांसी पर लटका दिया गया। इस विद्रोह में प्राणों की आहुति देने वाले सेनानी थे-गांजी खां, अब्दुल हयात, मुल्लू, शिवनारायण, पन्नालाल, मातादीन, ठाकुर सिंह, अकबर हुसैन, बल्ली दुबे, लाल सिंह, बुद्ध, मरमानन्द, शोभाराम, दुर्गा प्रसाद, नजर मुहम्मद, शिवगोविन्द एवं देवीदीन।

ब्रिटिश सत्ता का स्थायीकरण-1860 में मध्य प्रान्त बनाया गया। इसमें छत्तीसगढ़ अंचल को भी शामिल किया गया। इस प्रान्त में 14 रियासतें तथा अनेक जमींदारियां बनाई गई तथा बन्दोबस्त व्यवस्था प्रारम्भ की गई। इन सभी कार्यों का प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजी सत्ता को स्थिर करना और विद्रोहियों का दमन करना था।

राष्ट्रीय चेतना का अभ्युदय-कांग्रेस से छत्तीसगढ़ियों का सम्बन्ध सम्भवतः 1891 में आयोजित नागपुर अधिवेशन से हुआ, 1906 में द्वितीय प्रान्तीय राजनीतिक परिषद का आयोजन जबलपुर में हुआ। इसमें दादा साहेब खापड़े का "स्वदेशी आन्दोलन" का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। 29 मार्च, 1907 को रायपुर मैं राजनीतिक परिषद का तीसरा अधिवेशन टाउन हाल में हुआ। डॉ0 हरिसिंह गौर अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। "बन्देमातरम" गीत में अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। "हिन्द केशरी" नामक हिन्दी पत्रिका निकालने का दायित्व माधवराव सप्रे को सौंपा गया और 13 अप्रैल, 1907 से इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। ब्रिटिश भारत के विरोध में प्रकाशित लेखों के कारण सप्रेजी को 21 अगस्त 1908 को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें 2 नवम्बर 1908 को रिहा किया गया।

राजनांदगांव में ठाकुर प्यारेलाल सिंह, शिवलाल मास्टर तथा शंकरराव खरे ने स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ किया। छत्तीसगढ़ क्षेत्र के अधिकांश लोग बाल गंगाधर तिलक और गरम दल के समर्थक थे।

1918 में गोपालकश्ष्ण गोखले रायपुर आए तथा वामन राव लाखे के घर पर छत्तीसगढ़ के प्रमुख नेताओं की बैठक ली। इसके बाद स्वतन्त्रता प्राप्ति का लक्ष्य गांव-गांव में प्रचारित किया गया।

बी. एन. सी. मजदूर हड़ताल-राजनांदगांव में ठाकुर प्यारेलाल सिंह स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाते हुए बंगाल नागपुर काटन मिल्स से मजदूरों को भी संगठित करना प्रारम्भ किया। उन्होंने अप्रैल 1920 में मजदूरों की एतिहासिक हड़ताल कराई थी। अन्त में मजदूरों के इतिहास में यह पहली और सबसे लम्बी हड़ताल थी। अन्त में मजदूरों के पक्ष में समझौता हुआ।

कण्डेल नहर सत्याग्रह-सिंचाई विभाग के अधिकारियों द्वारा कण्डेल ग्राम व आस-पास के गाँवों के किसानों के ऊपर नगर जल कर लगा दिया गया। किसानों ने सुन्दरलाल शर्मा, नारायण राव मेघावाले और छोटे लाल श्रीवास्तव के नेतृत्व में अगस्त 1920 से सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया तथा कर देने से इन्कार कर दिया। आन्दोलन दिसम्बर 1920 से सत्याग्रह प्रारम्भ दिया तथा कर देने से इन्कार कर दिया। आन्दोलन दिसम्बर 1920 तक जारी रहा। आन्दोलनकारियों ने मार्गदर्शन हेतु गांधी जी को आमन्त्रित किया। इस समाचार से सरकार चिन्तित हो गई और कर माफ कर दिया गया।

असहयोग आन्दोलन

गांधीजी का छत्तीसगढ़ आगमन-गांधी जी तिलक व स्वराज निधि एकतिन करने अली बन्धुओं के साथा 20 दिसम्बर को धमतरी पहुंचे, यहाँ उन्होंने जनता को सम्बोधित किया। धमतरी से रायपुर लौटते समय गांधी जी कुरुद में रुकें। रायपुर में महिलाओं की सभा को सम्बोधित किया।

छत्तीसगढ़ में असहयोग आन्दोलन-असहयोग आन्दोलन के तहत ठाकुर प्यारेलाल सिंह, राघवेन्द्र राय, डी0के0 मेहता आदि ने वकालत का व्यवसायं त्याग दिया। वामनराव लाखें ने राय साहब की उपाधि छोड़ दी। बड़ी संख्या में विद्यार्थियों ने अंग्रेजी शिक्षा और स्कूलों का बहिष्कार किया। जनता के सहयोग से रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, राजनांदगांव एवं धमतरी में राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई।

मद्य निषेध आन्दोलन के अन्तर्गत मादक पदार्थों के परित्याग के सन्दर्भ में लोगों ने विदेशी कपड़ो की होली. जलाई। खादी का प्रचार प्रारम्भ हुआ।

सिहाया नगरी का जंगल सत्याग्रह-21 जनवरी, 1922 में एक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जो सिहावा नगरी का जंगल सत्याग्रह के नाम से प्रसिद्ध है। यह आन्दोलन इस क्षेत्र की आदिवासी जनता द्वारा वन अधिकारियों के विरुद्ध आरम्भ किया गया था, क्योंकि ये अधिकारी आदिवासियों को कम दरों में मजदूरी

देते थे तथा शोषण किया करते थे।

आन्दोलन में पं. सुन्दरलाल शर्मा, नारायण लाल मेघावाले, छोटेलाल श्रीवास्व आदि ने भाग लिया। बाद में आदिवासियों के पक्ष में समझौता हुआ।

झण्डा सत्याग्रह-कांग्रेस के चरखे युक्त तिरंगे झण्डे को राष्ट्रीयता का प्रतीक यह आन्दालन प्रारम्भ हुआ। इसका मुख्य केन्द्र नागपुर बना। छत्तीसगढ़ से भी अनेक लोग इस आन्दोलन में भाग लेने के लिए पैदल ही नागपुर तक गए।

छत्तीसगढ़ में सविनय अवज्ञा आन्दोलन-छत्तीसगढ़ में भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन हुआ। रायपुर 6 से 13 अप्रैल 1930 तक राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया।

रायपुर में सेठ गोविन्ददास, रविशंकर शुक्ल, द्वारका प्रसाद मिश्र, लक्ष्मीनारायण दास तथा गयाचरण त्रिवेणी ने नमक बनाकर नमक कानून को तोड़ा। धमतरी में गणेश नारायण राव ने नमक बनाकर आन्दोलन का आरम्भ किया। यहीं पं० सुन्दरलाल शर्मा के नेतृत्व में "सत्याग्रह आश्रम" प्रारम्भ किया गया।

बिलासपुर में दिवाकर कालीकर के नेतृत्व में शराब की दुकान में धरना दिया गया। वासुदेव देवरस क मार्गदर्शन में "वानरसेना" का गठन किया गया। मुगेली तहसील में रामगोपाल तिवारी, गजाधर साव, कालीचरण आदि ने आन्दोलन का नेतृत्व किया।

दुर्ग जिले में घनश्याम सिंह गुप्त, रनसिंह प्रसाद अग्रवाल, राम प्रसाद देशमुख, वी0वी0 तामस्कर, रत्नाकर झा, आदि ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लिया।

जंगल सत्याग्रह-सरकार ने वन्य सामग्री के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। अतः छत्तीसगढ़ में जंगल सत्याग्रह प्रारम्भ किया गया।

जंगल सत्याग्रह मुख्यतः धमतरी व महासमुन्द के आस-पास केन्द्रित था। रूद्री का जंगल सत्याग्रह 22 अगस्त 1930 को प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन का नेतृत्व नारायण राव मेंघावाले तथा जगतराय करने वाले थे, किन्तु उन्हें बन्दी बना लिया गया। सरकार ने धारा 144 लगा दी, लाठी चार्ज किया। भीड़ पर गोली चलाई गई। एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। शासन के अत्याचार जारी रहे, किन्तु आन्दोलन चलता रहा। महासमुन्द्र में यतियतनलाल और शंकर राव गनोदवाले के नेतृत्त्व में जंगल सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ। दुर्ग जिले में जंगल सत्याग्रह नरसिह प्रसाद अग्रवाल के नेतृत्व में गोंडी में प्रारम्भ हुआ। बिलासपुर जिले में बांधाखार में जमींदारी के खिलाफ आन्दोलन किया गया। 5 मार्च 1931 को जब गांधी और इरविन के मध्य समझौता हुआ तब सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया।.

द्वितीय सविनय अवज्ञा आन्दोलन-ब्रिटिश सरकार के दमनात्मक कार्यवाहियों के विरोध में गांधी जी द्वारा आन्दोलन की घोषणा की गई जिसमें छत्तीसगढ़ भी शामिल हो गया। 14 जनवरी को रविशंकर शुक्ल को आन्दोलन हेतु डिक्टेटर चुना गया। 29 जनवरी को पेशावर दिवस पर पं० रविशंकर शुक्ल, ठाकुर प्यारेलाल सिंह, लक्ष्मीनारायण दास, खूबचन्द्र बघेल, अब्दुल रऊफ, नन्दकुमार दानी, आदिक को गिरफ्तार कर लिया गया। विदेशी सामग्री के विरोध में दुकानों में धरना दिए जाने लगा।

गांधीजी का द्वितीय आगमन-गांधी जी 23 से 28 नवम्बर, 1933 तक रायपुर में रुके। हरिजन फण्ड के लिए उन्होंने धन एकत्रित किया। रायपुर में रहते हुए वे धमतरी, भाटापारा बिलासपुर व दुर्ग भी गए।

भारत छोड़ो आन्दोलन-बम्बई अधिवेशन में 8 अगस्त को "भारत छोड़ो आन्दोलन" का प्रस्ताव पारित हो गया। गांधी जी ने "करो या मरो" का नारा दिया।

छत्तीसगढ़ के नेताओं को कांग्रेस अधिवेशन से लौटते समय मलकापुर में गिरफ्तार कर लिया गया। इन नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में रायपुर की शैक्षणिक संस्थाएं और बाजार बन्द रहे। एक विशाल जुलूस निकाला गया। गांधी चौक में सभा का आयोजन हुआ। इस आन्दोलन में कमल नारायण शर्मा, रणवीर सिंह शास्त्री, जय नारायण पाण्डेय, प्रेतानाथ तिवारी अग्रणी रहे। रामकृष्ण सिंह ठाकुर तथा गुप्ता को भी गुप्त आन्दोलन चलाने के कारण गिरफ्तार किया गया।

बिलासपुर क्षेत्र में आन्दोलन का नेतृत्व छेदीलाल सिंह, यदुनन्दन प्रसाद श्रीवास्तव, चिन्तामणी ओहलदार, कालीचरण, राजकिशोर वर्मा आदि ने किया। दुर्ग क्षेत्र में रघुनन्दन सिंह सिंगरोल को सरकारी भवन में आग लगाने के आरोप में साथियों सहित गिरफ्तार कर लिया गया।

रियासतें और जमींदारियां-छत्तीसगढ़ के अन्तगर्त आने वाली 14 रियासतों में कालाहांडी, रायखोल, दामरा तथा सोनपुर, उडिया भाषी थीं। शेष रियासते तथा बस्तर कांकेर में उड़िया भाषी पांच रियासतों को बंगाल प्रान्त में सम्मिलित कर दिया गया और बंगाल के छोटा नागपुर क्षेत्र से सरगुजा, उदयपुर, जशपुर, कोरिया तथा बांगहार को मध्य प्रान्त के छत्तीसगढ़ संभाग में मिला दिया गया।

पृथक राज्य

अन्ततः देश स्वतन्त्र हुआ तो "छत्तीसगढ" को एक पृथक राज्य बनाने की मांग उठी, किन्तु उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण की प्रक्रिया मध्य प्रदेश के निर्माण से ही शुरु हो गई थी। सन् 1956 में जब भाषाई आधार पर प्रान्तों की रचना हुई तो छत्तीसगढ़ी बोली को आधार मानते हुए, छत्तीसगढ़ को अलग राज्य का दर्जा देने के लिए तत्कालीन विधायक ठाकुर रामकरण सिंह ने विधान सभा में आवाज उठाई थी।

छत्तीसगढ़ राज्य आन्दोलन का छत्तीसगढ़ के निर्माण में विशेष योगदान रहा है, जिसका संचालन विभिन्न स्वतन्त्रता सेनानियों ने समय-समय पर किया। पण्डित सुन्दरलाल शर्मा ने सर्वप्रथम 1920 में छत्तीसगढ़ राज्य की कल्पना की थी। श्री वामनराव लाखे ने सन् 1924 में पृथक कांग्रेस कमेटी की मांग उठाई थी। त्रिपुरा कांग्रेस से पूर्व विलासपुर में आयोजित बैठक में ठाकुर प्यारेलाल सिंह ने छत्तीसगढ़ को अलग राज्य का दर्जा देने का मुद्दा उठाया था। छत्तीसगढ़ निर्माण की प्रक्रिया को निरन्तर आगे बढ़ाने हेतु, कई नेताओं ने गांवों-गांवों में जन-जागरण अभियान चलाया जिससे कि आन्दोलन प्रभावी रूप ले सके। सन् 1967 में डॉ० खुबचन्द बघेल की अध्यक्षता में "मातृसंघ" की स्थापना हुई तथा छत्तीसगढ़ काव्यंपाठ के पश्चात् शंकर गुहा नियोगी ने "छत्तीसगढ़" के गठन हेतु एक संगठित आन्दोलन संचालित किया, जो निरन्तर जन-समर्थन प्राप्त करता रहा। वर्ष 1991 में जब जन-आन्दोलन के प्रणेता श्री नियोगी की हत्या हुई, तो उनके आन्दोलन में भी एक ठहराव आया। कुछ समयोपरान्त कुछ राजनीतिक दलों ने कदाचित अपने-अपने राजनीतिक स्वार्थी की पूर्ति हेतु ठहरे हुए जनान्दोलन को एक गति प्रदान की। कांग्रेस के वरिष्ठ नेता तथा दैनिक हिन्दुस्तान के प्रधान सम्पादक चन्दूलाल चंद्राकर के विशेष प्रयासों से वर्ष 1993 में कांग्रेस ने छत्तीसगढ़ के गठन को अपने चुनावी घोषणा पत्र में सम्मिलित तो किया, किन्तु चुनावोपरान्त चुनावी संकल्प को भुला दिया।

इस बीच "छत्तीसगढ़" के गठन का विरोध भी किया जाने लगा। कारण धान का कटोरा" कहा जाने वाला यह क्षेत्र विपुल वन सम्पदा एवं खनिज सम्पदा से परिपूर्ण है। राज्य की प्राचीन आदिवासी संस्कृति का यही क्षेत्र प्रतिनिधित्व करता है। इस क्षेत्र में इस्पात तथा ऐलुमिनियम आदि के भारी उद्योग स्थित है। इस क्षेत्र के तेंदू पत्ते, देश की आवश्यकता की लगभग 70 प्रतिशत पूर्ती करते हैं। फिर इस क्षेत्र से प्रतिवर्ष हो

रही लगभग दो हजार करोड़ रुपये की राजस्व प्राप्ति की सम्भावित क्षति से पहले ही मध्यं प्रदेश की जर्जर अर्थव्यवस्था के चरमरा जाने की आशंका थी। किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। केन्द्र की सत्तारूढ़ "भाजपा सरकार ने अपनी चुनावी घोषणा के अनुरूप छत्तीसगढ़ के गठन की मांग को पूर्ण करने अपनी इच्छा शक्ति का स्पष्ट प्रमाण दिया।

वर्ष 1998 के विधानसभा चुनाव में "कांग्रेस" तथा " भाजपा" दोनों ही राजनीतिक दलों हेतु अपनी इच्छा शक्ति का स्पष्ट प्रमाण दिया।

वर्ष 1998 के विधानसभा चुनाव में "कांग्रेस" तथा "भाजपा" दोनों ही राजनीतिक दलों ने अपने-अपने चुनावी घोषणा-पत्र में पृथक राज्य "छत्तीसगढक" के गठन का संकल्प दुहराया। कांग्रेस ने जहां "छत्तीसगढ़" के गठन हेतु एक पृथक! घोषणा-पत्र" भी जारी किया, वहाँ प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने रायपुर की एक आम सभा में घोषणा की कि यदि भाजपा ने क्षेत्र के 11 के 11 स्थानों पर विजय प्राप्त की, तो वह निश्चय ही "छत्तीसगढ़" राज्य का गठन करेंगे। संयोज से भाजपा ने क्षेत्र के 11 संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों में 8 स्थानों पर विजय प्राप्त की और केन्द्र में भाजपा की सरकार ही सत्तारूढ़ हुई, तो "छत्तीसगढ़" की मांग पुन: उग्र हुई। किन्तु इससे पूर्व कि केन्द्र सरकार कोई कार्य कर पाती, सरकार ही नहीं रही। वर्ष 1999 में लोकसभा के पुनः चुनाव हुए, भाजपा सरकार पुनः सत्ता में लौटी, तो उसने 25 जुलाई 2000 को लोकसभा में जिन नए तीन राज्यों के गठन हेतु विधेयक प्रस्तुत किए, उनमें एक विधेयक "छत्तीसगढ़" विषयक भी था। लोकसभा ने इस विधेयक को 31 जुलाई तथा राज्यसभा ने 9 अगस्त को पारित किया और 25 अगस्त को राष्टपति ने अपनी स्वीकृति प्रदान करके "छत्तीसगढ़" के गठन की प्रक्रिया पूर्ण की और इस प्रकार क्षेत्रीय जनता की चिरआकांक्षाओं का प्रतीक "छत्तीसगढ़" 1 नवम्बर 2000 को अपने अस्तित्व में आ गया।

यह एक सुखद संयोग ही है कि "मध्य प्रदेश" राज्य की 45वीं जन्म तिथि पर 1 नवम्बर 2000 को उसे विघटित करके, देश का 26वां राज्य "छत्तीसगढ़" अपने अस्तित्व में आया।

इसी ऐतिहासिक तिथि से ठीक एक दशक पूर्व मध्य प्रदेश में 45 जिले थे और अब "छत्तीसगढ़" अपने अस्तित्व में आया।

देश का 26वां राज्य "छत्तीसगढ़" अब अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के साथ जहाँ क्षेत्र की जनता की लोकतान्त्रिक महत्वाकांक्षाएं पूर्ण कर रहा है, वहाँ विकास पथ पर नीव गति से अग्रसर भी है।

अभ्यास-प्रश्न

1. जनजातीय आन्दोलन से आप क्या समझते है? उन आन्दोलनों के कारणों का वर्णन करो।
2. भारतीय जनजातियों में हुए सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलनों पर विस्तार से प्रकाश डाले।
3. भारतीय जनजातियों के बदलते परिवेश में संबन्धित समस्याओं का उल्लेख करें।
4. छत्तीसगढ़ के जनजातीय आन्दोलन तथा बिरसा आन्दोलन पर टिप्पणियां लिखें।

NOTES

वर्षांत समीक्षा 2024 : जनजातीय कार्य मंत्रालय

भारत में अनुसूचित जनजातियों (एसटी) की संख्या 10.42 मिलियन है। यह कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है। देश के दूरदराज के भागों में 705 से अधिक विशिष्ट जनजातीय समूह रहते हैं। सरकार इन समुदायों को सहायता देने के लिए कई कल्याणकारी कार्यक्रम लागू कर रही है, जिनमें सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण, सतत विकास और उनकी जीवंत सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। इन परियोजनाओं का उद्देश्य जनजातीय लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना, शिक्षा को बढ़ावा देना और समावेशी विकास को बढ़ावा देना है।

जनजातीय समुदायों को सशक्त बनाने की अपनी प्रतिबद्धता के तहत जनजातीय कार्य मंत्रालय (एमओटीए) ने क्षेत्रीय विकास को प्राथमिकता देकर जनजातीय कल्याण के प्रति अपनी अटूट प्रतिबद्धता प्रदर्शित की है। यह लक्ष्य वित्तीय आवंटन में वृद्धि, विभिन्न क्षेत्रों में प्रयासों के समन्वय तथा कार्यक्रमों और पहलों के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए योजना और कार्यान्वयन तंत्र की पुनः संरचना के माध्यम से प्राप्त किया गया है।

वर्ष 2024 में जनजातीय कार्य मंत्रालय की योजनाओं, उपलब्धियों और पहलों की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:

bdkÃ&13 tutkrh; l'kfädj.k vkSj çxfr dk fy, ctV

जनजातीय कार्य मंत्रालय अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए समग्र नीति, योजना और कार्यक्रमों के समन्वय के लिए नोडल मंत्रालय के रूप में कार्य करता है। इसके कार्यक्रम और योजनाएं अन्य केंद्रीय मंत्रालयों, राज्य सरकारों और स्वैच्छिक संगठनों के प्रयासों को वित्तीय सहायता प्रदान करके और अनुसूचित जनजातियों की आवश्यकताओं के आधार पर महत्वपूर्ण अंतराल को खत्म करके समर्थन प्रदान करती हैं। इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए मंत्रालय के लिए बजट आवंटन में पर्याप्त वृद्धि हुई है, जो 2014-15 में 4,497.96 करोड़ रुपये से बढ़कर 2024-25 में 13,000 करोड़ रुपये हो गया है।

जनजातीय उप-योजना (टीएसपी) के तहत, जिसे अब अनुसूचित जनजातियों के लिए विकास कार्य योजना (डीएपीएसटी) के रूप में जाना जाता है, 42 मंत्रालय/विभाग शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई, सड़क, आवास, विद्युतीकरण, रोजगार सृजन और कौशल विकास जैसे क्षेत्रों में जनजातीय विकास परियोजनाओं के लिए प्रत्येक वर्ष अपने कुल योजना आवंटन का 4.3 से 17.5 प्रतिशत तक धन आवंटित करते हैं। डीएपीएसटी निधि आवंटन 2013-14 से लगभग 5.8 गुना बढ़ गया है, जो 2013-14 में 21,525.36 करोड़ रुपये (वास्तविक व्यय) से बढ़कर बजट अनुमान 2024-25 में 1,24,908.00 करोड़ रुपये हो गया है।

NOTES

जनजातियों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ:

- **धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान का शुभारंभ**

2 अक्टूबर, 2024 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने झारखंड के हज़ारीबाग में धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान की शुरुआत की। 79,156 करोड़ रुपये से अधिक के परिव्यय के साथ इस महत्वाकांक्षी कार्यक्रम का उद्देश्य लगभग 63,843 जनजातीय गांवों में सामाजिक बुनियादी ढांचे, स्वास्थ्य, शिक्षा और आजीविका विकास में महत्वपूर्ण अंतराल को दूर करना है।

- **धानमंत्री जनजाति आदिवासी न्याय महा अभियान (पीएम-जनमन)**

15 नवंबर, 2023 को, झारखंड के खूंटी में जनजातीय गौरव दिवस के दौरान, प्रधानमंत्री ने विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) के उत्थान के लिए प्रधानमंत्री जनजातीय आदिवासी न्याय महा अभियान (पीएमजनमन) की शुरुआत की। पीएम-जनमन का उद्देश्य सुरक्षित आवास, स्वच्छ पेयजल, शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क और दूरसंचार कनेक्टिविटी, विद्युतीकरण और स्थायी आजीविका जैसे क्षेत्रों में लक्षित समर्थन के माध्यम से पीवीटीजी समुदायों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है।

इस मिशन का उद्देश्य 18 राज्यों और 1 केंद्र शासित प्रदेश में रहने वाले 75 विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) का लक्षित विकास करना है, जो मंत्रालयों/विभागों की योजनाओं से वंचित थे। इसलिए इस मिशन के माध्यम से बहुक्षेत्रीय सहायता की आवश्यकता है, जिसमें 3 वर्षों में 9 मंत्रालयों की 11 कार्रवाई को पूर्ण करने के लिए 24,000 करोड़ रुपये का बजट रखा गया है। 15 जनवरी को प्रधानमंत्री ने 4450 करोड़ रुपये की परियोजनाओं को मंजूरी दी। संबंधित मंत्रालयों को डीएपीएसटी के तहत एसटीसी बजट शीर्ष में उपलब्ध धनराशि का उपयोग करके अपनी मौजूदा योजनाओं की कार्रवाई का लाभ पीवीटीजी को प्रदान करने का अधिकार दिया गया है। अब तक मंत्रालयों ने 7356 करोड़ रुपये की परियोजनाओं को मंजूरी दी है।

केंद्रीय जनजातीय कार्य मंत्रालय ने प्रधानमंत्री जनजातीय आदिवासी न्याय महा अभियान (पीएम-जनमन) मिशन की पहुंच और प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए एक राष्ट्रव्यापी सूचना, शिक्षा और संचार (आईईसी) अभियान शुरू किया है। 23 अगस्त, 2024 से 10 सितम्बर, 2024 तक चले इस अभियान का उद्देश्य विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) वाले क्षेत्रों में सरकारी योजनाओं की शत-प्रतिशत पहुंच सुनिश्चित करना था।

प्रधानमंत्री आदि आदर्श ग्राम योजना (पीएमएएजीवाई)

1977-78 में जनजातीय कल्याण के लिए विकास के अंतराल को पाटने के उद्देश्य से "जनजातीय उप-योजना के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता (एससीए से टीएसएस)" शुरू की गई। 2021-22 में इस योजना को प्रधानमंत्री आदि आदर्श ग्राम योजना (पीएमएएजीवाई) के रूप में नया रूप दिया गया, जिसमें महत्वपूर्ण जनजातीय आबादी वाले गांवों में बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराने पर ध्यान केंद्रित किया गया। पीएमएएजीवाई के अंतर्गत विकास के लिए कम से कम 50 प्रतिशत जनजातीय आबादी वाले 36,428 गांवों की पहचान की गई है, जिनमें आकांक्षी जिले भी शामिल हैं। 1.02 करोड़ परिवारों और 4.22 करोड़ अनुसूचित जनजाति की आबादी के लिए विभिन्न अंतरालों को पाटने के लिए केंद्र सरकार की अनुसूचित

जनजाति घटक वाली 58 योजनाओं और राज्य सरकार की योजनाओं के साथ अभिसरण की योजना बनाई गई है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत 5 वर्षों के लिए 7276 करोड़ रुपये की राशि निर्धारित की गई है। 2357.50 करोड़ की धनराशि जारी करने के साथ 17616 ग्राम विकास योजनाओं को मंजूरी दी गई है।

NOTES

- **प्रधानमंत्री जनजातीय विकास मिशन (पीएमजेवीएम)**

पीएमजेवीएम का उद्देश्य जनजातीय उद्यमिता को बढ़ावा देना और "जनजातियों द्वारा वोकल फॉर लोकल" पहल को आगे बढ़ाना है। यह जनजातीय समुदायों को सशक्त बनाने पर जोर देता है ताकि वे स्थानीय रूप से उत्पादित वस्तुओं पर केंद्रित व्यवसायों का समर्थन करके लघु वन उत्पादों (एमएफपी) और गैर-लघु वन उत्पादों सहित प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावी ढंग से दोहन कर सकें। इसका उद्देश्य पूरे देश में आजीविका-संचालित जनजातीय विकास को प्राप्त करना है। इसके लिए वन धन विकास केन्द्रों/वन धन उत्पादक उद्यमों की स्थापना करके आगे और पीछे के लिंकेज प्रदान करना है। इसके अलावा राज्यों को न्यूनतम समर्थन मूल्य पर लघु वनोपज की खरीद करने में सहायता करना है। इस योजना के तहत 3000 हाट बाजार और 600 गोदाम स्थापित करने का भी प्रावधान है। पीएमजेवीएम योजना के तहत पांच वर्षों के लिए 1612 करोड़ रुपये की राशि स्वीकृत की गई है। ट्राइफेड प्रधानमंत्री जनजातीय विकास मिशन की कार्यान्वयन एजेंसी है। 28 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में लगभग 12 लाख लोगों को कवर करने वाले 3959 वन धन विकास केंद्रों (वीडीवीके) को 587.52 करोड़ रुपये की धनराशि मंजूर की गई है।

एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय

वर्ष 2018-19 में शुरू की गई एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय (ईएमआरएस) योजना का उद्देश्य जनजातीय छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है, जिसमें उनके शैक्षणिक, सांस्कृतिक और कौशल विकास पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। 2 अक्टूबर, 2024 को प्रधानमंत्री ने 40 ईएमआरएस का उद्घाटन किया और 2,800 करोड़ रुपये से अधिक के निवेश से 25 और ईएमआरएस की आधारशिला रखी। अब तक 728 ईएमआरएस को मंजूरी दी जा चुकी है।

2013-14 में 167 स्कूल स्वीकृत किए गए थे, जो नवंबर 2024 तक बढ़कर 715 हो गए हैं। अब ई.एम. आर.एस. की आवर्ती लागत 2023-24 में 1,09,000 रुपये (प्रति छात्र प्रति वर्ष) है, जबकि 2013-14 में यह 24,200 रुपये (प्रति छात्र प्रति वर्ष) थी। पंजीकृत छात्रों की कुल संख्या 2023-2024 में बढ़कर 1.33 लाख हो गई, जबकि 2013-14 में यह संख्या 34,365 थी।

अगले तीन वर्षों में केंद्र सरकार 3.5 लाख जनजातीय छात्रों की शिक्षा के लिए 728 एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालयों के लिए 38,800 शिक्षकों और सहायक कर्मचारियों की भर्ती करेगी। 9023 पात्र चयनित अभ्यर्थियों (शिक्षण एवं गैर-शिक्षण स्टाफ) को नियुक्ति पत्र प्रदान किए जा चुके हैं।

राष्ट्रपति श्रीमती द्रौपदी मुर्मु ने ओडिशा के मयूरभंज के बड़ासाही में नवनिर्मित एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय (ईएमआरएस) का उद्घाटन किया। बरसाही ईएमआरएस परिसर लगभग 8 एकड़ भूमि पर निर्मित है। इस ईएमआरएस में 480 विद्यार्थियों के लिए 16 कक्षा-कक्ष होंगे, जिनमें 240 लड़कियां और 240 लड़के होंगे। यहाँ लड़कों और लड़कियों के लिए अलग-अलग छात्रावास, भोजनालय, प्रधानाचार्य, शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों के लिए आवास, प्रशासनिक ब्लॉक, खेल का मैदान, कंप्यूटर और

विज्ञान प्रयोगशालाएँ हैं। ये विद्यालय इस क्षेत्र के जनजातीय छात्रों के समग्र विकास के लिए मील का पत्थर साबित होंगे।

NOTES

जनजातीय सशक्तिकरण के लिए छात्रवृत्ति

भारत सरकार जनजातियों के लिए 5 छात्रवृत्ति योजनाएं लागू करती है, जिसके तहत 2500 करोड़ रुपये के वार्षिक बजट के साथ हर साल 30 लाख से अधिक छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाती है। जनजातीय छात्रों की सहायता के लिए छात्रवृत्ति भी उपलब्ध है, जिसका उद्देश्य स्कूल छोड़ने की दर को कम करना तथा उनकी शैक्षिक प्रगति को बढ़ावा देना है। ये वित्तीय सहायताएं यह सुनिश्चित करती हैं कि जनजातीय समुदायों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक बेहतर पहुंच मिले और उन्हें बेहतर भविष्य बनाने का अवसर मिले।

1. **प्री-मैट्रिक और पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति योजनाएं**
   i) प्री-मैट्रिक छात्रवृत्ति: कक्षा IX और X में अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के लिए वित्तीय सहायता, माध्यमिक शिक्षा में परिवर्तन को बढ़ावा देना।
   ii) पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति: कक्षा XI से स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम तक अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा हेतु वित्तीय सहायता।
2. अनुसूचित जनजाति के छात्रों के लिए राष्ट्रीय विदेशी छात्रवृत्ति: यह योजना मेधावी एसटी छात्रों को अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर, डॉक्टरेट और पोस्ट-डॉक्टरेट अध्ययन करने का अवसर प्रदान करती है।
3. अनुसूचित जनजाति छात्रों के लिए राष्ट्रीय फैलोशिप: यह फेलोशिप योजना पूरी तरह से डिजिटल प्रक्रिया के माध्यम से उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले जनजातीय छात्रों का समर्थन करती है, जिससे समय पर वित्तीय सहायता और डिजिलॉकर एकीकरण के माध्यम से शिकायत निवारण सुनिश्चित होता है।
4. प्री-मैट्रिक छात्रवृत्ति पाने वाले 589 जनजातीय छात्रों को नई दिल्ली में गणतंत्र दिवस समारोह के लिए विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया.
5. 26 जनवरी 2024 को भारतीय गणतंत्र के हीरक जयंती समारोह के दौरान सरकार ने नई दिल्ली में गणतंत्र दिवस 2024 समारोह में भाग लेने के लिए 663 आदिवासी छात्रों और शिक्षकों को विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया। इस दल में 31 राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों से 589 छात्र (258 लड़कियां, 331 लड़के) और 74 शिक्षक शामिल हुए। ये बच्चे केंद्रीय जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा क्रियान्वित योजना के तहत दी जाने वाली प्री-मैट्रिक छात्रवृत्ति के भी लाभार्थी हैं।

जनजातीय अनुसंधान संस्थानों को सहायता योजना:

- जनजातीय कार्य मंत्रालय ने "जनजातीय अनुसंधान संस्थान को सहायता" योजना के अंतर्गत 2014 से 10 नए टीआरआई के भवन निर्माण के लिए धनराशि स्वीकृत की है, जिनमें आंध्र प्रदेश, उत्तराखंड, कर्नाटक, अरुणाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम, मेघालय और गोवा शामिल हैं।

- **जनजातीय भाषाओं का संरक्षण:** जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार "टीआरआई को सहायता योजना" के अंतर्गत राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में जनजातीय अनुसंधान संस्थानों (टीआरआई) को जनजातीय भाषाओं की सुरक्षा, संरक्षण और संवर्धन के लिए शुरू की गई परियोजनाओं/गतिविधियों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता है। जनजातीय समुदायों को सम्मेलनों, सेमिनारों, कार्यशालाओं और आदान-प्रदान कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सरकारी आश्रम विद्यालयों के शिक्षक संबंधित समुदायों के भाषा विशेषज्ञों के साथ मिलकर जनजातीय बोलियों और भाषाओं में शब्दकोश और प्राइमर विकसित करने में जुटे हैं, जिससे न केवल जनजातीय भाषाओं का संरक्षण और संवर्धन हो रहा है, बल्कि जनजातीय छात्रों को कक्षा 1 से 3 तक बुनियादी शिक्षा में मदद मिल रही है और उच्च कक्षाओं में जाने पर उन्हें आसानी से आगे बढ़ने में मदद मिल रही है। टीआरआई क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं (अग्रिम पंक्ति कार्यकर्ताओं) के लिए जनजातीय भाषा प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित करते हैं।
- **अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए कार्यरत स्वैच्छिक संगठनों को सहायता अनुदान:**पिछले 10 वर्षों में जनजातीय आबादी के लिए शिक्षा, आजीविका और स्वास्थ्य के क्षेत्र में काम करने वाली लगभग 250 परियोजनाओं के लिए लगभग 200 गैर सरकारी संगठनों को लगभग 1000 करोड़ रुपये जारी किए गए हैं।

जनजातीय आबादी के लिए बेहतर स्वास्थ्य देखभाल हेतु पहल:

सरकार ने जनजातीय समुदायों के कल्याण में सुधार लाने के उद्देश्य से कई प्रमुख स्वास्थ्य पहल शुरू की हैं।

- **केंद्रीय बजट 2023-24 में सिकल सेल एनीमिया उन्मूलन मिशन की घोषणा की गई**

1 जुलाई, 2023 को शुरू किया गया सिकल सेल एनीमिया उन्मूलन मिशन, जागरूकता अभियान, सार्वभौमिक जांच और सस्ती देखभाल के माध्यम से सिकल सेल रोग (एससीडी) के उन्मूलन पर केंद्रित है, जिसमें मध्य, पश्चिमी और दक्षिणी भारत में जनजातीय आबादी पर विशेष जोर दिया गया है। इसका उद्देश्य प्रभावित जनजातीय क्षेत्रों में 0-40 वर्ष आयु वर्ग के 7 करोड़ लोगों के बीच जागरूकता पैदा करना और उनकी सार्वभौमिक जांच करना तथा केंद्रीय मंत्रालयों और राज्य सरकारों के सहयोगात्मक प्रयासों के माध्यम से परामर्श प्रदान करना है। 7 करोड़ में से 4.5 करोड़ से अधिक व्यक्तियों का परीक्षण किया जा चुका है।

विश्व सिकल सेल दिवस 2024 के उपलक्ष्य में, जनजातीय कार्य मंत्रालय (एमओटीए) और ज्ञान साझेदार बिरसा मुंडा केंद्र, एम्स दिल्ली ने 19 जून 2024 को नई दिल्ली में सिकल सेल रोग (एससीडी) पर जागरूकता पैदा करने के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। इस कार्यक्रम में विशेषज्ञों के एक समूह को जागरूकता पैदा करने और एस.सी.डी. के अंतर-पीढ़ी संचरण को रोकने के तरीकों पर विचार-विमर्श करने के लिए एक साथ लाया गया। केन्द्रीय जनजातीय कार्य मंत्री श्री जुएल ओराम और जनजातीय कार्य राज्य मंत्री श्री डी.डी. उइके ने इस अवसर पर अपनी उपस्थिति से इस अवसर की शोभा बढ़ाई। इस दिन देश भर के 17 राज्यों के 340 से अधिक उच्च एस.सी.डी.-प्रभाव वाले जिलों में 2 सप्ताह तक जागरूकता सृजन और स्क्रीनिंग अभियान की शुरुआत भी की गई।

वन अधिकार अधिनियम

वन अधिकार अधिनियम 2006 के अंतर्गत कुल 23.73 लाख व्यक्तिगत स्वामित्व और कुल 1.16 लाख सामुदायिक स्वामित्व वितरित किए गए हैं, जिसके अंतर्गत लगभग 190.39 लाख एकड़ भूमि वितरित की गई है।

वन अधिकार अधिनियम		
वितरित स्वामित्व की संख्या	2013-14	सितम्बर 2024
व्यक्तियों को वितरित की गई स्वामित्व की संख्या	14.36 लाख	23.73 लाख
समुदाय में वितरित स्वामित्व की संख्या	23,000	1.16 लाख
दावे निपटाये गये	25.11 लाख	42.475 लाख
भूमि क्षेत्र निहित	55 लाख एकड़	190.39 लाख एकड़

अभ्यास-प्रश्न

1. अनुसूचित जनजातियों की सुरक्षा से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन करों।
2. अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों की प्रशासन व्यवस्था पर एक निबन्ध लिखें।
3. जनजातीय क्षेत्रों की प्रमुख विशेषताएं कौन कौन सी होती है।
4. जनजातीय क्षेत्रों के विकास हेतु जनजाति कार्य मंत्रालय के कार्यों की समीक्षा करें।

1. जनजातीय समाजशास्त्र, एस.एल. दोषी एवं पी.सी. जैन, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2020.
2. भारतीय सामाजिक व्यवस्था, राम आहूजा, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2021.
3. जनजातीय समाजशास्त्र, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2016.
4. जनजातियों का समाजसास्त्र, डॉ. रविन्द्र नाथ मुखर्जी, डॉ. भारत अग्रवाल, साहित्य भवन पल्बिकेशन, आगरा, 2022.
5. समाजसास्त्र, डॉ. रविन्द्र नाथ मुखर्जी, डॉ. भारत अग्रवाल, साहित्य भवन पल्बिकेशन, आगरा, 2022.
6. जनजातीय भारत, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2023.

MATS UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR DISTANCE AND ONLINE EDUCATION

UNIVERSITY CAMPUS: Aarang Kharora Highway, Aarang, Raipur, CG, 493 441

RAIPUR CAMPUS: MATS Tower, Pandri, Raipur, CG, 492 002

T : 0771 4078994, 95, 96, 98 Toll Free ODL MODE : 81520 79999, 81520 29999

Website: www.matsodl.com